

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

जैन सिद्धांत प्रवेश रत्नमाला आठवें भाग की विषय-सूची

विषय-सूची	पृष्ठ से	पृष्ठ तक
शुद्ध आत्मदेव स्तुति (नित्य मनन योग्य)	1	11
रुठी जवानी	11	V
६५ अनमोल रत्न	1X	XIII
जीव-पुद्गल-उभयबन्ध का स्पष्टीकरण	१	६
छह सामान्य गुण चार अभावो का स्पष्टीकरण	७	११
छह कारको का स्पष्टीकरण	१२	२०
[पहली-दूसरी-तीसरी ढाल के माध्यम से]		
जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण	२१	२७
अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण	२८	३३
आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण	३४	४०
वन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण	४०	४७
सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण	४७	५३
निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण	५३	५८
मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण	५९	६२
[छहढाला की दूसरी ढाल के माध्यम से]		
ससार और मोक्ष क्या है ?	६३	६४
अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप	६५	६८
'ताको न जान विपरीत मान' का स्पष्टीकरण	६८	६८
जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यात्व का वर्णन	६८	६९
अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यात्व का वर्णन	७०	७१
आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप-अगृहीत-गृहीत मिथ्यात्व का वर्णन	७२	७३

बन्धनत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत		
मिथ्यात्व का वर्णन	७४	७६
सवरनत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत		
मिथ्यात्व का वर्णन	७६	७६
निर्जगतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत		
मिथ्यात्व का वर्णन	७६	८१
मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत गृहीत		
मिथ्यात्व का वर्णन	८१	८३
छहटाला के प्रथम ढाल की प्रश्नावली	८३	८८
छहटाला के दूसरी ढाल की प्रश्नावली	८८	९३
छहटाला के तीसरी ढाल की प्रश्नावली	९३	९६
छहटाला के चौथी ढाल की प्रश्नावली	९६	१००
जीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है (तीसरी ढाल)	१०१	१०३
अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?	१०४	१०६
आन्वितत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?	१०७	१०९
वधतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?	११०	११२
सवरतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?	११२	११४
निर्जरातत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?	११४	११६
मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?	११६	११८
ज्ञानी को आठ अंग प्रगट होते हैं और ८ दोषों का अभाव	१२०	—
ज्ञानी को आठ मदों का तथा ६ अनायतन का अभाव	१२१	१२२
४-५-६ ढाल पर २० प्रश्नोत्तर	१२५	१२६
स्वरूपाचरण चारित्र्य किसे कहते हैं ?	१२८	१२९
चार प्रकार की इच्छाओं का वर्णन		
समाधिकरण का स्पष्ट वर्णन		
द्रव्यसंग्रह की १४ गाथाओं का स्पष्टीकरण		
वीतराग-विज्ञानता के प्रश्नोत्तर		

कुस्ती मे अपने से दूने पहलवान ढाता था,
 ताल ठोक कर बड़े-बड़े योधाओ को डरपाता था ॥
 वेधि देहूँ था कठिन निशाना लेकर तीर कमाती को ॥हाय०४॥
 मेरे थप्पड़ से दुश्मन का निकल जवाड़ा आता था,
 मेरे सर से सर दुश्मन का नरियल सा फटि जाना था ।
 मेरा कुहनी से दुश्मन का चूर चूर हो जाता था,
 मेरी टेटी नजर देखि दुश्मन का दिल थर्राता था ॥
 मुक्के से सीधा करता था बड़े बड़े अभिमान को ॥हाय०५॥
 भरा जवाड़ा था मुह मे बत्तीमो दाँत चमकते थे,
 कश्मीरी सेवो के सदृश कल्ले मुख दमकते थे ।
 उन्नत मस्तक गोल चाद सा नयना दिव्य ज्योति वाले,
 घू घर वाले केश सिर पर नागिन से काले काले ॥
 तनी हुई मूछे मुह पर जतलाती थी मदर्नी को ॥हाय०॥
 हूँट पुँट था वदन गठीला सुन्दर सुदृढ सजीला था,
 गज की सूड़ी समान भुजाये हृदयस्थल जोशीला था ।
 सिंह समान पराक्रम था सब अग अग फुर्तीला था,
 थम समान पुँट जंवाये कोई अग न ढाला था ॥
 देता था निकलि पृथ्वी से लात मारकर पानी को ॥हाय०७॥
 दूरि दूरि के पहलवान भी मुझे देखने आते थे,
 गुजरानी पजाबी सिन्धी सरहद्दी शरमाते थे ।
 वाह वाह करते थे मेरी देखि सलौनी मूरत को,
 रचि विधाता ने आकर क्या ऐसी सुन्दर मूरत को ॥
 नीची अचकन चुस्त पजामा साके रंग के धानी को ॥हाय ८॥
 जैसा था मैं बली साहसी वैसा ही था व्यौपारी,
 पुरुषारथ से धन सचय करि भरि देता था अलमारी ।
 नारि सुता सुत पोता पोती आज्ञा मे थे घर वाले,
 नाते रिश्तेदार करे थे स्वागत पर जीजा शाले ॥
 सबको राखि प्रसन्न किया करता अपनी मनमानी को ॥हाय० ९॥

जोश जवानी का रग फीका पडने लगा पचासा मे,
 साठ बरष का शठ कहलाया इस जीवन की आशा मे ।
 सत्तर मे सब कहने लगे हत्तेरे की धुत्तेरे की,
 वेही करने लगे बदी जिनके सग मे थी नेकी ॥
 अपने हुये विगाने अब तो करिक खैचातानी को ॥हाय० १०॥
 सत्तर के लगभग अब तन पर सही बुढापा छाया है,
 किधो काल ने मुझे पकडने को यमदूत पठाया है ।
 पग मृटा दो हालन लागे चरखा हुआ पुराना है,
 विगडि गई पेट की आतडिया होता हज्म न खाना है ॥
 सभी रोग आये करने मुझे बूढे की मिजमानी को ॥हाय० ११॥
 गीण भया सब श्वेत मुरादाबादी जेम पतीली है,
 बैठि गये है गाल बदन की खाल भई सब ढीली है ।
 रौनक जाती रही भई चेहरे की रगत पीली है,
 टप टप टपकै नाक सिनक से मूछे रहती गीली है ॥
 हसते है सब आख देखि अँधी चून्दी धु धलानी को ॥हाय० १२॥
 टूटि गये सब दाँत बना मुह साँपो का भट्ट सा है,
 बोला जाता नही ऐठि करि जीभ बनी ज्यो लठ्ठा है ।
 खासत खासत घडक उठा दिल बलगम हुआ इकट्ठा है,
 अग अग मे वायु भरी सब चीखत रग रग पट्ठा है ॥
 अरे करू कैसे मैं सीधी अब इस कमर कमाने को ॥हाय० १३॥
 जो करते थे प्यार वही अब टेढी आख दिखाते है,
 नारि यार परिवार सुता सुत भाई पास न आते है ॥
 खाना पीना औपधादि भी नही समय पर मिलती है,
 हाथ पाव असमर्थ हुये कमबख्त नाकाया हिलती है ॥
 पडा खाट पर काट रहा इस मौति सदृश जिन्दगानी को ॥हाय०॥
 जो धन माल पास था मेरे सबने मिलि कर बाटा है'
 फिर भी मैं इनकी आँखो मे खटक्क जैसे काँटा है ।
 गाली दे दे कहते मुझ से खून हमारा पीवेगा,

ये खूँसठ बूढ़ा नहि मरता जाने कब तक जीवेगा ॥
 हृदय फटा जाता है मेरा सुन सुन तीक्ष्ण बानी को ॥हाय० १५॥
 मन मे था उत्साह पास मे पैसा तरुण अवस्था थी,
 सब मेरे खाने पीने की घर मे ठीक व्यवस्था थी ।
 तब न किया आत्म हित मैने भोगो मे फस जाने से,
 चोर निकल भागा घर से फिर क्या हो गोर मचाने से ॥
 खडा शीश पर काल लूटने इस नरभव रजधानी को ॥हाय० १६॥
 कहते थे गुरु देव बार बार मै समझा नहि समझाने से,
 धर्म प्राप्ति का उपाय सीखा नही सिखाने से ।
 चिड़िया चुग गयी खेत अरे अब कहा होता पछिताने से ।
 बीता समय हाथ नही आता गीत पुराने गाने से ॥
 भय्या छोड़ि चलो अब जल्दी इस झोपड़ी पुरानी को ॥हाय० १७॥



मोक्षमार्ग प्रकाशक से उभयाभासी की प्रश्नोत्तरी

प्र० १—सातवाँ अधिकार किसके लिये लिखा गया ?

प्र० २—जैन कितने प्रकार के होते हैं ?

प्र० ३—सधैया जैन होने पर, जिनआज्ञा मानने पर, निरन्तर
 शास्त्रो का अभ्यास होने पर, तथा सच्चे देवादि को मानने पर भी
 सम्यक्त्व क्यों नहीं होता है ?

प्र० ४—जिनआज्ञा किस अपेक्षा है इसको जानने के लिये क्या
 जानना चाहिए ?

प्र० ५—निश्चय किसे कहते हैं ?

प्र० ६—व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

प्र० ७—यथार्थ का नाम निश्चय के तीन बोल क्या-क्या है ?

प्र० ८—उपचार का नाम व्यवहार के तीन बोल क्या क्या है ?

प्र० ९—ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ नाम निश्चय क्यों कहा है ?

प्र० १०—शुद्ध पर्याय को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

प्र० ११—विकारो भावो को यथार्थ का नाम निश्चय क्यो कहा है?

प्र० १२—शुद्ध पर्याय का उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है?

प्र० १३—भूमिकानुसार शुभभावो को उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है ?

प्र० १४—द्रव्यकर्म नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है ?

प्र० १५—चौथे गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार किस प्रकार है ?

प्र० १६—पाँचवे गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार किस प्रकार है ?

प्र० १७—छठवे गुणस्थान मे निश्चय व्यवहार किस प्रकार है ?

प्र० १८—चौथे गुणस्थान मे निश्चय व्यवहार के तीनों बोल समझाओ ?

प्र० १९—पाँचवे गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार के तीनों बोल समझाओ ?

प्र० २० छठवे गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार के तीनों बोल समझाओ ?

प्र० २१ ससाररूपी वृक्ष का मूल कौन है ?

प्र० २२ मिथ्याभाव मे कौन-कौन आया ?

प्र० २३—सम्यक्भाव मे क्या-क्या समझना ?

प्र० २४—मिथ्यात्व क्या है ?

प्र० २५—मिथ्यात्व कैसा पाप है ?

प्र० २६—स्थूल मिथ्यात्व क्या है ?

प्र० २७—सूक्ष्म मिथ्यात्व क्या ?

प्र० २८—अन्यमतावलम्बियो मे कौन-कौन आते है ?

प्र० २९—मिथ्यात्व सात व्यसन से भी बड़ा पाप कहा बताया है?

प्र० ३०—उभयावासी किसे कहते है ?

प्र० ३१—उभयाभासी की खोटी मान्यताये कौन-कोन सी है ?

प्र० ३२—अपने शब्दो मे, उभयावासी को कैसे पहिचाने ?

प्र० ३३—निश्चयाभासी किसे कहते है ?

प्र० ३४ - शक्तिरूप पाँच बातें क्या क्या हैं जिन्हें निश्चयाभासी पर्याय में प्रगट मानता है ?

प्र० ३५—कैसे-कैसे शुभभावों को छोड़कर अशुभ में प्रवर्तता है ?

प्र० ३६—निश्चयाभासी की मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अधिकार के प्रारम्भ में चार भूलें क्या-क्या बतलाई हैं ?

प्र० ३७—अपने शब्दों में निश्चयाभासी को कैसे पहिचाने ?

प्र० ३८—व्यवहाराभासी किसे कहते हैं ?

प्र० ३९—व्यवहाराभासी की कितनी भूलें बतलाई हैं ?

प्र० ४०—व्यवहाराभासी कैसे पहिचाने ?

प्र० ४१—उभयावासी से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिए ?

प्र० ४२—निश्चयाभासी से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिए ?

प्र० ४३—व्यवहारभासी से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

दस प्रश्नोत्तर कैसे करने हैं

प्र० ४४—निश्चय-व्यवहार के विषय में उभयावासी ने क्या किया ?

प्र० ४५—प० जी ने क्या उत्तर दिया ?

प्र० ४६—निश्चय-व्यवहार के विषय में अमृतचन्द्राचार्य की आड़ में उभयावासी ने क्या प्रश्न उठाया ?

प्र० ४७—अमृतचन्द्राचार्य ने क्या उत्तर दिया ?

प्र० ४८—निश्चय-व्यवहार के विषय में कुन्द कुन्द भगवान की तरफ से उभयावासी ने क्या प्रश्न उठाया ?

प्र० ४९—कुन्द कुन्द भगवान ने क्या उत्तर दिया ?

प्र० ५०—व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चय निश्चयनय का श्रद्धान क्यों करना चाहिये इस पर प्रश्न बनाओ ?

प्र० ५१—५६ गाथा समयसार के अनुसार क्या उत्तर दिया है ?

प्र० ५२—व्यवहार के श्रद्धान से मिथ्यात्व और निश्चय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इस पर प्रश्न बनाओ ?

प्र० ५३—समयसार १२वीं गाथा के अनुसार उत्तर दो ?

- प्र० ५४-ऐसे भी है- और ऐसे भी इस पर प्रश्न बनाओ?
- प्र० ५५-ऐसे भी है और ऐसे भी इसका उत्तर दो ?
- प्र० ५६-समयसार आठवीं गाथा के अनुसार प्रश्न बनाओ?
- प्र० ५७-आठवीं गाथा के अनुसार उत्तर दो ?
- प्र० ५८-व्यवहार के बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता है।
- प्र० ५९-५८ प्रश्न का उत्तर दो प्रश्न न० २५२ के अनुसार दो ।
- प्र० ६०-व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना प्रश्न बताओ?
- प्र० ६१-प्रश्न ६० का प्रश्न २५२ के अनुसार उत्तर दो ?
- प्र० ६२-व्यवहारनय के कथन को सच्चा मानने वालों को किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

- प्र० ६३-शरीर के सम्बन्ध से जीव की पहिचान क्यों कराई ?
- प्र० ६४-जीव के सम्बन्ध से शरीर को जीव कहा-ऐसे व्यवहार को कैसे अगीकार नहीं करना ?
- प्र० ६५-ज्ञान-दर्शन भेदों से जीव की पहिचान क्यों कराई ?
- प्र० ६६-ज्ञान-दर्शन भेदरूप व्यवहार का कैसे अगीकार न करना ?
- प्र० ६७-व्यवहार मोक्षमार्ग से निश्चय मोक्षमार्ग की पहिचान क्यों कराई ?
- प्र० ६८-व्यवहार मोक्षमार्ग को कैसे अगीकार न करना ?

दूसरी तरह से

- प्र० ६९-शरीर के सम्बन्ध से जीव की पहिचान क्यों कराई ?
- प्र० ७०-ज्ञानदर्शन भेद द्वारा जीव की पहिचान क्यों कराई ?
- प्र० ७१-अस्थिरता सम्बन्धी शुभभावों से मुनिपने की पहिचान क्यों कराई ?
- प्र० ७२-शरीर के संयोग बिना निश्चय आत्मा का उपदेश कैसे नहीं होता है ?
- प्र० ७३-व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना ?
- प्र० ७४-भेदरूप व्यवहार के बिना अभेद रूप निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता है ?

प्र० ७५—भेदरूप व्यवहार को कैसे अ गीकार नहीं करना ?

प्र० ७६—व्यवहार मोक्षमार्ग विना निश्चय मोक्षमार्ग का उपदेश कैसे नहीं होता है ?

प्र० ७७—व्यवहार मोक्षमार्ग को कैसे अ गीकार नहीं करना ?

तीसरी तरह से

प्र० ७८—निश्चय व्यवहार के विषय में प० जी ने क्या बताया ?

प्र० ७९—निश्चय व्यवहार के विषय में अमृतचंद्राचार्य जी ने क्या बताया ?

प्र० ८०—निश्चय व्यवहार के विषय में कुन्द कुन्द भगवान ने क्या बताया ?

प्र० ८१—निश्चय का श्रद्धान क्यों करने योग्य है ?

प्र० ८२—व्यवहार का श्रद्धान क्यों छोड़ने योग्य है ?

प्र० ८३—यदि ऐसा है जिनवाणी में दोनों नयों का ग्रहण क्यों कहा है ?

प्र० ८४—ऐसे भी है और ऐसे भी तो क्या दोष आता है ?

प्र० ८५—व्यवहार झूठा है तो उसका उपदेश क्यों दिया ?

प्र० ८६—व्यवहार विना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ?

प्र० ८७—व्यवहार को कैसे अ गीकार न करना ?

प्र० ८८—व्यवहार को सच्चा माने उसे क्या-क्या कहा है ?



६५ अनमोल रत्न

(१) जिस घर में भगवान की स्तुति, भक्ति नहीं की जाती वह घर कसाईखाने के समान है।

(२) जो जिनवाणी का अध्ययन नहीं करते वे अन्धे हैं।

(३) जो लोभी दान में लक्ष्मी का उपयोग नहीं करता है वह कौए से भी हल्का है।

(४) जिनेन्द्र भगवान की पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, तप, सयम और दान ये छह आवश्यक श्रावक को प्रतिदिन करना चाहिए, अगर वह हमेशा नहीं करे तो श्रावक कहलाने योग्य नहीं है।

(५) जो जिनेन्द्र देव के दर्शन प्रतिदिन नहीं करता वह पत्थर की नाव के समान है।

(६) यदि यह आत्मा दो घड़ी पुद्गल द्रव्य से भिन्न अपने गुद्ध स्वरूप का अनुभव करे (उसमे लीन हो) परिषह के आने पर भी डिगे नहीं तो घातिया कर्म का नाश करके केवल ज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष को प्राप्त हो। जब आत्मानुभव की ऐसी महिमा है तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है, इसलिए श्री गुरु ने प्रधानता से यही उपदेश दिया है।

(७) जामे जितनी बुद्धि है, उतनी देय बताय।

वाको बुरा न मानिए, और कहा से लाय।

(८) सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है।

(९) ज्ञानीजन पुण्य-पाप में हर्ष-विषाद नहीं करते।

(१०) जीव-अजीव को पहिचाने बिना भेदविज्ञान नहीं होता।

(११) सम्यक्दर्शन के बिना ज्ञान-चरित्र मिथ्या है।

(१२) भेदविज्ञान के बिना सम्यक्दर्शन नहीं होता।

(१३) पर्याय में उत्पन्न हुआ विकार क्षणिक एवं आकुलतामयी है।

(१४) अशुभभाव नरक निगोद का कारण है।

(१५) शुभभाव स्वर्गादिक का कारण है मोक्ष का कारण नहीं है।

(१६) गुद्धोपयोग मोक्षमार्ग और मोक्ष है।

- (१७) शुद्धोपयोग चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है।
- (१८) स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है।
- (१९) पाचवे गुणस्थान में देशचारित्र प्रगट होता है।
- (२०) सातवे-छठवे में सकलचारित्र प्रगट होता है।
- (२१) बारहवे गुणस्थात में यथाख्यात चारित्र प्रगट होता है।
- (२२) जिसे परणति से प्रेम है उसे अपनी आत्मा से विरोध है।
- (२३) धर्म का प्रारम्भ शुद्धोपयोग रूप आत्मानुमुति से ही होता है।
- (२४) आत्मा ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणों का खजाना है।
- (२५) सच्चि शान्ति आत्मा का अनुभव होने पर ही होती है।
- (२६) ज्ञानी को अनुकूलता-प्रतिकूलता होती ही नहीं है।
- (२७) धर्म अनुभव की वस्तु है।
- (२८) आत्मा का अनुभव हुये बिना श्रावक-मुनिपना कभी होता ही नहीं है।
- (२९) सर्वज्ञ देव की पहिचान ही आत्मा की पहिचान है।
- (३०) सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र को तीर्थ कहते हैं।
- (३१) वीतरागता का पोषण करे वह जिनवाणी है।
- (३२) ज्ञानी को भगवान के दर्शन से अपने केवलज्ञानादि की याद आती है।
- (३३) निज आत्मा का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।
- (३४) अरहत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने वाला अपने आत्मा को पहिचानता है।

(३५) स्यादवाद सहित अनेकान्त को दर्शानेवाला ही सच्चा शास्त्र है।

(३६) शक्ति की अपेक्षा सब आत्मा समान है।

(३७) एक गुण में अनन्त गुणों का रूप है।

(३८) मेरे में अनन्त सिद्ध दशा विराजमान है।

(३९) मैं सिद्ध दशा का नाथ हूँ।

(४०) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता है।

(४१) पर्याय क्रमबद्ध क्रम नियमित ही होती है।

(४२) वीतराग-विज्ञानता उत्तम वस्तु है।

(४३) पर्याय द्रव्य के सन्मुख होवे वे धर्म हैं।

(४४) मैं परम पारिणामिकभाव हूँ।

(४५) धर्मों की दृष्टि सदा ध्रुव निज द्रव्य पर ही रहती है।

(४६) आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त भी नहीं होता।

(४७) सम्यग्दर्शन शुद्धोपयोग दशा में प्रगट होता है।

(४८) सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चरित्र नियम से होता है।

(४९) शुद्धोपयोग ही वीतराग-विज्ञानता है।

(५०) वीतराग-विज्ञानता का एक नाम शुद्धोपयोग है।

(५१) शुद्धोपयोग कहो रत्नत्रय कहो एक ही बात है।

(५२) सारा विश्व काम-भोग की कथा में लीन है। सत्य बात सुहाती ही नहीं है।

(५३) पचम काल मे जैनकुल-जिनेन्द्र की वाणी सुनने को मिले फिर भी अपने को न पहचाने-वह बड़ा मुभट है ।

(५४) पचम काल मे पूज्य श्री कानजी स्वामी का योग मिलन एक अचम्भा है ।

(५५) पूज्य गुरुदेव का योग मिलने पर भी ना समझा तो समझ लो अपात्र है ।

(५६) शरीर को अपना मानने से कभी भी ससार से मुक्त ना होगा ।

(५७) शरीर को अपना न माने मुक्त ही है ।

(५८) परम पारिणामिक का आश्रय कहे आत्मा सन्मुख परिणाम कहे एक ही बात है ।

(५९) एकमात्र निज आत्मा ही सार है ।

(६०) आत्मा का आश्रय लेते ही सारा विश्व भिन्न भासने लगता है ।

(६१) देहादिक विकल्पित जाल को तू दूर कर दे तो शीघ्र ही निज आत्मा मे अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होवेगा ।

(६२) ससार का मूल कारण देहादि मे एकत्वपना ही है । वह एकमात्र निज स्वभाव की ओर दृष्टि करने से ही दूर होगा ।

(६३) धर्म का मूल सम्यग्दर्शन ही है ।

(६४) स्वरूप मे रमण करना ही चरित्र है ।

(६५) प्र०—जिन प्रतिमा को जिनेन्द्र सरीखी कौन स्वीकार करता है ? उत्तर जिसकी भवस्थिति अल्प हो गई है, मुक्ति निकट आई है वही जिन प्रतिमा को जिनेन्द्र सरीखी स्वीकार करता है ।

पहला अधिकार

जीवबन्ध, पुद्गल बन्ध और उभयबन्ध का दस प्रश्नोत्तरों द्वारा स्पष्टीकरण ।

प्रश्न १—बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस सबध विशेष से अनेक वस्तुओं में एकपने का ज्ञान होता है उस सबध विशेष को बन्ध कहते हैं ।

प्रश्न २—बन्ध की परिभाषा में चार बातें कौन-कौन सी जाननी चाहिए । जिनके जानने-मानने से मिथ्यात्वादि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता की प्राप्ति हो ?

उत्तर—(१) सबध विशेष होना चाहिए । (२) अनेक वस्तुये होनी चाहिए । (३) बाहरी रूप से देखने में, कथन में एक आनी चाहिए । (४) जैसा-जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसा-वैसा ही ज्ञान में आना चाहिए ।

प्रश्न ३—बन्ध कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—तीन प्रकार के हैं । (१) जीव बन्ध (२) पुद्गल बन्ध (३) उभय बन्ध ।

प्रश्न ४—मैं क्रोधी हूँ—यह कौन सा बन्ध है, और इसमें बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

उत्तर—मैं क्रोधी हूँ—यह जीव बन्ध है । (१) मैं क्रोधी—यह सम्बन्ध विशेष है । (२) एक आत्मा और क्रोध का भाव—यह अनेक वस्तुये हुई । (३) बाहरी रूप से देखने में तथा बोलने में आता है—

में लोधी हूँ । (८) मुझ आत्मा-अवन्ध स्वभावी है । बोध का भाव वन्ध स्वभावी है ऐसा जानकर अपनी जान की पर्याय को अवन्ध स्वभावी निज आत्मा की ओर झुका दे तो वन्धभाव अलग पड़ जावेगा ।

प्रश्न ५—जीव वन्ध को जानने-मानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—(अ) जैमे-जैमे अवन्ध स्वभावी निज आत्मा में एकाग्र होता चला जावेगा, वैसे-वैसे वन्ध स्वभावी से भिन्न होता चला जावेगा और क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जावेगा ।

(आ) जीव वन्ध के जानने-मानने से समयसारादि सम्पूर्ण अध्यात्म ग्रन्थों का मर्म उनके हाथ में आ जावेगा ।

प्रश्न ६—यह मेरा सोने का हार है—यह कौन सा वन्ध है और इसमें वन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

उत्तर—सोने का हार—यह पुद्गल वन्ध है । (१) सोने का हार—यह सम्बन्ध विशेष है । (२) सोने के हार में अनन्त पुद्गल परमाणु हैं—यह अनेक वस्तुये हुई । (३) बाहरी रूप से देखने में तथा कथन में आता है—यह मेरा सोने का हार है । (४) (अ) सोने का हार औदात्तिक शरीर है और इसका कर्त्ता वार्गणा ही है । [आ] सोने के हार में अनन्त पुद्गल परमाणु हैं । [इ] प्रत्येक परमाणु में अस्तित्व-वस्तुत्वादि अनन्त सामान्य गुण हैं और स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि अनन्त विशेष गुण हैं । प्रत्येक परमाणु एक-एक व्यजन पर्याय और अनन्त-अनन्त अर्थ पर्यायो सहित विराज रहा है । [ई] जब सोने के हार में एक परमाणु का दूसरे परमाणु में किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है तो मुझ आत्मा से सोने के हार का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? कभी भी नहीं हो सकता है । ऐसा श्रद्धान ज्ञान वर्तें तो उपचरित असदभूत व्यवहार नय से ऐसा कहा

जा सकता है कि—यह मेरा सोने का हार है, परन्तु ऐसा है नहीं ।

प्रश्न ७—पुद्गल बन्ध को जानने-मानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—[अ] विश्व में जितने समान जातीय स्कन्ध द्रष्टृगोचर होते हैं, उन सब में पुद्गल बन्ध के अनुसार ज्ञान-श्रद्धान् वर्तेंगे तो पुद्गल स्कन्धों में जो अनादिकाल से द्रव्यरूप बुद्धि वर्त रही है, उसका अभाव होकर धर्म की प्राप्ति करके क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जावेगा । [आ] अज्ञानी अनादिकाल में पुद्गल बन्ध में अपनेपने की मान्यता से पागल हो रहा था—उसका रहस्य समझ में आ जावेगा ।

प्रश्न ८—मैं प० कैलाश चन्द्र जैन हूँ—यह कौन सा बन्ध है और इसमें बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

उत्तर—मैं प० कैलाश चन्द्र जैन हूँ यह उभय बन्ध है । (१) मैं प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ यह सम्बन्ध विशेष है । (२) एक मुझ आत्मा और कैलाश चन्द्र में अनन्त पुद्गल परमाणु—यह अनेक वस्तुये हुई । (३) मैं प० कैलाश चन्द्र जैन हूँ—ऐसा बाह्यी रूप से देखने में तथ बोलने में आता है । (४) [अ] मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवत हूँ, कैलाश चन्द्र सर्वथा अजीव तत्त्व है । [आ] अनादिकाल से ' एक समय करके कैलाश चन्द्र अजीव तत्त्व में अपनेपने की म' से अनन्त बार निगोद गया और अपरिमित दुःख सहन किये ' वर्तमान में सच्चे देव-गुरु-धर्म का संयोग मिला, उन्होंने वत्तू तो ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व है । कैलाश च अजीव तत्त्व है । अजीवतत्त्व से तेरा किसी भी प्रकार का अपेक्षा कोई सम्बन्ध नहीं है । [ई] ऐसा सुनते-जान आस्रव बन्ध भागने शुरू हो जायेंगे और सवरनिर्जरा व' क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ कहलायेगा ।

प्रश्न ९—उभय बन्ध को जानने-मानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—[अ] विश्व में निगोद से लगाकर १४वें गुणस्थान तक के असमान जातीय उभय बन्ध का सच्चा ज्ञान हो जाता है। [आ] उभय बन्ध को समझने से प्रयोजन भूत सात तत्वों का रहस्य समझ में आ जाता है।

प्रश्न १०—असमानजातीय उभय बन्ध के विषय में मोक्ष मार्ग प्रकाशक तथा प्रवचनसार में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मोक्ष मार्ग प्रकाशक सातवें अधिकार में लिखा है—असमानजातीय उभय बन्ध का ज्ञान हो जावे तो मिथ्याद्रष्टिपनान रहे। (२) प्रवचनसार गाथा १५४ की टीका में भावार्थ में आया है कि मनुष्य-देव इत्यादि अनेक द्रव्यात्मक असमान जातीय द्रव्य पर्यायों में भी जीव का स्वरूप अस्तित्व और प्रत्येक परमाणु का स्वरूप अस्तित्व सर्वथा भिन्न-भिन्न है। स्व-पर का भेद विज्ञान करने के लिए जीव के स्वरूप अस्तित्व को पद-पद पर लक्ष्य में लेना योग्य है।

प्रश्न ११—यह मेरी किताब है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १२—मैं वह हूँ—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १३—मैंने हिंसा का भाव किया—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १४—यह मेरी हीरे की अंगूठी है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १५—मैं शीतल प्रसाद हूँ—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १६—मैंने ब्रह्मचर्य का भाव किया—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १७—यह मेरा महल है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १८—मैं प्रबोध चन्द्र एडवोकेट हूँ—इस बात पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १९—मैं शान्ति रखता हूँ—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २०—यह मेरी कार है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २१—मैं अजीत कुमार शास्त्री हूँ—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २२—मैंने अहिंसा का भाव किया—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २३—यह मेरी हीरो की दुकान है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २४—मैं डॉक्टर हूँ—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २५—मैंने एकसरे मशीन मगाई है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २६—मैं राष्ट्रपति हूँ—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २७—मैंने हेलिकाप्टर ले लिया है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २८—यह मेरा पति है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २९—मे विधायक हूँ—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न ३०—मैंने चीन से जूता बनवाया है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १—मैं उठा—इस वाक्य पर (१) अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण और द्रव्यत्व गुण को कब माना और (२) अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण और द्रव्यत्व गुण को कब नहीं माना ?

उत्तर—(१) तराजू के एक पलड़े में मुझ आत्मा अस्तित्व गुण के कारण कायम रह कर, वस्तुत्व गुण के कारण अपनी जानने रूप प्रयोजनभूत क्रिया करता हुआ और द्रव्यत्व गुण के कारण निरन्तर जानने रूप परिणमित हो रहा है। तराजू के दूसरे पलड़े में शरीर के उठने रूप अनन्त पुद्गल परमाणु अस्तित्व गुण के कारण कायम रहते हुए, वस्तुत्व गुण के कारण अपनी उठने रूप प्रयोजनभूत क्रिया करते हुये और द्रव्यत्व गुण के कारण निरन्तर परिणमते हैं। शरीर के उठने रूप पुद्गल परमाणुओं से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नहीं है। ऐसी मान्यता वाले ने निज आत्मा का और शरीर के उठने रूप पुद्गल परमाणुओं के अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण, और द्रव्यत्व गुण को माना। और (२) शरीर के उठने रूप पुद्गलों के कार्यों में—मैं उठा ऐसी मान्यता वाले ने निज आत्मा का और शरीर के उठने रूप पुद्गलों के अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण, और द्रव्यत्व गुण को नहीं माना।

प्रश्न २—मैं उठा—इस वाक्य पर (१) प्रमेयत्व गुण को कब माना (२) प्रमेयत्व गुण को कब नहीं माना ?

उत्तर—(१) निज आत्मा ज्ञायक और शरीर के उठने रूप अनन्त पुद्गल परमाणुओं का कार्य व्यवहारनय से मेरे वास्तव में निज आत्मा ज्ञायक है और जानने ऐसे स्व-स्वामी सम्बन्ध से भी कुछ सिद्धि नहीं है ज्ञायक है। ऐसी मान्यता वाले ने प्रमेयत्व गुण शरीर के उठने रूप अनन्त पुद्गलों के कार्यों में—मैं उठा वाले ने शरीर के उठने रूप अनन्त पुद्गलों के

मानने के कारण प्रमेयत्व गुण को नहीं माना ?

प्रश्न ३—मैं उठा—इस वाक्य पर (१) अगुरुलघुत्व गुण को कब माना और (२) अगुरुलघुत्व गुण को कब नहीं माना ?

उत्तर—(१) निज आत्मा का और उठने रूप अनन्त पुद्गलो का द्रव्यक्षेत्र-काल-भाव सर्वथा पृथक् है। ऐसी मान्यता वाले ने अगुरुलघुत्व गुण को माना और (२) उठने रूप पुद्गलो के कार्यों में मैं उठा—ऐसी मान्यता वाले ने अगुरुलघुत्व गुण को नहीं माना।

प्रश्न ४—मैं उठा—इस वाक्य पर (१) प्रदेशत्व गुण को कब माना और (२) प्रदेशत्व गुण को नहीं माना ?

उत्तर—(१) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी एक निज आकार का और शरीर के उठने रूप जड रूपी एक प्रदेशी पुद्गलो के अनन्त आकारों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, ऐसी मान्यता वाले ने प्रदेशत्व गुण को माना और (२) जड रूपी एक प्रदेशी पुद्गलो के अनन्त आकारों में मैं उठा ऐसी मान्यता वाले ने प्रदेशत्व गुण को नहीं माना।

प्रश्न ५—मैं उठा—इस वाक्य पर (१) अत्यन्ताभाव को कब माना और (२) अत्यन्ताभाव को कब नहीं माना ?

उत्तर—(१) निज चैतन्य अरुपी ज्ञायक भगवान् आत्मा का शरीर के उठने रूप पुद्गलो से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है—ऐसी मान्यता वाले ने अत्यन्ताभाव को माना और (२) शरीर के उठने रूप पुद्गलो में मैं उठा—ऐसी मान्यता वाले ने अत्यन्ताभाव को नहीं माना।

प्रश्न ६—मैं उठा—इस वाक्य पर (१) अन्योन्याभाव को कब माना और (२) अन्योन्याभाव को कब नहीं माना ?

उत्तर-शरीर का उठना आत्मा से तो नहीं हुआ परन्तु द्रव्यकर्म के कारण तो शरीर उठा ऐसा कोई कहता है। अरे भाई द्रव्यकर्म से स्कन्धों की वर्तमान पर्याय का और शरीर के उठने रूप स्कन्धों की वर्तमान पर्यायों में अन्योन्याभाव है। जब एक जाति के पुद्गलों के कार्यो में आपस में सम्बन्ध नहीं है। तो मुझ आत्मा का शरीर उठने के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है? कभी भी नहीं हो सकता है। ऐसी मान्यता वाले ने अन्योन्याभाव को माना और (२) शरीर के उठने रूप क्रिया का आत्मा के साथ तो सम्बन्ध नहीं है परन्तु द्रव्यकर्म के कारण शरीर उठा-ऐसी मान्यता वालों ने अन्योन्याभाव को नहीं माना।

प्रश्न ७-मैं उठा-इस वाक्य में (१) प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव को कब माना और (२) प्रागभाव और प्रध्वसाभाव को कब नहीं माना ?

उत्तर-(१) शरीर के उठने रूप वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय भी कारण नहीं है और शरीर के उठने रूप वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय भी कारण नहीं है क्योंकि शरीर के उठने रूप वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में प्रागभाव है और शरीर के उठने रूप वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय में प्रध्वसाभाव है, ऐसी मान्यता वालों ने प्रागभाव और प्रध्वसाभाव को माना और (२) शरीर के उठने रूप आत्मा पर्याय का पूर्व पर्याय से सम्बन्ध है और शरीर के उठने रूप क्रिया का भविष्य की पर्याय से भी कुछ सम्बन्ध है-ऐसी मान्यता वाले ने प्रागभाव और प्रध्वसाभाव को नहीं माना।

प्रश्न ८-मैं उठा-इस वाक्य में चारों अभाव के समझने से बीत-रागता कैसे निकलती है स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर-(१) उठने रूप पुद्गलों का मुझ चेतन आत्मा में अत्यन्ताभाव है। (२) द्रव्यकर्म और शरीर के उठने रूप वर्तमान पर्यायों में

अन्योन्याभाव है। (३) गरीर के उठने रूप वर्तमान पर्याय का भूत की पर्याय में प्रागभाव है। (४) गरीर के उठने रूप वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय में प्रध्वसाभाव है। अब जैसे गरीर का उठना उस समय पर्याय की योग्यता में ही हुआ है, वैसे ही विश्व में जितने भी कार्य हैं, वे सब उस समय की पर्याय की योग्यता से हो चुके हैं, हो रहे हैं, और भविष्य में होते रहेंगे। ऐसा समझने से पर में कर्त्ता-भोक्ता की खोटी मान्यता का अभाव होकर तत्काल दीत-रागता की प्राप्ति हो जाती है। और फिर त्रम से मोक्ष रूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न ९-मैंने घड़ा बनाया-इस वाक्य पर सामान्य गुण और चार अभावों को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार समझाइये ?

प्रश्न १०-मैंने रोटी बनाई-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावों को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न ११-मैंने अग्नि से पानी गरम किया-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावों को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १२-मैंने किताब बनाई-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावों को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १३-मैंने बिस्तर बिछाया-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावों को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १४-मैं खड़ा हुआ-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १५-मैंने कुर्सी बनाई-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तर के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १६-मेरे घर मे बीस मेम्बर हैं-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तर के अनुसार लिखकर समझाइये ?

प्रश्न १७-हम तो तीन हैं-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक प्रश्नोत्तरो के अनुसार लिखकर समझाइये ?

प्रश्न १८-यह मेरी दुकान है-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लिखकर समझाइये ?

प्रश्न १९-मैंने सूट बनवाया है-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २०-मेरा ब्याह हो गया है-इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को लिखकर समझाइये ?

प्र० १- कार्य पर से छह प्रश्न कौन-कौन से उठते हैं ?

उत्तर-(१) किमने किया ! कर्त्ता (२) क्या किया ? कर्म (३) किम साधन द्वारा किया ? कारण । (४) किसके लिये किया ? सम्प्रदान (५) किसमे से किया ? अपादान । (६) किसके आधार से किया ? अधिकरण ।

प्र० २- कारक कितने प्रकार के कहलाते हैं ?

उत्तर-चार प्रकार के कहलाते हैं । (१) निमित्त कारक (२) त्रिकाली कारक (३) अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय क्षणिक उपादान कारक (४) उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारक ।

प्र० ३- मैं उठा—इस वाक्य पर निमित्त कारक किस प्रकार कहे जाते हैं ?

उत्तर-गरीर उठा—यह कार्य है और कार्य पर से छह प्रश्न उठते हैं । (१) कौन उठा ? मैं (आत्मा) अत मैं (आत्मा) कर्त्ता हुआ । (२) मैंने क्या किया ? उठना । अत गरीर का उठना कर्म हुआ । (३) उठना किस साधन के द्वारा हुआ ? रस्सी के द्वारा हुआ । अत रस्सी कारण हुआ । (४) उठना किसके लिए हुआ ? बाजार जाने के लिए । अत बाजार सम्प्रदान हुआ । (५) उठना किसमे से हुआ ? विस्तर मे से हुआ । अत विस्तर अपादान हुआ । (६) उठना किसके आधार से हुआ ? जमीन के आधार से हुआ । अत जमीन अधिकरण हुआ ।

प्र० ४-क्या निमित्त कारक भिन्न-भिन्न होते हैं और ये निमित्त कारक किस अपेक्षा कहे जा सकते हैं ?

उत्तर-इसमे आत्मा कर्त्ता, उठना कर्म, रस्सी कारण, बाजार

सम्प्रदान, विस्तर अपादान, और जमीन अधिकरण—इसमें सभी कारक भिन्न-भिन्न होते हैं। यह निमित्त कारक असत्य है और ये सब उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहे जा सकते हैं।

प्र० ५—निमित्त कारण को ही कोई सत्य माने तो उन महानुभावों को जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—जो आत्मा, रस्सी, बाजार, विस्तर, जमीन आदि निमित्त कारको से ही शरीर उठने रूप कार्य की उत्पत्ति मानते हैं। (१) उन्हें प्रवचनसार कलश ५५ में कहा है कि वह पद-पद पर धोखा खाता है। (२) उन्हें समयसार कलश ५५ में कहा है कि उनका सुलटना दुर्निवार है और यह उनका अज्ञान मोह अन्धकार है। (३) उन्हें पुरुषार्थ सिद्धियुपाय गाथा ६ में कहा है कि तस्य देवना नास्ति। (४) उन्हें आत्मावलोकन में कहा है कि यह उनका हरामजादीपना है।

प्र० ६—आहारवर्गणा त्रिकाली उपादान कारक और शरीर उठने रूप कार्य उपादेय। इसको समझने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—(१) आत्मा, रस्सी, बाजार, विस्तर, जमीन आदि निमित्त कारको से शरीर के उठने रूप कार्य हुआ, ऐसी खोटी मान्यता का अभाव हो जाता है। (२) शरीर के उठने रूप कार्य के लिए आहार वर्गणा को छोड़कर दूसरी वर्गणाओं से दृष्टि हट जाती है। (३) अब यहाँ पर उठने रूप कार्य के लिए एक मात्र आहारवर्गणा की तरफ देखना रहा।

प्र०—मैं उठा—इस वाक्य पर आहारवर्गणा त्रिकाली उपादान कारक की अपेक्षा छह कारक लगाकर समझाइये।

उत्तर—शरीर उठा—यह कार्य है और कार्य पर से छह प्रश्न उठते

है । (१) शरीर का उठना किससे हुआ ? आहार वर्गणा से । अतः आहार वर्गणा कर्त्ता हुआ (२) आहार वर्गणा ने क्या किया ? शरीर का उठना । अतः शरीर उठा यह कर्म हुआ । (३) शरीर का उठना किस साधन से हुआ ? आहार वर्गणा के साधन द्वारा । अतः आहार-वर्गणा करण हुआ । (४) शरीर का करण उठना किसके लिए हुआ ? आहारवर्गणा के लिए । अतः आहार वर्गणा सम्प्रदान हुआ (५) शरीर का उठना किससे हुआ ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय क्षणिक अपादान कारण का आभाव करके आहारवर्गणा में से हुआ । अतः आहार वर्गणा अपादान हुआ । (६) शरीर का उठना किसके आधार से हुआ ? आहारवर्गणा के आधार से । अतः आहारवर्गणा अधिकरण हुआ ।

प्र० ८-कोई चतुर प्रश्न करता है कि आप कहते हो शरीर के उठने रूप कार्य का, आत्मा, रस्सी, बाजार आदि निमित्त कारको से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है । तो फिर विश्व में आहारवर्गणा पहिले से ही थी तब पहिले शरीर का उठना क्यों नहीं हुआ । अतः आपका ऐसा कहना कि आहार-वर्गणा उपादान-कारण और शरीर के उठने रूप कार्य-कर्म है यह बात झूठी साबित होती है ?

उत्तर-अरे भाई हमने आहार वर्गणा को शरीर के उठने रूप कार्य का उपादान कारक कहा है, वह तो आत्मा, रस्सी, बाजार आदि निमित्त कारको से पृथक् करने की अपेक्षा से कहा है । वास्तव में आहारवर्गणा भी शरीर के उठने रूप कार्य का सच्चा उपादान कारण नहीं है ।

प्र० ९-आहार वर्गणा भी शरीर के उठने रूप कार्य का सच्चा उपादान कारण नहीं है, तो यहाँ पर शरीर के उठने रूप कार्य का सच्चा उपादान कारण कौन है ?

उत्तर-आहार वर्गणा में अनादिकाल से पर्यायो का प्रवाह चला

आ रहा है। मानो दस नम्बर पर शरीर के उठने रूप कार्य हुआ तो उसमें अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण शरीर के उठने रूप कार्य का यहाँ पर सच्चा उपादान कारण है।

प्र० १०—आहार वर्गणा में अनादिकाल से पर्यायो का प्रवाह क्यों चला आ रहा है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य-गुण अनादिअनन्त ध्रुव्य रहता हुआ एक पर्याय का व्यय और दूसरी पर्याय का उत्पाद एक ही समय में स्वयं स्वतः अपने परिणमन स्वभाव के कारण करता रहा है, करता है, और भविष्य में करता रहेगा—ऐसा वस्तु स्वरूप है। इसी कारण अनादिकाल से आहारवर्गणा में पर्यायो का प्रवाह चला आ रहा है।

प्र० ११—अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण और शरीर के उठने रूप कार्य कर्म—इसको जानने—मानने से क्या-क्या लाभ रहे ?

उत्तर—(१) भूत-भविष्य की पर्यायो से शरीर के उठने रूप कार्य हुआ—ऐसी मान्यता दूर हो गई। (२) आहारवर्गणा जो त्रिकाली उपादान कारक था, वह भी व्यवहार कारण हो गया। (३) अब यहाँ पर शरीर के उठने रूप कार्य के लिए मात्र अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण की तरफ देखना रहा।

प्र० १२—मैं उठा—इस वाक्य पर अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण की अपेक्षा छह कारण लगाकर समझाइये ?

उत्तर—शरीर उठा—यह कार्य है और कार्य पर से छह प्रश्न उठते हैं। (१) शरीर उठने रूप कार्य किसने किया ? अनन्तर पूर्व

क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारक ने। अत अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण कर्त्ता हुआ। (२) अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण ने क्या किया ? शरीर के उठने रूप कार्य किया। अत शरीर उठा-यह कर्म हुआ। (३) शरीर का उठना किस साधन द्वारा हुआ ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण के साधन द्वारा। अत अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण करण हुआ। (४) शरीर का उठना किसके लिए हुआ ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण के लिए। अत अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण सम्प्रदान हुआ। (५) शरीर का उठना किसमे से हुआ ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण मे से। अत अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारक। अपादान हुआ। (६) शरीर का उठना किसके आधार से हुआ ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण अधिकरण हुआ।

प्र० १३-कोई चतुर फिर प्रश्न करता है कि अभाव मे से भाव की उत्पत्ति नही होती है और पर्याय मे से पर्याय नही आती है—ऐसा जिनवाणी मे कहा है। फिर यह मानना कि अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण और शरीर उठने रूप कार्य कर्म यह आपकी बात झूठी साबित होती है ?

उत्तर-अरे भाई ! अभाव मे से भाव की उत्पत्ति नही होती है और पर्याय मे से पर्याय नही आती है—यह बात जिनवाणी की बिल्कुल ठीक है। परन्तु हमने तो कार्य से पहिले कौन सी पर्याय होती है उसकी अपेक्षा अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर को क्षणिक उपादान कारण कहा है, परन्तु अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर भी शरीर उठने रूप कार्य का सच्चा उपादान कारण नही है।

प्र० १४—अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण भी शरीर के उठने रूप कार्य का सच्चा उपादान कारण नहीं है तो वास्तव में शरीर के उठने रूप कार्य का सच्चा अपादान कारण कौन है ?

उत्तर—वास्तव में उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण ही शरीर के उठने रूप कार्य का सच्चा उपादान कारक है।

प्र० १५—उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण कर्त्ता और शरीर उठा यह कर्म । इस पर छह कारक लगाकर समझाइये ?

उत्तर—शरीर उठा—यह कर्म है, कार्य पर से छह प्रश्न उठते हैं। (१) शरीर का उठना किसने किया ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर उठने ने। अतः शरीर उठा—यह कर्त्ता हुआ। (२) उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर ने क्या किया ? शरीर उठने रूप कार्य किया। अतः शरीर उठा—यह कर्म-हुआ। (३) शरीर का उठना किस साधन द्वारा हुआ ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर के साधन द्वारा। अतः शरीर उठना-करण हुआ। (४) शरीर का उठना किसके लिए हुआ ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर के लिए। अतः शरीर उठना सम्प्रदान हुआ। (५) शरीर का उठना किसमें से बना ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर में से बना। अतः शरीर का उठना अपादान हुआ। (६) शरीर का उठना किसके आधार से हुआ ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक अपादान कारण शरीर के आधार से। अतः शरीर का उठना अधिकरण हुआ।

प्र० १६—उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक अपादान कारण से ही शरीर का उठना हुआ इसको जानने-मानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर-जैसे शरीर का उठना-उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण से हुआ है, उसी प्रकार विश्व में जितने कार्य हैं, वे सब उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण से हो चुके हैं, हो रहे हैं और भविष्य में होते रहेंगे ऐसा जानते-मानते ही दृष्टि अपने स्वभाव पर आ जाती है।

प्र० १७-मैंने रथ बनाया-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १८-दर्शन मोहनीय का उपशम होने से ओपशमिक सभ्यक्त्व हुआ-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १९-केवल ज्ञानावरणी के अभाव से केवल ज्ञान हुआ इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २०-मैंने पलंग पर हाथ से कपड़े बिछाये इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २१-मैंने कपड़ा बेचकर रुपया कमाया इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २२-मैंने हाथ और कलम से पुस्तक बनाई-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० २३-मैं मुंह से जोर-शोर से बोलता हूँ-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० २४-मैंने चाबी से दुकान का ताला खोला-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० २५-मैंने आख द्वारा चश्मे से ज्ञान किया-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० २६-मैंने औजारों से अलमारी बनाई-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० २७-मैंने भगवान की दिव्यध्वनी से ज्ञान प्राप्त किया-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० २८-मैंने मिस्त्रियों द्वारा सीमेट से मकान तैयार कराया-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० २६-मैंने मुंह द्वारा रमेश को गाली दी-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ३०-मैंने चाक, कीली, डंडा द्वारा घड़ा बनाया-इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारण लगाकर समझाइये ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो ।

दूसरा अधिकार

छहढाला की प्रथम तीन ढालो पर प्रयोजनभूत
सात तत्वो का १३० प्रश्नोत्तरो द्वारा समाधान

जीवतत्त्व संबंधी जीव की भूल का सपष्टीकरण

प्र० १—अज्ञानी अपने को सुखी दुःखी किसे मानता है ?

उ०—शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी—ऐसा मानता है ।

प्र० २—शरीर की अनुकूल अवस्था से मैं सुखी और प्रतिकूल अवस्था से मैं दुःखी—ऐसी मान्यता को छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०—“मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ।”
अर्थात् वीतराग विज्ञानता रूप निज शुद्ध आत्मा को भूलकर शरीर की अनुकूल अवस्था से मैं सुखी और प्रतिकूल अवस्था से मैं दुःखी—ऐसी मान्यता को मोहरूपी महा मदिरापान बताया है ।

प्र० ३—शरीर की अनुकूल अवस्था से मैं सुखी और प्रतिकूल अवस्था से मैं दुःखी ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान छहढाला की प्रथम ढाल में क्यों बताया है ?

उ०—(१) तराजू के एक पलडे में स्वयं वीतराग विज्ञानता रूप एक ज्ञायक शुद्ध आत्मा । (२) तराजू के दूसरे पलडे में शरीर की अनुकूलता और प्रतिकूलता रूप अवस्था आहारवर्गणा का कार्य है । (३) इन सब में एकत्वबुद्धि होने से शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी

और प्रतिकूलता से मैं दुःखी-ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है।

प्र० ४-शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और प्रतिकूलता से मैं दुःखी-ऐसी मोहरूपी महामदिरापान का फल छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०-ऐसी मोहरूपी महामदिरापान का फल चारों गतियों में घूमकर निगोद बताया है।

प्र० ५-शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और प्रतिकूलता से मैं दुःखी-ऐसी मान्यता का फल चारों गतियों में घूमकर निगोद क्यों बताया है ?

उ०-(१) सुख आत्मा के सुख गुण में से आता है और दुःख सुख गुण की विपरीत दशा है। (२) जब शरीरादि में सुख या दुःख की कोई पर्याय नहीं है। शरीर की अनुकूलता और प्रतिकूलता व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। (३) परन्तु अज्ञानी शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और प्रतिकूलता से मैं दुःखी हूँ, ऐसी खोटी मान्यता से चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० ६-"मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय में सबल दीन, बेरुप सुभग मूरख प्रवीण॥ छहढाला की दूसरी ढाल के इस दोहे में जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०-(१) चेतन को है उपयोगरूप अर्थात् मैं ज्ञानदर्शन उपयोग-मयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुःखी मानना ही जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है। (२) मैं

ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता-द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी-ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। (४) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता-द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी-ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत मिथ्या-चारित्र्य है। (५) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी-ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैन धर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी-ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्य-भव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी-ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र्य बताया है।

प्र० ७-मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ, और मेरा कार्य ज्ञाता द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी-ऐसा जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्-

दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे—इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०—“चेतन को है उपयोगरूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप । पुद्गल नभ धर्म अधर्मकाल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥” (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य ज्ञाता द्रष्टा है । (३) आँख-नाक-कान औदारिक शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है । (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है । (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है । (९) लोकप्रमाण असख्यात काल द्रव्य है । इन सब द्रव्यों से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है । ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्त्व का आश्रय ले, तो शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुःखी, ऐसा जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर समयदर्शनादि की प्राप्ति होकर तन्म से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे, यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है ।

प्र० ६—मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता-द्रष्टा है । इस बात को भूलकर शरीर वर अनकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुःखी-ऐसी जगन्मयता का आपने जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु अपने को जो ज्ञानी मानते हैं वह भी शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुःखी-ऐस

तो ज्ञानी भी कहने सुने-देखे जाने हैं । तो क्या ज्ञानियों को भी जीव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उ०-ज्ञानियों को बिल्कुल नहीं होते । (१) क्योंकि जिन, जिन-वर और जिनवरवृषभों ने शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुःखी-ऐसी खोटी मान्यता को जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है । (२) ज्ञानी जो बनते हैं वे जीव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते हैं । (३) ज्ञानियों को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है । (४) शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुःखी-ज्ञानियों के ऐसे कथन को आगम में अनुप-चरित असद्व्यवहारनय कहा है ।

प्र० ६-निर्धन होने से मैं दुःखी और राजा होने से मैं सुखी-इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १०-मेरे पास धन होने से मैं सुखी और मेरे पास धन न होने से मैं दुःखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ११-मेरा बड़प्पन होने से मैं सुखी और मेरा बड़प्पन न होने से मैं दुःखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १२-मेरी स्त्री न होने से मैं दुःखी और मेरी स्त्री होने से मैं सुखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १३-कुरूप होने से मैं दुःखी और सुन्दर होने से मैं सुखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १४-दूध मिलने से मैं सुखी और दूध न मिले तो मैं दुःखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १५-लडकी होने से मैं दुःखी और लडका होने से मैं सुखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १६-हल्का होने से मैं दुःखी और भारी होने से मैं सुखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १७-बदबू आने से मैं दुःखी और खुशबू आने से मैं सुखी ।

इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १८-बुखार आने से मैं दुःखी और ठीक होने से मैं सुखी ।
इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १९-व्यापार चलने से मैं सुखी और व्यापार न चलने से मैं दुःखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० २०-सिनेमा देखने से मैं सुखी और सिनेमा देखने को न मिलने से मैं दुःखी । इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० २१—अज्ञानी अपना जन्म और मरण किससे मानता है ?

उ०—शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण मानता है ।

प्र० २२—शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसी मान्यता को छहडाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०—“मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि” अर्थात् वीतराग विज्ञानतारूप निज शुद्ध आत्मा को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है ।

प्र० २३—शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान छहडाला की प्रथम ढाल में क्यों बताया है ?

उ०—(१) तराजू के एक पलड़े में स्वयं वीतराग विज्ञानतारूप एक ज्ञायक शुद्धात्मा । (२) तराजू के दूसरे पलड़े में शरीर की उत्पत्ति व मरणरूप अनन्त परमाणु का स्कन्ध । (३) इन सब में एकत्व बुद्धि होने से शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण अतः ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है ।

प्र० २४—शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसी मोहरूपी महामदिरापान का फल छहडाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०-ऐसी मोहरूपी महामदिरापान का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना बताया है ।

प्र० २५-शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण-ऐसी मोहरूपी महामदिरापान का फल छहढाला की प्रथम ढाल मे चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना क्यों बताया है ?

उ०-(१) स्वयं वीतराग विज्ञानतारूप एक ज्ञायक बुद्ध आत्मा । (२) शरीर की उत्पत्ति और वियोग व्यवहारनय से एक मात्र ज्ञान का ज्ञेय है । (३) परन्तु ऐसा न मानकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण है-ऐसी खोटी मान्यता से चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना बताया है ।

प्र० २६-तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान । छहढाला की दूसरी ढाल के इस दोहे मे अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०-(१) जीव जन्मादि रहित नित्य ही है । इस बात को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण मानना ही अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है । (२) जीव जन्मादि रहित नित्य ही है । इस बात को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण मानना-ऐसा अनादिकाल का एक-एक समय करके चला आ रहा श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है । (३) जीव जन्मादिरहित नित्य ही है । इस बात को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण जानना-ऐसा अनादिकाल का एक-एक समय करके चला आ रहा ज्ञान अगृहीत मिथ्या ज्ञान है । (४) जीव जन्मादि रहित नित्य ही है । इस बात को भूलकर शरीर

की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण रूप आचरण—ऐसा अनादिकाल का एक-एक समय करके चला आ रहा आचरण अगृहीत मिथ्याचरित्र है। (५) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचरित्र बताया है।

प्र०-२७—जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। इस बात को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे—इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०—चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मैं ज्ञान-दशन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है।

(६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है।
 (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है। (९) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है। इन सब द्रव्यों से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर जन्मादि रहित अजर-अमर नित्य निजज्ञान-स्वभावी आत्मा का आश्रय ले, तो शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसा अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की मूल-रूपे अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति हो जावे। यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है।

प्र० २८—जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। इस बात को भूल-कर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण—ऐसी मान्यता को आपने अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते हैं वह भी शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण है ऐसा कहते-सुने-देखे जाने हैं। क्या ज्ञानियों को भी अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उ०—ज्ञानियों को बिल्कुल नहीं होते हैं। (१) क्योंकि जिन जिनवर और वृषभों ने शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण ऐसी खोटी मान्यता को अजीव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की मूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते हैं वे अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-

दर्शनादि का अभाव करके ही बनते हैं। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण-ज्ञानियो के ऐसे कथन को आगम मे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहा है।

प्र० २६-मैं बालक हूं, मैं जवान हूं-इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३०-मैं हल्का हूं, मैं भारी हूं-इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३१-मैं काला हूं, मैं गोरा हूं। इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३२-मुझे लकवा हो गया था, अब स्वस्थ हो गया-इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३३-मुझे भूख लगी है, मुझे तृषा लगी है। इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३४-मुझे सरदी लगती है, मुझे गरमी लगती है। इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ३५—मुझे खट्टा आम अच्छा नहीं लगता है, मीठा आम अच्छा लगता है । इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ३६—सै चला-सै गिरा—इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ३७—मुझे बदबू अच्छी नहीं लगती है, मुझे खुशबू अच्छी लगती है । इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ३८—मुझे फिल्मी गाना सुहाता है, मुझे धर्म की बात नहीं सुहाती । इस बात पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ३९—मेरा सकान है, मेरा जेवर है । इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ४०—मेरी नाक कट गयी है, मेरा हाथ कट गया है । इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० ४१—आश्रवतत्त्व के विषय में अज्ञानी क्या मानता है ?

उ०-हिंसादिरूप पापाश्रव है उन्हे हेय मानता है और अहिंसा-दिरूप पुण्याश्रव है उन्हे उपादेय मानता है ।

प्र० ४२-हिंसादिरूप पापाश्रव हेय हैं और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव उपादेय है । ऐसी मान्यता को छहढाला को प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०-“मोह महामद पियो अनादि भूल आपको भरमत वादि ।” अर्थात्-मोह, राग, द्वेष आदि शुभाशुभ विकारी भाव आश्रव भाव है । ये प्रत्यक्ष दुख के देने वाले हैं और बन्ध के ही कारण हैं । इस बात को भूलकर हिंसादिरूप पापाश्रव को हेय माननेरूप और अहिंसा-दिरूप पुण्याश्रव को उपादेय माननेरूप मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है ।

प्र० ४३-हिंसादिरूप पापाश्रव हेय है और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव उपादेय है-ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०-(१) मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारी भाव आश्रव-भाव है । ये प्रत्यक्ष दुख के देने वाले हैं और बन्ध के ही कारण हैं । (२) हिंसादिरूप पापाश्रव और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव दोनों ही हेय हैं । इसलिये हिंसादिरूप पापाश्रव हेय हैं और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव उपादेय है, इस खोटी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है ।

प्र० ४४-हिंसादिरूप पापश्रव हेय है और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव उपादेय है-ऐस मोहरूपी महामदिरापान का फल छहढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है ?

उ०-ऐसी मोहरूपी मदिरापान का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना बताया है ।

प्र० ४५-हिंसादिरूप पापाश्रव हेय है और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव उपादेय है-ऐसी मान्यता का फल चारों गतियों मे घूमकर निगोद जाना क्यों बताया है ।

उ०-(१) हिंसादिरूप पापाश्रव और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव दोनो हेय है और दोनो ही बन्ध के कारण है । (२) परन्तु ऐसा न मानने के कारण इस खोटी मान्यता का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना बताया है ।

प्र० ४६-“रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनहो को सेवत गिनत चैन ।” छहढाला की दूसरी ढाल मे इस दोहे मे आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

प्र०-आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्ट ज्ञान कराना है । मोह, राग-द्वेष आदि भाव आश्रवभाव है । ये प्रत्यक्ष दुःख के देने वाले है और बन्ध के ही कारण है इस बात को भूलकर आश्रव तत्त्व मे जो हिंसादिरूप पापाश्रव है उन्हें हेय मानना और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव है उन्हें उपादेय मानना-यह आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है । (२) मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है । ये प्रत्यक्ष दुःख के देने वाले है और बन्ध के ही कारण है । इस बात को भूलकर आश्रव तत्त्व मे जो हिंसादिरूप पापाश्रव है उन्हें हेय मानना और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव हैं उन्हें उपादेय मानना-ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन

है । (३) मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है । ये प्रत्यक्ष दुःख के देने वाले हैं और बन्ध के ही कारण हैं । इस बात को भूलकर आश्रवतत्त्व में जो हिसादिरूप पापाश्रव है उन्हें हेय मानना और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव है उन्हें उपादेय जानना-ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है । (४) मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है । ये प्रत्यक्ष दुःख के देने वाले हैं और बन्ध के ही कारण हैं । इस बात को भूलकर आश्रवतत्त्व में जो हिसादि पापाश्रव है उन्हें हेय मानना और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव है उन्हें उपादेयरूप आचरण-ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत मिथ्याचारित्र है । (५) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से आश्रवतत्त्व में जो हिसादिरूप पापाश्रव है उन्हें हेय मानना और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव है उन्हें उपादेय मानने रूप अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है । (६) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से आश्रवतत्त्व में जो हिसादिरूप पापाश्रव है उन्हें हेय मानना और अहिंसादि पुण्याश्रव है उन्हें उपादेय जानने रूप अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है । (७) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से आश्रवतत्त्व में जो हिसादिरूप पापाश्रव है उन्हें हेय मानना और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव है उन्हें उपादेय मानने रूप अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ।

प्र० ४७-मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है । ये प्रत्यक्ष दुःख के देने वाले हैं और बन्ध के ही कारण हैं । इस बात को भूलकर आश्रवतत्त्व में जो हिसादिरूप पापाश्रव है उन्हें हेय

माननेरूप और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव हैं उन्हें उपादेय माननेरूप आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखोपना कैसे प्रगट होवे ? इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०—चेतन को है उद्योगरूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप । पुद्गल-नभ धर्म-अधर्मकाल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मैं ज्ञान-दर्शन उद्योगमयी जीवतत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य जाता-दृष्टा है । (३) आख-नाक-कान औदागिक आदि शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है । (७) अनन्ता-नन्त पुद्गल द्रव्य है । (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है । (९) लोक प्रमाण असख्यातकालद्रव्य है । इन सब द्रव्यों से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक्-पृथक् है । ऐसा जानकर शुचि पवित्र चैतन्य स्वभावी निज आत्मा का आश्रय ले, तो आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे । यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है ।

प्र० ४८—मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है । ये प्रत्यक्ष दुःख के देने वाले हैं और बन्ध के ही कारण हैं । इस बात को भूलकर आश्रवतत्त्व में जो हिंसादिरूप पापाश्रव हैं उन्हें हेय मानने को और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव हैं उन्हें उपादेय मानने को आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शन बताया ।

परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते हैं वह भी हिंसादि पापाश्रव को हेय और अहिंसादि पुण्याश्रव को उपादेय कहते सुने देखे जाते हैं। क्या ज्ञानियों को भी आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उ०-ज्ञानियों को बिल्कुल नहीं होते हैं। (१) क्योंकि जिन-जिनवर और जिन वरवृषभो ने हिंसादिरूप पापाश्रव हेय है और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव उपादेय है-ऐसी छोटी मान्यता को आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते हैं वे आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते हैं। (३) ज्ञानियों को हेय-ज्ञेय उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) हिंसादिरूप पापाश्रव हेय है और अहिंसादिरूप पुण्याश्रव उपादेय है ज्ञानियों के ऐसे कथन को आगम में उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहा है।

प्र० ४६-हिंसा का भाव हेय है और अहिंसा का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५०-झूठ बोलने का भाव हेय है और सत्य बोलने का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५२-चोरी करने का भाव हेय है और चोरी करने का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ५२-ब्रह्मचर्य न रखने का भाव हेय है और ब्रह्मचर्य रखने का भाव उपादेय है । इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ५३-परिग्रह रखने का भाव हेय है और परिग्रह न रखने का भाव उपादेय है । इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ५४-अनशन न रखने का भाव हेय है और अनशन रखने का भाव उपादेय है । इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ५५-सामायिक न करने का भाव हेय है और सामायिक करने का भाव उपादेय है । इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ५६-मुनियो को आहारदान न देने का भाव हेय है और मुनियो को आहारदान देने का भाव उपादेय है । इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

उ०-(१) सयोग-वियोग व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है और तत्त्वदृष्टि से पुण्य पाप दोनों अहितकर ही है । (२) परन्तु ऐसा न मानने के कारण पाप के बन्ध को बुरा जानने रूप और पुण्य के बन्ध को भला जाननेरूप खोटी मान्यता का फल चारो गतियों में घूमकर निगोद जाना बताया है ।

प्र० ८८-“शुभ-अशुभ बन्ध के फल मक्षार, रति अरति करें निज पद विसार ।” छहढाला की दूसरी ढाल के इस दोहे में बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०-बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्ट ज्ञान कराना है । (१) अघाति कर्म के फल के अनुसार पदार्थों की सयोग-वियोग-रूप अवस्थाये होती है । ये सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है । तत्त्वदृष्टि से पुण्य-पाप दोनों अहितकर ही है । इस बात को भूलकर बन्धतत्त्व में जो अशुभ भावों से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावों से देवादिरूप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना यह बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है । (२) अघाति कर्म के फल अनुसार पदार्थों की सयोग-वियोगरूप अवस्थाये होती है । वे सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है । तत्त्व दृष्टि से पुण्य-पाप दोनों अहितकर है । इस बात को भूलकर बन्धतत्त्व में अशुभभावों से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना-ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है । (३) अघाति कर्म के फल अनुसार पदार्थों की सयोग-वियोगरूप अवस्थाए होती है वे सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है । तत्त्व दृष्टि से पुण्य-पाप दोनों अहितकर ही है । इस बात को भूलकर बन्धतत्त्व में जो अशुभभावों से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावों से देवादिरूप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना-ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है । (४) अघातिकर्म के फल अनुसार पदार्थों की सयोग-वियोगरूप अवस्थाये होती है वे सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है । तत्त्वदृष्टि से पुण्य-पाप दोनों अहितकर ही है ।

इस बात को भूल कर बन्धतत्त्व में जो अशुभभावो से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो से देवादिरूप पुण्य हो उसे भला जानना—ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत मिथ्या-चारित्र्य है। (५) वर्तमान विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से बन्धतत्त्व में जो अशुभभावो से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो से देवादिरूप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना—इससे अनादिकाल का श्रद्धान विशेषरूप होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से बन्धतत्त्व में जो अशुभभावो से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो से देवादिरूप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना—इससे अनादिकाल का ज्ञान विशेष रूप होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से बन्धतत्त्व में जो अशुभभावो से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो से देवादिरूप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना—इससे अनादिकाल का आचरण विशेष रूप होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र्य बताया है।

प्र० ६७—अघातिकर्म के फल अनुसार पदार्थों का संयोग-वियोग-रूप अवस्थायें होती हैं। वे सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। तत्त्वदृष्टि से पुण्य पाप दोनों अहितकर ही हैं। इस बात को भूलकर बन्धतत्त्व में जो अशुभभावो से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जाननेरूप और शुभभावो से देवादिरूप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जाननेरूप बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-दर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर कर्म से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे ? इसका उपाय छहड़ाला की दूसरी ढाल

प्र० ७२-कुशील के भाव से नरक का बन्ध बुरा है और ब्रह्मचर्य के भाव से देव का बंध भला है। इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७३-परिगृह देखने के भाव से नीचगति का बंध बुरा है और परिगृह न रखने के भाव से ऊँच गति का बंध भला है। इस वाक्य पर बंधतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७४-जुआ खेलने के भाव से नरक का बन्ध बुरा है और जुंवा न खेलने के भाव से देव का बन्ध भला है। इस वाक्य में बंध-तत्त्व सम्बन्धी जीव का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७५-मास खाने आदि के भाव से नरक का बन्ध बुरा है और मास न खाने आदि के भाव से देव का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७६-परपदार्थों को अपना मानने से निगोद का बन्ध बुरा है और परपदार्थों को अपना न मानने से स्वर्ग का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७७-कंजूसी के भाव से नरक का बन्ध बुरा है और उदारता के भाव से देव का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ७८-तीर्थयात्रा न करने के भाव से नीच गति का बन्ध बुरा है और तीर्थयात्रा करने के भाव से उच्च गति का बन्ध अच्छा है । इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ७९-व्यापार में हिंसा होने के भाव से नरक बन्ध बुरा है और व्यापार में अहिंसा होने के भाव से देव का बन्ध अच्छा है । इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ८०-जीवों को दुखी करने से नरक का बन्ध बुरा है और जीवों को सुखी करने से देव का बन्ध अच्छा है । इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० ८१-संवरतत्त्व के विषय में अज्ञानी क्या मानता है ?

उ०-निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ में न आवे-ऐसा मानता है ।

प्र० ८२-निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ में न आवे-ऐसी मान्यता को छहड़ाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०-"मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ।"
अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ में न आवे-ऐसी खोटी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है ।

प्र० ८७—आत्मा के आश्रय से प्रगट निश्चय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र ही जीव को हितकारी है। स्वरूप मे स्थिरता द्वारा राग का जितना अभाव वह सुख का कारण है। इस बात को भूलकर निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ मे न आवे-ऐसी मान्यता-रूप, संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव को भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे। इसका उपाय छहढाला को दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उ०—“चेतन को है उपयोग रूप, विनमूरत चिन्मूरत अनुप । पुद्गल-नभ-अधर्म-काल, इनतै न्यारो है जीव चाल ॥” (१) मैं ज्ञान-दर्शन-उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ (२) मेरा कार्य-ज्ञाता-दृष्टा है। (३) आँख-नाक-कान-औदारिक-आदि शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेगी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विष्व मे अनन्त जीव-द्रव्य है। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) धर्म-अधर्म-आकाश-ऐकेक द्रव्य है। (९) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं। इन सब द्रव्य-से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन-उपयोगमयी निज आत्मा का आश्रय ले, तो संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से ही पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे। यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० ८८—निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ मे न आवे-ऐसी मान्यता को आपने संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव को भूलरूप

अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया । परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते हैं वह भी निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कठिनादि है ऐसा कहते-सुने-देखे जाते हैं । क्या ज्ञानियो को भी सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ।

उ०-ज्ञानियो को विल्कुल नहीं होते है । (१) क्योंकि जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो ने निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कण्ट-दायक और समझ मे न आवे—ऐसी मान्यता को सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है । (२) ज्ञानी जो वनते हैं वे सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही वनते है । (३) ज्ञानियो को हेय-जेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है । (४) निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कठिन है ज्ञानियो के ऐसे कथन को आगम मे उपचरित-सद्भूत व्यवहारनय कहा है ।

प्र० ८६-निश्चय वचन गुप्ति तो कण्टदायक समझ मे न आवे और मौन धारण करने के भाव वचनगुप्ति है । इस वाक्य पर सवर-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ८७-निश्चयकायगुप्ति तो कण्टदायक और समझ मे न आवे और गमनादि न करना कायगुप्ति है । इस वाक्य पर सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ८८-निश्चय ईर्या समिति तो कण्टदायक समझ मे न आवे और चार हाथ जमीन देखकर चलने का भाव ईर्या समिति है । इस

वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ६२-निश्चय एषणा समिति कष्टदायक, समझ में न आवे और निर्दोष आहार लेना, एषणा समिति है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ६३-निश्चय उत्तमक्षमा कष्टदायक और समझ में न आवे और क्रोध न करना उत्तमक्षमा है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ६४-निश्चय गुणव्रत कष्टदायक समझ में न आवे और गुणव्रत का शुभभाव ही सच्चा गुणव्रत है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ६५-निश्चय क्षुधा परिषहजय कष्टदायक, समझ में न आवे और रोटी न खाना ही क्षुधा परिषहजय है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ६६-देशचारित्र श्रावकपना कष्टदायक, समझ में न आवे और १२ अणुव्रतादि श्रावकपना है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व

सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ६७-सकलचारित्र मुनिपना कष्टदायक, समझ में न आवे और २८ मूलगुणादि मुनिपना है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ६८-निश्चय सम्यग्दर्शन कष्टदायक, समझ में न आवे और देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ६९-सकलचारित्र निश्चय उपवास कष्टदायक, समझ में न आवे और रोटी छोड़ना ही उपवास है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० १००-निश्चय सामायिक कष्टदायक, समझ में न आवे और मोकरादि का जपना ही सामायिक है । इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० १०१-निर्जरातत्त्व के विषय में अज्ञानी क्या मानेता है?

उ०-अनशनादि तप से निर्जरा मानता है।

प्र० १०२-अनशनादि तप से निर्जरा मानने रूप मान्यता को छह ढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०-“मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।” अर्थात् अनशनादि तप से निर्जरा माननेरूप मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है।

प्र० १०३-अनशनादि तप से निर्जरा मानने रूप मान्यता को मोह रूपी महामदिरापान क्यों बताया है ?

उ०-शुभाशुभ इच्छाओं का उत्पन्न न होना तप है। इस तप से निर्जरा होती है। इस बात को भूलकर अनशनादि तप से माननेरूप मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है।

प्र० १०४-अनशनादि तप से निर्जरा मानने रूप मान्यता का फल छह ढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०-ऐसी खोटी मान्यता का फल चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० १०५-अनशनादि तप से निर्जरा मानने रूप मान्यता का फल चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना क्यों बताया है ?

उ०-आत्मस्वरूप में, सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओं का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। परन्तु अज्ञानी अनशनादि तप से निर्जरा मानता है, इसलिए अनशनादि तप से निर्जरा माननेरूप मान्यता को चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० १०६—“रोके न चाह निजशक्ति खोयें।” इस दोहे के छन्द-
मे निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०—निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्ट ज्ञान कराना है। (१) आत्मस्वरूप मे-सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभा-
शुभ इच्छाओं का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनगनादि तप से निर्जरा मानना—यह निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है। (२) आत्म-
स्वरूप मे सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओं का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनगनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादि-
काल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) आत्मस्वरूप मे सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओं का अभाव होता है वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनगनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। (४) आत्मस्वरूप मे सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओं का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनगनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत मिथ्याचारित्र है। (५) वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव व जैन धर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से अनगनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्या-
दर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से अनगनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्या ज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म

का उपदेश मानने से अनशनादि तप से निर्जरा मानना-ऐसा अनादि-काल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्या-चारित्र्य बताया है ।

प्र० १०७-आत्मस्वरूप में सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओं का अभाव होता है । वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है । इस बात को भूलकर अनशनादि तप से निर्जरा मानने की मान्यता रूप निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या दर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे ? इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०-“चेतन को है उपयोगरूप, विनमूरत चिनमूरत अनूप । पुद्गल नम धर्म-अधर्म काल, इनते न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञस्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है । (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है । (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है । (९) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हूँ । इन सब द्रव्यों से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सबन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है । ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज आत्मा का आश्रय ले, तो निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे । यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है ।

प्र० १०८-अनशनादि तप से निर्जरा मानने रूप मान्यता को आपने निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया। परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते हैं वह भी अनशनादि तप से निर्जरा होती है ऐसा कहते-सुने-देखे जाते हैं। क्या ज्ञानियो को भी निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उ०-ज्ञानियो को विल्कुल नहीं होते हैं। (१) क्योंकि जिन, जिनवर और जिनवरवृषभो ने अनशनादि तप से निर्जरा माननेरूप मान्यता को निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते हैं वे निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते हैं। (३) ज्ञानियों को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) अनशनादि तप से निर्जरा होती है - ज्ञानी के ऐसे कथन को आगम में उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहा है।

प्र० १०९-अवमोदय ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये।

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११०-पाच इन्द्रियो के विषयों का रूक जाना ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १११-अनाज न खाना ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११२-प्रायश्चित्तादि ही निर्जरा है । इस वाक्य पर निर्जरा-
तत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ११३-गरीर का सुखाना ही निर्जरा है । इस वाक्य पर
निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ११४-पानी न पीना ही तृषा परिषहजय रूप निर्जरा है ।
इस वाक्य पर निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण
कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ११५-धूप में खड़े रहना ही निर्जरा है । इस वाक्य पर
निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ११६-सर्दी का सहना ही निर्जरा है । इस वाक्य पर निर्जरा-
तत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ११८-महीनों का उपवास ही निर्जरा है । इस वाक्य पर
निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

प्र० ११९-शुद्ध भोजन खाने से ही निर्जरा है । इस वाक्य पर
निर्जरातत्व सम्बन्धी भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

११. उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो ।-

प्र० १२०-प्रोषधोपवास ही निर्जरा है । इस वाक्य पर निर्जरा-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो ।

मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल-का-स्पष्टीकरण

प्र० १२१-मोक्षतत्त्व के सम्बन्ध में अज्ञानी क्या मानता है ?

उ०-मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में भी सुख मानता है ।

प्र० १२२-मोक्ष में पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक में भी निराकुल सुख रूप मान्यता को छहडाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०-'मोह महामद पियो अनादि भूल आपको भरमत्त वादि' अर्थात् शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षवत् सुख है ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है ।

प्र० १२३-शरीर के मौज-शौक में ही मोक्ष सुख है । ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान क्यों बताया है ?

उ०-आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है । उसमें आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है (२) इसको भूलकर शरीर के मौज-शौक में भी निराकुल सुख मानने के कारण मोहरूपी मदिरापान बताया है ।

प्र० १२४-शरीर के मौज-शौक में भी मोक्ष सुख है ऐसी मान्यता को फल छहडाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०—ऐसी खाटी मान्यता का फल चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना बताया है ।

प्र० १२५—शरीर के मौज-शौक में भी मोक्ष सुख रूप मान्यता का फल चारों गतियों में घूमकर निगोद क्यों बताया है ?

उ०—मोक्ष में आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। परन्तु शरीर के मौज-शौक में मोक्ष से अधिक सुख है ऐसा मानने का फल चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना बताया है ।

प्र० १२६—‘शिवरूप निराकुलता न जोय ।’ छहड़ाला की दूसरी ढाल के इस दोहे में मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०—मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्ट ज्ञान कराना है। (१) आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है उसमें आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षसुख मानना मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है। (२) आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है। उसमें आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षसुख मानना—ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान् अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है। उसमें आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षसुख जानना—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। (४) आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है। उसमें आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षसुख मानना—ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत

मिथ्याचरित्र है (५) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक से मोक्षसुख है—ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक से भी मोक्ष-सुख है—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक में भी मोक्षसुख है—ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र० १२७—मोक्ष में आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक में भी मोक्षसुख मानने की मान्यता रूप मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत—गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे। इसका उपाय छहढाला को दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०—“चेतन को है उपयोगरूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप । पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल ॥” (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। आँख-नाक-कान औदारिकादि शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है। (४) चैतन्य अरूपी असंख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है। (९) लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है। इन सब द्रव्यों से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्ता-भोक्ता

का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इन सब द्रव्यों का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज आत्मा का आश्रय ले, तो मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या दर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे। यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है।

प्र० १२८-मोक्ष में आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक में भी मोक्ष सुख रूप मान्यता को आपने मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते हैं वे भी शरीर के मौज-शौक में सुख है ऐसा कहते-सुने-देखे जाते हैं। क्या ज्ञानियों को भी मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उ०-ज्ञानियों को बिल्कुल नहीं होते हैं। (१) क्योंकि जिन, जिनवर और जिनवर वृषभो ने शरीर के मौज-शौक में ही अधिक सुख है ऐसी मान्यता को मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीवतत्त्व की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नहीं कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते हैं वे निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते हैं। (३) ज्ञानियों को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) शरीर के मौज-शौक में सुख है-ज्ञानी के ऐसे कथन को आगम में अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय से कहा है।

प्र० १२९-बाह्य पदार्थों के मिलाने में ही सुख है ? इस वाक्य पर मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १२१ से १२८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १३०—रोग क्लेशादि दुःख दूर होने को सुख मानता है। इस वाक्य पर मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव को भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०—प्रश्नोत्तर १२१ से १२८ तक के अनुसार उत्तर दो।

—००—

तीसरा अधिकार

प्र० १—संसार और मोक्ष किसे कहते हैं ?

उ०—(१) आत्मा जाता-दृष्टा के उपयोग को जब परपदार्थ की ओर लक्ष्य रखकर परभाव में यह 'मैं' ऐसा द्रढ कर लेता है तब यही संसार कहलाता है। (२) और जब स्व की ओर लक्ष्य करके उपयोग को स्व में यह 'मैं' ऐसा द्रढ कर लेता है तब यही मोक्ष कहलाता है।

प्र० २—संसार परिभ्रमण का कारण क्या है ?

उ०—ऐसे मिथ्याद्रग-ज्ञान-चर्णवग, भ्रमत भरत दुःख जन्म-मर्ण। तातै इनको तजिये सुजान, सुन तिन सक्षेप कहैं चखान ॥१॥ अर्थ—यह जीव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचरित्र के वश हो कर—इस प्रकार जन्म-मरण के दुःखों को भोगता हुआ चारों गतियों में भटकता फिरता है। इसलिये इन तीनों को भली भाँति जानकर छोड़ देना चाहिये। इन तीनों का सक्षेप से वर्णन करता हूँ, उसे सुनो !

प्र० ३—जीव दुःखों किससे होता है ?

उ०—शुभाशुभ विकार तथा पर के साथ एकत्व की श्रद्धा, ज्ञान और मिथ्या आचरण से ही जीव दुःखी होता है, क्योंकि कोई सयोग सुख-दुःख का कारण नहीं हो सकता है ।

प्र० ४—दुःखो का मूल कारण मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४६ में किसे बताया है ।

उ०—वहा सब दुःखो का मूलकारण मिथ्यादर्शन, अज्ञान और असयम है । (१) जो दर्शनमोह के उदय से हुआ अतत्त्व श्रद्धान मिथ्यादर्शन है, उससे वस्तु स्वरूप की यथार्थ प्रतीति नहीं हो सकती, अन्यथा प्रतीति होती है । (२) तथा उस मिथ्यादर्शन ही के निमित्त से क्षयोपशमरूप ज्ञान है वह अज्ञान हो रहा है । उससे यथार्थ वस्तु स्वरूप का जानना नहीं होता अन्यथा, जानना होता है । (३) तथा चारित्र मोह के उदय से हुआ कषायभाव उसका नाम असयम है, उससे जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा नहीं प्रवर्तता, अन्यथा प्रवृत्ति होती है । इस प्रकार ये मिथ्यादर्शनादिक है वे ही सर्व दुःखो का मूल कारण है ।

प्र० ५—वस्तु स्वरूप कैसा है ?

उ०—अनादिनिधन वस्तुये भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती । उन्हे परिणमित कराना चाहे वह कोई उपाय नहीं है, वह तो मिथ्यादर्शन ही है ।

प्र० ६—तो सच्चा उपाय क्या है ?

उ०—जैसा पदार्थों का स्वरूप है वैसा श्रद्धान हो जाये तो सर्व दुःख दूर हो जाये । .. भ्रमजनित दुःख का उपाय भ्रम दूर करना ही है । सो भ्रम दूर होने से सम्यक् श्रद्धान होता है वही सत्य उपाय जानना । (मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ ५२)

प्र० ७-मिथ्यादर्शनादि छहढाला की दूसरी ढाल में कितने प्रकार के बतलाये हैं ?

उ०-अगृहीत-गृहीत के भेद से मिथ्यादर्शनादि दो-दो प्रकार के बतलाये हैं ।

प्र० ८-छहढाला की दूसरी ढाल में अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरित्र और गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरित्र का स्वरूप क्या-क्या बताया है ?

उ०-"जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरघै तिन माहि विपर्ययत्व ॥" जीवादि सात तत्त्व प्रयोजनभूत किस प्रकार हैं ? (१) जिसमें मेरा ज्ञान दर्शन हो वह जीवतत्त्व है, वह जीवतत्त्व एकमात्र आश्रय करने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है । (२) जिनमें मेरा ज्ञान-दर्शन नहीं है, वे अजीव तत्त्व हैं, मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य, अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य, लोकप्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं, ये सब द्रव्य जानने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व हैं । (३) शुभाशुभ विकारी भावों का उत्पन्न होना आस्रव तत्त्व है, आस्रव तत्त्व छोड़ने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है । (४) शुभाशुभ विकारी भावों में अटकना बन्धतत्त्व है, बन्धतत्त्व छोड़ने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है । (५) शुद्धि का प्रगट होना सवरतत्त्व है, सवरतत्त्व छोड़ने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है । (६) शुद्धि की वृद्धि होना निर्जरातत्त्व है, निर्जरा तत्त्व एकदेश प्रगट करने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है । (७) सम्पूर्ण शुद्धि का प्रगट होना मोक्ष तत्त्व है, मोक्ष तत्त्व पूर्ण प्रगट करने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है । इस प्रकार ५ प्रयोजनभूत सात तत्वों का अनादिकाल से उल्टा श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है ॥१॥

.. इस प्रकार प्रयोजनभूत सात तत्वों का अनादिकाल से उल्टा ज्ञान अगृहीत मिथ्या ज्ञान है ॥२॥

.. इस प्रकार प्रयोजनभूत सात-तत्वों का अनादिकाल से उल्टा आचरण अगृहीत मिथ्याचारित्र है ॥३॥

“ इस प्रकार प्रयोजनभूत सात तत्वों का दूसरे के कहने से उल्टा श्रद्धान गृहीत मिथ्यादर्शन है ॥४॥ “ इस प्रयोजनभूत सात-तत्वों का दूसरे के कहने से उल्टा ज्ञान गृहीत मिथ्याज्ञान है ॥५॥ इस प्रकार प्रयोजनभूत सात-तत्वों का दूसरे के कहने से उल्टा आचरण गृहीत मिथ्याचारित्र है ॥६॥

प्र० ९—जीवतत्त्व का स्वरूप अस्ति—नास्ति से छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०—“चेतन को है उपयोग रूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप । पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मैं ज्ञान—दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हू । (२) मेरा कार्य ज्ञाता—दृष्टा है । (३) विनमूरत अर्थात् आख—नाक—कान औदारिक आदि शरीरोरूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चिन्मूरत अर्थात् चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) अनूप अर्थात् सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में धर्म—अधर्म—आकाश एकेक द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है ।—ऐसा जीवतत्त्व का स्वरूप अस्ति—नास्ति से छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है ।

प्र० १०—“ताको न जान, विपरीत मान करि, करें देह में निज पिछान” इस दोहे के अर्थ को स्पष्ट समझाइये ?

उ०—(१) मैं ज्ञान—दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हू—इस बात को न जानकर कैलाशचन्द्र नाम रूप अनन्त पुद्गल द्रव्यों में अपनापना

मानता है। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है-इस बात को न जानकर उठना, चलना, बोलना आदि शरीर के कार्यों में अपनापना मानता है। (३) बिनमूरत अर्थात् आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरूप मेरी मूर्ति नहीं है-इस बात को न जानकर आख-ताक-कान औदारिक आदि शरीरोरूप अपनी मूर्ति मानता है। (४) चिन्मूरत अर्थात् चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है-इस बात को न जानकर जड रूपी एक प्रदेशी पुद्गल के अनन्त आकारों में अपनापना मानता है। (५) अनूप अर्थात् सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है-इस बात को न जानकर रूपया-पैसा, सोना-चादी आदि में अनुपमपना मानता है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव हैं, उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न है-इस बात को न जानकर मेरा बाप, मेरी मा, मेरा पति, मेरी धर्मपत्नी, मेरा गुरु, मेरा देव आदि पर जीवों में अपनापना मानता है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्तानन्त पुद्गल हैं उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न है-इस बात को न जानकर सोने का हार, मोटर, मकान दुकान आदि पुद्गल स्कन्धों में अपनापना मानता है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में असख्यात प्रदेशी एक धर्मद्रव्य है, उसकी चाल मुझ जीव से भिन्न है। परन्तु जब मैं अपनी क्रियावती शक्ति से गमनरूप परिणमता हूँ तब धर्मद्रव्य निमित्त होता है-इस बात को न जानकर धर्मद्रव्य मुझे चलाता है ऐसा मानता है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में असख्यात प्रदेशी एक अधर्मद्रव्य है, उसकी चाल मुझ जीव से भिन्न है। परन्तु जब मैं अपनी क्रियावती शक्ति से चलकर स्थिर रूप परिणमता हूँ तब अधर्मद्रव्य निमित्त होता है-इस बात को न जानकर अधर्मद्रव्य मुझे ठहराता है ऐसा मानता है। (१०) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त प्रदेशी एक आकाशद्रव्य है, उसकी चाल मुझ जीव से भिन्न है। मुझ आत्मा अनादिकाल से अपने असख्यात प्रदेशों में रहता है, उसमें आकाश

द्रव्य निमित्त है—इस बात को न जानकर आकाश द्रव्य मुझे जगह देता है ऐसा मानता है। (११) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में एक प्रदेशी लोक प्रमाण असम्भ्यात काल द्रव्य हैं, उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न है। परन्तु मुझ आत्मा अनादिवाल से स्वयं स्वतः अपने परिणमन स्वभाव के कारण परिणमता है, उसमें काल द्रव्य निमित्त होता है—इस बात को न जानकर काल द्रव्य मुझे परिणमाता है ऐसा मानता है।

प्र० ११—जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छह ढालों की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उ०—मैं सुखी दुःखी मैं रक राव, मेरे धन-गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय मैं सवलदीन, बेरूप सुभग मूर्ख प्रवीन ॥४॥ (१) गरीब की अनुकूलता से मैं सुखी और गरीब की प्रतिकूलता से मैं दुःखी, (२) गरीब होने से मैं दुःखी और राजा होने से मैं सुखी, (३) धन-घर-गाय-भैंस आदि होने से मैं सुखी और धन-घर-गाय-भैंस आदि न होने से मैं दुःखी, (४) राज्य-गाव-देश पर मेरा प्रभाव होने से मैं सुखी और राज्य-गाव-देश पर मेरा प्रभाव न होने से मैं दुःखी, (५) लडका-स्त्री-भाई-बहिन होने से मैं सुखी और लडका-स्त्री-भाई-बहिन न होने से मैं दुःखी, (६) ताकतवर होने से मैं सुखी और कमजोर होने से मैं दुःखी, (७) कुरूप होने से मैं दुःखी और सुन्दर होने से मैं सुखी, (८) मूर्ख होने से मैं दुःखी और प्रवीन होने से मैं सुखी, (९) अनशनादि करने से मैं सुखी अनशनादि न करने से मैं दुःखी, (१०) प्रवचनकार होने से मैं सुखी और प्रवचनकार न होने से मैं दुःखी, (११) सिद्धचक्र का पाठ करने से मैं सुखी और सिद्धचक्र का पाठ न करने से मैं दुःखी, (१२) यात्रा करने से मैं सुखी और यात्रा न करने से मैं दुःखी, (१३) व्यापारादि चलने से मैं सुखी और व्यापारादि न चलने से मैं दुःखी, (१४) लाटरी आने से मैं सुखी और

लाटरी न आने से मैं दुःखी, (१५) शरीर में रोगादि ना होने से मैं सुखी और शरीर में रोगादि होने से मैं दुःखी, इसी प्रकार अनेक प्रकार की मिथ्या मान्यताओं को— जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥ * अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥२॥ * अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ * अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ * वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओं को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ * वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओं को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥६॥ * वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओं को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ।

प्र० १२—शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रति-कूलता से मैं दुःखी आदि ऐसी जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे—इसका उपाय छह-ढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०—चेतन को है उपयोग रूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप । पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनते न्यारी है जीव चाल । (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है । (३) आख-कान-नाक औदारिक आदि शरीरो रूप मेरी मूर्ति नहीं है । चेतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है ।

(५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य हैं—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य हैं—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य हैं—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में लोक प्रमाण असंख्य काल द्रव्य हैं—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरूप जानते मानते ही तत्काल जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूण मुखीपना प्रगट हो जाना है। यह एकमात्र जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है।

प्र० १३—अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि का स्वरूप छहढाला की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उ०—तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान। (१) शरीर की उत्पत्ति (सयोग) होने से मैं उत्पन्न हुआ और शरीर का नाश (वियोग) होने से मैं मर जाऊंगा। (२) हाथ आदि से मैंने स्पर्श किया। (३) जीभ से स्वाद लिया। (४) नासिका से सूँघा। (५) नेत्र से देखा। (६) कानों से सुना। (७) मन से मैंने जाना। (८) मैं बोलता हूँ। (९) मैं गमन करता हूँ और मैं ठहरता हूँ। (१०) मैं इस वस्तु का ग्रहण करता हूँ और इस वस्तु का मैं त्याग करता हूँ। (११) मैं सांसारिक भोग भोगता हूँ। (१२) मुझे शीत-क्षुधा-तृषा रोग हो जाते हैं और कभी मुझे शीत-क्षुधा-तृषा रोग नहीं सताते हैं। (१३) मैं स्थूल, मैं कृश, मैं बालक, मैं जवान, मैं वृद्ध हूँ। (१४) मेरे हाथ-पैर को बीस ऊगलिया है। (१५) मेरी ऊगली कट

गई है। (१६) मेरा माथा, मेरा कान मेरे ३२ दात हैं। (१७) मैं मनुष्य, मैं त्रिर्यच, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य हूँ। (१८) ये मेरे मां-बाप हैं। ये मेरी धर्मपत्नी और बच्चे हैं। (२०) ये मेरे मित्र हैं ये मेरे दुश्मन हैं। इत्यादि जो अजीव की अवस्थायें हैं उन्हें अपनी मानने रूप मिथ्या मान्यताओं को अजीव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥ " अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धा को अगृहीत मिथ्या दर्शन बताया है ॥२॥ " अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्या ज्ञान बताया है ॥३॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओं को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभवन व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओं को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥६॥ वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभवन व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुदेव कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओं को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र० १४-शरीर की उत्पत्ति (संयोग) होने से मैं उत्पन्न हुआ और शरीर का नाश (वियोग) होने से मैं मर जाऊंगा-आदि ऐसी अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि को प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे-इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०-चेतन को है उपयोगरूप, बिनमूरत, चिन्मूरत अ नभ धर्म-अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) पुदगल उपयोगमयी जीवतत्त्व हैं। (२) मेरा कार्य ज्ञाता हृष्टा है

नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है। (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेगी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोकप्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरूप जानते-मानते ही तत्काल अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है। यह एक मात्र अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० १५—आस्रवत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या-क्या बताया है ?

उ०—रागादि प्रगट ये दु ख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन ॥
 (१) पापास्रव और पुण्यास्रव दोनो हेय है। इस बात को न जानकर (१)हिंसा का भाव हेय है और अहिंसा का भाव उपादेय है। (२) झूठ का भाव हेय है और सत्य का भाव उपादेय है। (३) चोरी का भाव हेय है और अचौर्य का भाव उपादेय है। (४) कुशील का भाव हेय है और ब्रह्मचर्य का भाव उपादेय है। (५) परिग्रह रखने का भाव हेय है और परिग्रह न रखने का भाव उपादेय है। (६) दूसरे को मारने का भाव हेय है और बचाने का भाव उपादेय है। (७) दूसरे को सुख देने का भाव उपादेय है और दूसरे को दु ख देने का भाव हेय है।

(८) उपवास न करने का भाव हेय है और उपवास करने का भाव उपादेय है। (९) कुगुरु की भक्ति का भाव हेय है और गुरु की भक्ति का भाव उपादेय है। (१०) कुदेव के दर्शन का भाव हेय है और देव के दर्शन का भाव उपादेय है (११) १२ अणुव्रतादि पालने का भाव हेय है और १२ अणुव्रतादि पालने का भाव उपादेय है। (१२) २८ मूलगुण पालने का भाव उपादेय है और २८ मूलगुण न पालने का भाव हेय है। .. इत्यादि मान्यताओं को आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥

• अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥२॥ .. अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ • वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥७॥

प्र० १६-आस्रव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे-इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०-चेतन को है उपयोगरूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप । पुद्गल

नभ धर्म-अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हैं (२) मेरा कार्य ज्ञाता दृष्टा है । (३) आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेगी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जोव द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म आकाश एकेक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोकप्रमाण असरयात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरूप जानते-मानते ही तत्काल आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है । यह एक मात्र आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है ।

प्र० १७-बन्ध तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या-क्या बताया है ?

उ०-गुप्त-अगुप्त बन्ध के फल मझार, रति-अरति करै निजपद विसार । अशुद्ध भावो से अर्थात् शुभाशुभ भावो से कर्मबन्ध होता है, कर्मबन्ध मे भला-बुरा जानना वही मिथ्या श्रद्धान है । इस बात को भूलकर (१) हिंसा के भाव से नरकादि के बन्ध को बुरा जानना और अहिंसा के भाव से देवादि के बन्ध को भला जानना । (२) झूठ के भाव से नरकादि के बन्ध को बुरा जानना और सत्य के भाव से देवादि के बन्ध को भला जानना । (३) चोरी के भाव से नरकादि के

वन्ध को बुरा जानना और अचौर्य के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना । (४) कुशील के भाव से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और ब्रह्मचर्य के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना । (५) परिग्रह रखने के भाव से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और अपरिग्रह के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना । (६) सप्तव्यसन के भाव से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और सप्तव्यसन के भाव के अभाव से देवादि के वन्ध को भला जानना । (७) कुगुरु-कुदेव-कुधर्म के मानने से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और सच्चे देव-गुरु-धर्म के मानने से देवादि के वन्ध को भला जानना । (८) दुःखी करने के भाव से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और सुखी करने के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना । (९) अद्रतादि के भाव से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और व्रतादि के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना । (१०) कुदेव को मानने के भाव से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और देव को मानने के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना । इत्यादि मान्यताओं को बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥ ** अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥२॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ * अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ ** वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ ** वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥६॥ ** वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी

मान्यताओं के आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ।

प्र० १८-बन्ध तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे-इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है ?

उ०-चेतन को है उपयोगरूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप । पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल । इततै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है । (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में धर्म-अधर्म-आकाश ऐकेक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरूप जानते-मानते ही तत्काल बधतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है । यह एक मात्र बधतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है ।

प्र० १९-संवर तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छहढाला की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उ०-आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान ।
 प्रथम निर्विकल्प शुद्धोपयोग दशा मे अपनी-अपनी भूमिकानुसार
 मिश्रदशा प्रगट होने से चौथा-पाचवा-सातवा गुणस्थानरूप मोक्ष मार्ग
 होता है उसका पता न होने से ऐसा मानता है । (१) पाप का
 चिन्तवन न करने को मनोगुप्ति मान लेना । (२) मौन धारण को
 वचनगुप्ति मान लेना । (३) गमनादि न करने को कायगुप्ति मान
 लेना । (४) देखकर चलने को इर्या समिति मान लेना । (५) शुद्ध
 निर्दोष आहार लेने को एषणा समिति मान लेना । (६) क्रोध न करने
 को उत्तम क्षमा मान लेना । (७) मान न करने को उत्तम मार्दव मान
 लेना । (८) माया न करने के भाव को उत्तम मार्दव मान लेना ।
 (९) लोभ न करने को उत्तम शौच धर्म मान लेना । (१०) सत्य
 बोलने को उत्तम सत्य मान लेना । (११) उपद्रव होने पर दूर न
 करने को उत्तम तप मान लेना । (१२) स्त्री आदि छोड़ देने को उत्तम
 त्याग मान लेना । (१३) देहादि पर द्रव्य मेरा नहीं है ऐसे विचारो
 को आकिचन्य धर्म मान लेना । (१४) स्त्री को छोड़ देने को उत्तम
 ब्रह्मचर्य मान लेना । (१५) ससार अनित्य है ऐसे विचारो को अनित्य
 भावना मान लेना । (१६) क्षुधा की पीडा सहने को क्षुधापरिषह मान
 लेना । (१७) देवगुरु-शास्त्र के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन मान लेना ।
 १८) १२ अणुव्रतादि को श्रावकपना मान लेना । (१९) २८ मूल-
 गुणादि को मुनिपना मान लेना । (२०) शास्त्र के पठनादि को उत्तम
 स्वाध्याय मान लेना । ऐसी-ऐसी मान्यताओ को सवरतत्व सन्बन्धी
 जीव की भूल बताया है ॥१॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके
 चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया
 है ॥२॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से
 ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ अनादिकाल से
 एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत
 मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ * वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव
 व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश

मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभवं व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥६॥
 ** वर्तमान में विशेषरूप से मनुष्यभवं व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥७॥

प्र० २०-संवर तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे-इसका उपाय छहहठाला की दूसरी ढाल में क्या उताया है ?

उ०-चेतन को उपयोगरूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप । पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है । (३) आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेरी मूर्ति मही है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) स्वज्ञस्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में धर्म-अधर्म आकाश एकेक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है । ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरूप जानते-मानते ही तत्काल सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता । यह एक मात्र सवतत्त्व

सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है ।

प्र० २१—निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत मिथ्यादर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छहढाला की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उ०—‘रोके न चाह निज शक्ति खोय’—(अ) साधक को मिश्रदशा में अशुद्धि की हानि और शुद्धि की वृद्धि—यह सवर पूर्वक निर्जरा निरन्तर चलती रहती है । ज्ञानानन्द निज स्वरूप में स्थिर होने से गुभागुभ इच्छाओं का उत्पन्न न होना ही तप है । (आ) जैसे बालू से कभी भी तेल की उत्पत्ति नहीं हो सकती है । वैसे ही बाह्य अनगनादि से कभी भी निर्जरा की प्राप्ति नहीं हो सकती है । किन्तु दिगम्बर धर्मी कहलाने पर भी (१) अनगनादि तप से निर्जरा मानना । (२) अनाज न खाने को निर्जरा मानना । (३) प्रायश्चित्त, विनय वैश्यावृत आदि तप से निर्जरा मानना । (४) गर्मी में धूप में बैठने से निर्जरा मानना । (५) तृपा सहने को निर्जरा मानना । (६) सर्दी सहने को निर्जरा मानना । (७) गरीर पर मच्छर आदि आने पर न हटाने को निर्जरा मानना । (८) महीनो के उपवास को निर्जरा मानना । (९) निर्दोष आहार छोड़ देने को निर्जरा मानना । (१०) अपनी ज्ञानादि शक्तियों को भूलकर शुभभावों से निर्जरा मानना । (११) पांच इन्द्रियों के लगाम को निर्जरा मानना । (१२) मत्रों के जपने से निर्जरा मानना । (१३) नदी किनारे बरसात में खड़े रहने को निर्जरा मानना । (१४) सिद्धचक्र का पाठ करने से निर्जरा मानना । (१५) सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के आदर के भाव को निर्जरा मानना । (१६) दिगव्रत-देशव्रत आदि विकल्पों से निर्जरा मानना । (१७) प्रोपधोपवास को निर्जरा मानना । (१८) आहारादि देने को निर्जरा मानना । (१९) शुद्ध निर्दोष आहार लेने से निर्जरा मानना । (२०) यात्रा आदि से निर्जरा मानना । ऐसी-ऐसी

मान्यताओ को निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥
 * अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे
 श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥२॥ अनादिकाल से
 एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत
 मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ ** अनादिकाल से एक-एक समय करके
 चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया
 है ॥४॥ वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण
 करने पर भी कुगुरु-कुदेव कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी
 मान्यताओ के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ * वर्त-
 मान मे विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी
 कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के
 ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥६॥ वर्तमान मे विशेषरूप
 से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने से भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म
 का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के आचरण को गृहीत
 मिथ्याचारित्र बताया है ॥ ॥

प्र० २२-निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत
 मिथ्यादर्शनादि का अभव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम
 से सुखीपना कैसे प्रगट होवे-इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल
 में क्या बताया है ?

उ०-चेतन को है उपयोगरूप, बिनमूरत, चिन्मूरत अनूप । पुद्गल
 नभ धर्म-अधर्म काल इनतै न्यारी है जीव चाल । (१) मैं ज्ञानदर्शन
 उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ । (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है । (३) आख-
 नाक-कान औदारिक शरीररूप मेरी मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य
 अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है । (५) सर्वज्ञ स्वभावी
 ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है । (६) मुझ निज आत्मा
 के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है-उनकी चाल मुझ जीव से

भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीव तत्त्व का स्वरूप जानते-मानते ही तत्काल निर्जरा तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल-रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है। यह एक मात्र निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है।

प्र० २३—मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छहढाला की दूसरी ढाल में क्या-क्या बताया है ?

उ०—“शिवरूप निराकुलता न जोय।” निज आत्मा के आश्रय से सम्पूर्ण अशुद्धि का सर्वथा अभाव और सम्पूर्ण शुद्धि का प्रगट होना मोक्ष है। वह मोक्ष निराकुलतारूप सुख स्वरूप है और सुख का कारण है। किन्तु अज्ञानी (१) निराकुलता सुख को सुख नहीं माननेरूप मान्यता। (२) मोक्ष होने पर तेज में तेज मिलने रूप मान्यता। (३) मोक्ष में शरीर, इन्द्रियो तथा विषयो के बिना सुख कैसे हो सकने रूप मान्यता। (४) मोक्ष से पुन अवतार धारण करने रूप मान्यता। (५) स्वर्ग के सुख की अपेक्षा से अनन्तगुणा सुख मानने रूप मान्यता। (६) सिद्ध स्थान में पहुँचने रूप मोक्ष रूप मान्यता। (७) जन्म-मरण-रोग-क्लेशादि दुःख दूर होने को मोक्ष मानने रूप मान्यता। (८) लोकालोक जानने से मोक्षपना मानने रूप मान्यता। (९) त्रिलोक पूज्यपना से मोक्ष मानने रूप मान्यता। ** ऐसी-ऐसी

मान्यताओं को मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥
 •• अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे
 श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥२॥ •• अनादिकाल से
 एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत
 मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ • अनादिकाल से एक-एक समय करके
 चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र
 बताया है ॥४॥ वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्य भव व दिगम्बर
 धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी
 ऐसी मान्यताओं के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥
 •• वर्तमान में विशेष रूप से मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म धारण करने
 पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं
 के ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान है ॥६॥ • वर्तमान में विशेष रूप से
 मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म
 का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओं के आचरण को गृहीत
 मिथ्याचारित्र बताया है ॥७॥

प्र० २४—मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत
 मिथ्यादर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का
 अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे
 प्रगट होवे । इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में दिया बताया
 है ?

उत्तर—चेतन को है उपयोग रूप, विनमूरत चिन्मूरत अरूप ।
 पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतै न्यागी है जीव चाल ॥
 (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व ह । (२) मेरा कार्य ज्ञाता-
 दृष्टा है । (३) आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेरी
 मूर्ति नहीं है । (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार
 है । (५) सर्वज स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम
 है । (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व में अनन्त जीव द्रव्य है-

उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरूप जानते-मानते ही तत्काल मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है। यह एक मात्र मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में बताया है।

प्रथम ढाल की प्रश्नावली

- प्र० १—मंगल का अर्थ अस्ति-नास्ति से क्या है ?
- प्र० २—वीतराग-विज्ञानता कितने प्रकार की है ?
- प्र० ३—सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का क्या उपाय है ?
- प्र० ४—वीतराग-विज्ञानता का एक नाम क्या है ?
- प्र० ५—वीतराग-विज्ञानता के दो नाम क्या हैं ?
- प्र० ६—वीतराग विज्ञानता के तीन नाम क्या हैं ?
- प्र० ७—वीतराग-विज्ञानता के चार नाम क्या हैं ?
- प्र० ८—वीतराग-विज्ञानता के पांच नाम क्या हैं ?
- प्र० ९—वीतराग का क्या अर्थ है ?

- प्र० १०—वीतराग के कितने प्रकार हैं ?
- प्र० ११—कषाय किसे कहते हैं ?
- प्र० १२—क्रोधादि कितने-कितने प्रकार के हैं ?
- प्र० १३—अनन्तानुबन्धी क्रोध किसे कहते हैं ?
- प्र० १४—अनन्तानुबन्धी मान किसे कहते हैं ?
- प्र० १५—अनन्तानुबन्धी माया किसे कहते हैं ?
- प्र० १६—अनन्तानुबन्धी लोभ किसे कहते हैं ?
- प्र० १७—क्रोध-मान को क्या कहते हैं ?
- प्र० १८—माया-लोभ को क्या कहते हैं ?
- प्र० १९—अनन्तानुबन्धी क्रोधादि का अभाव कब होता है ?
- प्र० २०—अप्रत्याख्यान क्रोधादि का अभाव कब होता है ?
- प्र० २१—प्रत्याख्यान क्रोधादि का अभाव कब होता है ?
- प्र० २२—संज्वलन क्रोधादि का अभाव कब होता है ?
- प्र० २३—विज्ञानता का क्या अर्थ है ?
- प्र० २४—विज्ञानता के कितने प्रकार हैं ?
- प्र० २५—चौथे गुणस्थान की वीतराग-विज्ञानता क्या है ?
- प्र० २६—पांचवे गुणस्थान की वीतराग-विज्ञानता क्या है ?
- प्र० २७—सातवें छठवें गुणस्थान की वीतराग विज्ञानता क्या है ?
- प्र० २८—१२वें गुणस्थान की वीतराग-विज्ञानता क्या है ?
- प्र० २९—१३वें, १४वें, गुणस्थान की वीतराग विज्ञानता क्या है ?

प्र० ३०-सिद्धदशा की वीतराग-विज्ञानता क्या है ?

प्र० ३१-वीतराग-विज्ञानता रूप निज शुद्ध आत्मा के अवलम्बन से दश बातें कौन-२ सी है जिनका पता चलता है ?

प्र० ३२-सार का क्या अर्थ है ?

प्र० ३३-परमसार आदि पांच बोल कौन कौन से हैं ?

प्र० ३४-परमसार आदि मे सात तत्व उतारकर बताओ ?

प्र० ३५-परमसारादि मे चार काल उतारकर बताओ ?

प्र० ३६-परमसारादि मे पांच भाव उतारकर बताओ ?

प्र० ३७-परमसारादि मे सुखदायक दुःखदायक उतारकर बताओ ?

प्र० ३८-परमसारादि मे देव-गुरु-धर्म उतार कर बताओ ?

प्र० ३९-परमसारादि मे हेय-ज्ञेय-उपादेय उतारकर बताओ ?

प्र० ४०-परमसारादि में उत्तमक्षमा उतारकर बताओ ?

प्र० ४१-परमसारादि में इर्या समिति उतारकर बताओ ?

प्र० ४२-परमसारादि मे वचन गुप्ति उतारकर बताओ?

प्र० ४४-परमसारादि में अनित्यभावना उतारकर बताओ ?

प्र० ४५-परमसारादि में काय गुप्ति उतारकर बताओ ?

प्र० ४६-परमसारादि में क्षुधा परिषह जय उतारकर बताओ ?

प्र० ४७-परमसारादि में नमस्कार उतारकर बताओ ?

प्र० ४८-परमसारादि मे चारित्र उतारकर बताओ ?

प्र० ४९-परमसारादि मे प्रतिक्रमण उतारकर बताओ ?

- प्र० ५०—परमसारादि मे आलोचना उतारकर बताओ ?
- प्र० ५१—परमसारादि मे प्रत्याख्यान उतारकर बताओ ?
- प्र० ५२—परमसारादि मे सामायिक उतारकर बताओ ?
- प्र० ५३—वीतराग-विज्ञानता कैसी है ?
- प्र० ५४—नमहुं त्रियोग सम्हारिकै का क्या अर्थ है ?
- प्र० ५५—क्या मन-वचन-काय की सावधानी जीव कर सकता है ?
- प्र० ५६—मन का कर्ता कौन है और कौन नहीं है ?
- प्र० ५७—वचन का कर्ता कौन है और कौन नहीं है ?
- प्र० ५८—काय का कर्ता कौन है और कौन नहीं है ?
- प्र० ५९—तुम कौन हो ?
- प्र० ६०—तुम कौन नहीं हो ?
- प्र० ६१—तुम्हारा कार्य क्या है ?
- प्र० ६२—तुम दुःखी क्यों हो ?
- प्र० ६३—तीन लोक मे कितने जीव है ?
- प्र० ६४—तीन लोक के जीव क्या चाहते है ?
- प्र० ६५—तीन लोक के जीव क्या नहीं चाहते है ।
- प्र० ६६—तीन लोक में कितने जीव है !
- प्र० ६७—सुख किसे कहते है ?
- प्र० ६८—दुःख किसे कहने है ?
- प्र० ६९—दुःख का अभाव और सुख के प्राप्ति कैसे हो ?

प्र० ७०-मोहरूपी शराब क्या है ?

प्र० ७१-मै प० कैलाशचन्द्र हूँ—मोहरूपी शराब की चार बातें लगाकर लगाओ ?

प्र० ७२-मै व्यापार करता हूँ । मोहरूपी शराब की चार बातें लगाकर लगाओ ?

प्र० ७३-मै चाय पीता हूँ—मोहरूपी शराब की चार बातें लगाकर बताओ ?

प्र० ७४-मेरी धर्मरत्नी है—मोहरूपी की चार बातें लगाकर बताओ ?

प्र० ७५-मै सत्य बोलता हूँ—मोहरूपी शराब की चार बातें लगाकर बताओ ?

प्र० ७६-भविष्य की आयु का बन्ध कब और कैसे होता है ?

प्र० ७७-छहढाला की प्रथम ढाल में प्रथम निगोद के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ७८-पृथ्वीकायिक के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ७९-जलकायिक के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ८०-अग्निकायिक के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ८१-वायुकायिक के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ८२-वनस्पतिकायिक के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ८३-असैनी के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ८४-संज्ञी साँप के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ८५-गधों के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ८६-कुत्ते के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

प्र० ८७-बिल्ली के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?

- प्र० ८८—बकरे के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?
- प्र० ८९—नरकगति के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?
- प्र० ९०—मनुष्यगति के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?
- प्र० ९१—देवगति के दुःखों का वर्णन क्यों किया ?
- प्र० ९२—पहली ढाल के अनुसार मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं ?
- प्र० ९३—पहली ढाल के अनुसार मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?
- प्र० ९४—पहली ढाल के अनुसार मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं ?
- प्र० ९५—क्या मात्र मोहरूपी शराब ही दुःख का कारण है ?
- प्र० ९६—चिद् विलास में दुःख का कारण किसे बताया है ?
- प्र० ९७—मोक्षमार्ग प्रकाशक में दुःख का कारण किसे बताया है ?
- प्र० ९८—समयसार के बन्ध अधिकार में दुःख का कारण किसे बताया है ?
- प्र० ९९—क्या करे तो मोक्ष मार्ग प्रगटे ?
- प्र० १००—साँप आदि समझने के लिये चार बातें कौन-२ सी निकालनी चाहिये ?

दूसरी ढाल की प्रश्नावली

- प्र० १—संसार परिभ्रमण का कारण कौन है ?
- प्र० २—अगृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं ?
- प्र० ३—अगृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?
- प्र० ४—अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं ?
- प्र० ५—अगृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं ?

प्र० ६—गृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

प्र० ७—गृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं ?

प्र० ८—जीवतत्त्व का स्वरूप क्या है ?

प्र० ९—“ताको न जान, विपरीत मान करि” का भाव क्या है ?

प्र० १०—जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप क्या है ?

प्र० ११—अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप क्या है ?

प्र० १२—आख्यतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप क्या है ?

प्र० १३—बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप क्या है ?

प्र० १४—सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप क्या है ?

प्र० १५—निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप क्या है ?

प्र० १६—मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप क्या है ?

प्र० १७—पर पदार्थों में तेरी-मेरी मान्यता को किस नाम से बताया है ?

प्र. १८—सबसे बड़ा पाप क्या है ?

प्र० १९—मिथ्यात्व को सप्त व्यसन से बड़ा पाप किस शास्त्र में कहाँ कहा है ?

प्र० २०—मिथ्यादर्शनादि के कितने भेद हैं ?

प्र० २१ - मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूं—इस वाक्य पर—‘ताको न जान’ आदि ढ बोलो को समझाओ ?

प्र० २२—मेरा कार्य ज्ञाता-द्रष्टा है—इस पर ‘ताको न जान’ आदि ढ बोलो को समझाइये ?

प्र० २३—विनमूरत पर ‘ताको न जान’ आदि ढ बोलो को समझाइये ?

प्र० २४—चिन्मूरत पर ‘ताको न जान’ आदि ढ बोलो को समझाइये ?

प्र० २५—अनूप पर ‘ताको न जान’ आदि आठ बोलो को समझाइये ?

प्र० २६—शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी—इस वाक्य पर आठ बोलो को समझाइये ?

प्र० २७—नौ प्रकार का पक्ष कौन कौन सा है ?

प्र० २८ - अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

प्र० २९—आंख-कान-नाक आदि औदारिक शरीर का पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरों को समझाइये ?

प्र० ३०—तैजस-कामाणि के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

प्र० ३१—भाषा-मन के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

प्र० ३२—शुभाशुभ विकारी भावों के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

प्र० ३४—अङ्गूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय के पक्ष पर तीन प्रश्नो को समझाइये ?

प्र० ३४ भेदनय के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये?

प्र० ३५—अभेदनय के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये?

प्र० ३६—भेदाभेदनय के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये?

प्र० ३७—पुरुषार्थसिद्धियुपाय गाथा १४ में क्या बताया है?

प्र० ३८—सात तत्वों में हेय—उपादेय—ज्ञेय किस प्रकार है ?

प्र० ३९ शुभभावों से जो मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं उन्हें जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

प्र० ४०—जीव द्रव्य और जीवतत्त्व में क्या अन्तर है ?

प्र० ४१—अजीवद्रव्य और अजीवतत्त्व में क्या अन्तर है?

प्र० ४२—जीवतत्त्व किसे कहते हैं और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४३—अजीवतत्त्व किसे कहते हैं और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४४—आस्रवतत्त्व किसे कहते हैं और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४५—बन्धतत्त्व किसे कहते हैं और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४६—सर्वरतत्त्व किसे कहते हैं और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४७—निर्जरातत्त्व किसे कहते हैं और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४८—मोक्षतत्त्व किसे कहते हैं और मोक्षतत्त्व प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४९—चेतन को उपयोग रूप—इसके दो अर्थ क्या हैं ?

प्र० ५०—बिनमूरत का क्या अर्थ है ?

प्र० ५१—चिन्मूरत का क्या अर्थ है ?

प्र० ५२—अनूप का क्या अर्थ है ?

प्र० ५३—‘ताको न जान-विपरीत मान करि’—इस पर कितने बोल निकलते हैं ?

प्र० ५४—चेतन को उपयोग रूप—इस पर ‘ताकों न जान-विपरीत मानकरि’ किस प्रकार है ?

प्र० ५५—बिनमूरत पर ‘ताको न जान-विपरीत मानकरि’ किस प्रकार है ?

प्र० ५६—चिन्मूरत पर—‘ताकों न जान-विपरीत मानकरि’ किस प्रकार है ?

प्र० ५७—अनूप—पर ‘ताकों न जान-विपरीत मानकरि’ किस प्रकार है ?

प्र० ५८—मुझ निज आत्मा के अलावा अनन्त जीव है—इस पर ‘ताको न जान-विपरीत मानकरि’ किस प्रकार है ?

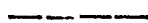
प्र० ५९—मुझ निज आत्मा के अलावा अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है इस पर ‘ताको न जान विपरीत मानकरि’ किस प्रकार है ?

प्र० ६०—मुझ निज आत्मा के अलावा असंख्यात प्रदेशी एक धर्म-द्रव्य है—इस पर ‘ताको न जान विपरीत मानकरि’ किस प्रकार है ?

प्र० ६१—मुझ निज आत्मा के अलावा असंख्यात प्रदेशी एक अधर्म द्रव्य है—इस पर ‘ताको न जान विपरीत मानकरि’ किस प्रकार है ?

प्र० ६२—मुझ निज आत्मा के अलावा अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है—इस पर 'ताको न जान विपरीत मानकरि' को समझाइये ?

प्र० ६३—मुझ निज आत्मा के अलावा एक प्रदेशी लोकप्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है—इस पर 'ताको न जान विपरीत मानकरि' को समझाइये ?



तीसरी ढाल की प्रश्नावली

प्र० १—आत्मा का हित किसमे है ?

प्र० २—सुख किसे कहते हैं ?

प्र० ३—दुःख किसे कहते हैं ?

प्र० ४—दुःख का दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक के नौवें अध्याय में क्या बताया है ?

प्र० ५—दुःख दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ५२ में क्या बताया है ?

प्र० ६—दुःख दूर करने का उपाय इष्टोपदेश गाथा ५० में क्या बताया है ?

प्र० ७—योगसार दोहा ३८ और ५५ में दुःख दूर करने का क्या उपाय बताया है ?

प्र० ८—दुःख दूर करने का उपाय सामायिक पाठ २८वें दोहे में क्या बताया है ?

प्र० ९—दुःख दूर करने का उपाय प्रवचनसार गाथा ६४ में क्या बताया है ?

प्र० १०—दुःख दूर करने का उपाय प्रवचनासार गाथा ६० में क्या बताया है ?

प्र० ११—दुःख दूर करने का उपाय समयसार कलश २३ में क्या बताया है ?

प्र० १२—दुःख दूर करने का उपाय तत्त्वार्थ सूत्र पहले अध्याय के २६वें सूत्र में क्या बताया है ?

प्र० १३—दुःख दूर करने का उपाय तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय पाचवें के सूत्र २६ और ३० में क्या बताया है ?

प्र० १४—दुःख दूर करने का उपाय बुधजन जी ने क्या बताया है ?

प्र० १५—दुःख दूर करने का उपाय कार्तिकेय अनुपेक्षा गाथा ३२१, ३२२, ३२३ में क्या बताया है ?

प्र० १६—दुःख दूर करने का उपाय छहढाला चौथी ढाल में क्या बताया है ?

प्र० १७—दुःख दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३८ में क्या बताया है ?

प्र० १८—दुःख को दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६३ में क्या बताया है ?

प्र० १९—दुःख दूर करने का उपाय समयसार कलश १३१ में क्या बताया है ?

प्र० २०—दुःख दूर करने का उपाय प्रवचनसार गाथा १५४ में क्या बताया है ?

प्र० २१—दुःख दूर करने का उपाय प्रमेयतत्त्व गुण को मानने से कैसे होता है ?

प्र० २२—दुःख दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २२६ में क्या बताया है ?

प्र० २३—दुःख दूर करने का उपाय समयसार कलश ५१-५२
५३-५४-५५ में क्या बताया है ?

प्र० २४—दुःख दूर करने का उपाय कलश २०० में क्या बताया है ?

प्र० २५—दुःख दूर करने का उपाय समयसार गाथा २६ में क्या बताया है ?

प्र० २६—दुःख दूर करने का उपाय समयसार गाथा ६६-७० में क्या बताया है ?

प्र० २७—दुःख दूर करने का उपाय पुरुषार्थ सिद्धि उपाय गाथा १४ में क्या बताया है ?

प्र० २८—दुःख दूर करने का उपाय प्रवचनसार गाथा ८० तथा ८६ में क्या बताया है ?

प्र० २९—दुःख दूर करने का उपाय प्रवचनसार गाथा ८३ में क्या बताया है ?

प्र० ३०—दुःख दूर करने का उपाय समयसार गाथा ३ में क्या बताया है ?

प्र० ३१—आकुलता कहा नहीं है ?

प्र० ३२—मोक्षदशा के ऊपर से सात तत्व कैसे निकलते हैं ?

प्र० ३३—मोक्ष किसे कहते हैं और मोक्ष कैसे होता है ?

प्र० ३४—सवर निर्जरा से कि कहते हैं और संवर निर्जरा किसके अभावपूर्वक होती है ?

प्र० ३५—आलव-बन्ध किसे कहते हैं और आलव-बन्ध किसके निमित्त से होता है ?

प्र० ३६-अजीव तत्व किसे कहते हैं और अजीव तत्व में कौन-कौन आया ?

प्र० ३७-आस्रव-बन्ध का अभाव किसके आश्रय से होता है?

प्र० ३८-संवर निर्जरा की प्राप्ति किसके अभाव से होती है ?

प्र० ३९-क्या मोक्ष कहते ही सातो तत्वों की सिद्धि हो जाती है?

प्र० ४०-आकुलता कहा नहीं है ?

प्र० ४१-हमें क्या करना चाहिये ?

प्र० ४२-मोक्ष मार्ग क्या है ?

प्र० ४३-मोक्ष मार्ग कितने प्रकार का है ?

प्र० ४४-जब मोक्षमार्ग एक ही है तो उसका कथन दो प्रकार से क्यों किया जाता है ?

प्र० ४५ निश्चय मोक्ष मार्ग क्या है?

प्र० ४६-व्यवहार मोक्षमार्ग क्या है ?

प्र० ४७-क्या सम्यक्चारित्र सम्यग्दर्शन हुये बिना हो सकता है?

प्र० ४८ क्या सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन हुये बिना हो सकता है?

प्र० ४९-सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र मिथ्या है—ऐसा छहवाला में कहा बताया है?

प्र० ५०-निश्चय व्यवहार किसको होता है?

प्र० ५१-निश्चय व्यवहार किसको नहीं होता है?

प्र० ५२-व्यवहार प्रथम निश्चय बाद में क्या यह ठीक है?

प्र० ५३-व्यवहार मोक्षमार्ग कब कहा जाता है?

प्र० ५४—मोक्ष मार्ग कितने हैं ?

प्र० ५५—मोक्ष मार्ग का कथन कितने प्रकार से किया जाता है ?

प्र० ५६—सम्यग्दर्शन पर निश्चय-व्यवहार लगाकर बताओ ?

प्र० ५७—श्रावकपने पर निश्चय-व्यवहार लगाकर बताओ ?

प्र० ५८—मुनिपने पर निश्चय-व्यवहार लगाकर बताओ ?

प्र० ५९—निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

प्र० ६०—निश्चय सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

प्र० ६१—निश्चय सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

प्र० ६२—व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

प्र० ६३—व्यवहार सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

प्र० ६४—व्यवहार सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

प्र० ६५—जीव द्रव्य का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ६६—अजीव द्रव्य का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ६७—आस्रव तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ६८—बन्धतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ६९—संव रतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ७०—निर्जरातत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ७१—मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ७२—व्यवहार सम्यग्दर्शन क्या है ?

प्र० ७३—निश्चय सम्यग्दर्शन का निमित्त कौन है ?

प्र० ७४—निश्चय सम्यग्दर्शन के निमित्त कारणों को क्या कहा जाता है ?

प्र० ७५—सम्यग्दर्शन के आठ अंग क्या-क्या हैं ?

प्र० ७६—सम्यग्दर्शन के आठ दोष कौन-कौन से हैं ?

प्र० ७७—आठ मद क्या-क्या हैं ?

प्र० ७८—छह अनायतन क्या-क्या हैं ?

प्र० ७९—तीन मूढ़ता क्या-क्या हैं ?

प्र० ८०—सम्यग्दृष्टि की पहचान क्या है ?

प्र० ८१—पच्चीस दोष क्या-क्या हैं ?

प्र० ८२—क्या अव्रती सम्यग्दृष्टि का देव भी आदर करते हैं ?

प्र० ८३—सम्यग्दृष्टि की ग्रहस्थपने से प्रीति नहीं है उसके दृष्टत देकर समझाइये ?

प्र० ८४—सम्यक्त्व की महिमा से सम्यग्दृष्टि कहां-कहां उत्पन्न नहीं होता है ?

प्र० ८५—सम्यग्दृष्टि जीव कहां-कहां उत्पन्न होता है ?

प्र० ८६—सर्वधर्मों का मूल क्या है ?

प्र० ८७—सम्यग्दर्शन के बिना व्रतादि क्या हैं ?

प्र० ८८—सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान को क्या कहते हैं ?

प्र० ८९—सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र्य को क्या कहते हैं ?

प्र० ६०-आत्मार्थी को क्या करना चाहिए ?

प्र० ६१-दौलतराम जी ने तीसरी ढाल के अन्त में क्या शिक्षा दी है ?

प्र० ६२-यदि मनुष्य पर्याय में सम्यग्दर्शन प्राप्त न किया तो क्या होगा ?

प्र० ६३-सम्यग्दर्शन कितने प्रकार का है ?

प्र० ६४-सम्यग्ज्ञान कितने प्रकार का है ?

प्र० ६५-श्रावकपना कितने प्रकार का है ?

प्र० ६६-मुनिपना कितने प्रकार का है ?

प्र० ६७-बहिरात्मा की पहिचान क्या है ?

प्र० ६८-अन्तरात्मा की पहिचान क्या है ?

प्र० ६९-क्या निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर २५ दोषों का अभाव करना पड़ता है ?

प्र० १००-निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर क्या-क्या होता है ?

चौथी ढाल की प्रश्नावली

प्र० १-सम्यग्ज्ञान का लक्षण क्या है ?

प्र० २-सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में क्या अन्तर है ?

प्र० ३-ज्ञान-श्रद्धा तो एक साथ होता है तो उसमें कारण कार्यपना क्यों कहते हैं ?

प्र० ४-सम्यग्ज्ञान के कितने भेद हैं ?

प्र० ५-परोक्ष ज्ञान कौन-कौन से हैं ?

प्र० ६-क्या मति-श्रुत ज्ञान प्रत्यक्ष भी कह जा सकते हैं ?

प्र० ७-देश प्रत्यक्ष कौन-कौन से ज्ञान हैं ?

प्र० ८-केवल ज्ञान किसे कहते हैं ?

प्र० ९-ज्ञानी और अज्ञानी के कर्मनाशो के विषय मे क्या अन्तर है ?

प्र० १०-भेद विज्ञान के लिये क्या करना चाहिये ?

प्र० ११-सम्यग्ज्ञान होने पर तीन दोषो को अभाव हो जाता है उनके नाम क्या-क्या हैं ?

प्र० १२-आत्मा को सहायक कौन नहीं है ?

प्र० १३-आत्मा को सहायक कौन है ?

प्र० १४-भूत भविष्य वर्तमान मे मोक्ष जा रहे हैं, जावेंगे, जा चुके हैं वह किसका प्रभाव है ?

प्र० १५-सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

प्र० १६-जीव का कर्त्तव्य क्या है ?

प्र० १७-जीव की भूल क्या है ?

प्र० १८-जैन धर्म का सार क्या है ?

चौथा अधिकार

(जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नामाला भाग तीसरा पृष्ठ १८६ पर ३७ प्रश्न लिखे हैं यह ३८ प्रश्नोत्तर से वहां पर जोड़ने है।)

जीवतत्त्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान

प्र० ३८-छहड़ाला मे जीवतत्त्व का 'ज्यो का त्यों श्रद्धान' के विषय मे क्या कहा है ?

उ०-बहिरातम, अन्तरातम, परमातम जीव त्रिधा है,
देह जीव को एक गिने बहिरातम तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर आतम ज्ञानी;
द्विविध सग विन रुद्ध उपयोगी मुनि उत्तम निज ध्यानी ॥४॥
मध्यम अन्तर आतम है जे देशव्रती अनगारी,
जघन कहे अविरतसमदृष्टि, तीनों शिवमग चारी ॥
सकल निकल परमातम द्वे विध तिन मे घाति निवारी,
श्री अरिहन्त सकल परमातम लोकालोक निहारी ॥५॥
ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल वर्जित सिद्ध महन्ता,
ते है निकल अमल परमातम भोगे गर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै,
परमातम को ध्याय निरन्तर जो नित आनन्द पूजै ॥६॥

भावार्थ -प्रत्येक आत्मा ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व है। पर्याय मे तीन प्रकार के है-बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। (१) जो शरीर और आत्मा को एक मानते है उन्हें बहिरात्मा कहते है और वे तत्त्व मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। (२) जो शरीर और आत्मा को अपने भेद-विज्ञान से भिन्न-भिन्न मानते है वे अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा के तीन भेद है-उत्तम, मध्यम और जघन्य। अन्तरग

तथा बहिरंग दोनो प्रकार के परिग्रहो से रहित सातवे गुणस्थान से लेकर बारहवे गुणस्थान तक वर्तते हुये शुद्ध उपयोगी आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि उत्तम अन्तरात्मा है। छठवे और पाचवें गुणस्थानवर्ती जीव मध्यम अन्तरात्मा है। और चौथे गुणस्थानवर्ती जघन्य अन्तरात्मा है। (३) परमात्मा के दो भेद हैं—अरिहन्त परमात्मा और सिद्ध परमात्मा। वे दोनो सर्वज्ञ होने से लोक और अलाक सहित सर्व पदार्थों का त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण स्वरूप एक समय में एक साथ जानने-देखने वाले, सबके ज्ञाता-दृष्टा है। (४) इसलिये आत्म हितेष्टियों को चाहिये बहिरात्मपने को छोड़कर अन्तरात्मा बनकर परमात्मपना प्राप्त करे, क्योंकि उससे सदैव सम्पूर्ण और अनन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। यह 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' छहढाला में बताया है।

प्र० ३६—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' क्या बताया है ?

उत्तर—(१) प्रत्येक जीव ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व है और पर्याय में तीन प्रकार के है। (२) जो शरीर आत्मा को एक मानते है वे बहिरात्मा है। (३) जो शरीर और आत्मा को अपने भेद-विज्ञान से भिन्न-भिन्न मानते है, वे अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा के तीन भेद है—उत्तम, मध्यम और जघन्य। (४) सम्पूर्ण अशुद्धि का अभाव और सम्पूर्ण बुद्धि की प्राप्ति वह परमात्मा है। परमात्मा के दो भेद है—अरिहन्त और सिद्ध। (५) ऐसा जानकर निज जीवतत्त्व का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर क्रम से परमात्मा बनना - यह 'जीवतत्त्व का 'ज्यो का त्यो श्रद्धान' हुआ, ऐसा जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने बताया है।

प्र० ४०—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित, 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर - अनन्त ज्ञानियों का एक मत है-यह पता चल जाता है।

प्र० ४१—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' को सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर- केवली के समान 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' करते हैं, केवली व ज्ञानी के जानने में मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर रहता है। ज्ञानी निज ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते हैं।

प्र० ४२—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर सम्यक्त्व के सम्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर-अहो-अहो ! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो द्वारा कथित, 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो' श्रद्धान' महान उपकारी है, मुझे तो इसका पता ही नहीं था। ऐसा विचार कर निज ज्ञान-दर्शन उपयोगी जीवतत्त्व का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभावकर अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते हैं।

प्र० ४३—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और करते हैं ?

उत्तर-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान', का विरोध करते हैं और मिथ्यात्व की पुष्टि करके चारों गतियों में घूमते हुए निगोद में चले जाते हैं।

प्र० ४४—जिन जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय में विशेष स्पष्टीकरण कहाँ देखें?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ तीन विश्व के प्रकरण में प्रश्नोत्तर ७६ से १०५ तक देखियेगा ।

अजीवतत्त्व का ज्यों का त्यो श्रद्धान

प्र० ४५—छहढाला में, 'अजीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—चेतनता विन सो अजीव है पच भेद ताके हैं,
पुद्गल पच वरन - रस, गन्ध - दो फरस वसू जाके हैं ।
जिय पुद्गल को चलन सहाई धर्म द्रव्य अनुरूपी,
तिष्ठत होय अधर्म सहाई जिन विन मूर्ति निरूपी ॥७॥
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो,
नियत वर्तना निगिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो ।

यो अजीव, ...

भावार्थ— (१) जिसमें ज्ञान-दर्शन की शक्ति नहीं होती उसे अजीव कहते हैं । उस अजीव के पाच भेद हैं - (१) पुद्गल धर्म-अधर्म-आकाश और काल । (२) जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण होते हैं उसे पुद्गल द्रव्य कहते हैं । (३) जो स्वयं स्वतः गति करते हैं ऐसे जीव और पुद्गल को चलने में निमित्त कारण होता है वह धर्म द्रव्य है । (४) जो स्वयं स्वतः गति पूर्वक स्थिर रहे हुए जीव और पुद्गल को स्थिर रहने में निमित्तकारण होता है वह अधर्म द्रव्य है । (५) जिसमें छह द्रव्यों का निवास है उस स्थान को आकाश कहते हैं । (६) जो स्वयं स्वतः अपने आप बदलते हुये सब द्रव्यों को बदलने में निमित्त है उसे निश्चयकाल कहते हैं । रात-दिन घड़ी, घण्टा आदि को व्यवहार काल कहा जाता है । जिनेन्द्र भगवान ने धर्म-अधर्म-आकाश और काल द्रव्यों को अमूर्तिक कहा है । इस प्रकार 'अजीव

तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' बताया है ।

प्र० ४६—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'अजीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' क्या बताया है ?

उत्तर—(१) जिनमे ज्ञान-दर्शन न हो वे अजीव द्रव्य हैं और वे पांच हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । (२) जिनमे मेरा ज्ञान-दर्शन नहीं है वे अजीवतत्त्व हैं । मुझ निज आत्मा के अलावा अनन्त जीवद्रव्य, अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य और लोक प्रमाण असंख्यान काल द्रव्य हैं ये सब अजीवतत्त्व हैं । (३) जिसमे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण पाया जावे वह पुद्गल द्रव्य है । उसमे स्पर्श की आठ पर्यायि, रस की पांच पर्यायि, गन्ध की दो पर्यायि, वर्ण की पांच पर्यायि और शब्द की सात पर्यायि, इस तरह २७ प्रकार की पर्यायि होती हैं । (४) इन २७ पर्यायि से जीवतत्त्व का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि जीव अस्पर्श अरस, अगन्ध, अवर्ण और अशब्द स्वभावी है । (५) जीव-पुद्गल जब अपनी-अपनी क्रियावती शक्ति से स्वयं स्वतः गमन रूप परिणमते हैं तब धर्म द्रव्य निमित्त होता है । (६) जीव-पुद्गल जब अपनी-अपनी क्रियावती शक्ति से स्वयं स्वतः चलकर स्थिर होते हैं तब अधर्म द्रव्य निमित्त होता है । (७) सर्व द्रव्य अनादिकाल से अपने-अपने क्षेत्र में रहते हैं, उसमे आकाश द्रव्य निमित्त है । (८) सर्व द्रव्य निज परिणमन स्वभाव के कारण स्वयं स्वतः परिणमते हैं, उसमे काल द्रव्य निमित्त है । (९) मुझ निज आत्मा का इन सब अजीव तत्वों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इनकी चाल मुझ जीव तत्त्व से भिन्न ही है । (१०) अजीवतत्त्व से सर्वथा भिन्न अपने को आप रूप जानकर पर का अंश भी अपने में न मिलाना और अपना अंश भी पर में न मिलाना । यह 'अजीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' जिन जिनवर और जिनवर वृषभो ने बताया है ।

प्र० ४७—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'अजीव-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—अनन्त ज्ञानियों का एक मत है—ऐसा पता चलता है ।

प्र० ४८—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'अजीव-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' को सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—केवली के समान अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान करते हैं, जानने में मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर रहता है । अजीवतत्व से सर्वथा भिन्न निज ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते हैं ।

प्र० ४९—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'अजीव-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' को सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—अहो ! अहो ! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है, मुझे तो इसका पता ही नहीं था । अजीव तत्व से सर्वथा भिन्न निज ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव कर अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते हैं ।

प्र० ५०—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'अजीव-तत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान' सुनकर दीर्घ ससारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—जिन-जिनवर और निजवर वृषभो से कथित, 'अजीव तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करते हैं और मिथ्यात्व की

पुष्टि करते हुए चारो गतियों मे घूमकर निगोद मे चले जाते हैं।

प्र० ५१—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'अजीव-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे विशेष स्पष्टीकरण कहाँ देखें ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेशरत्नमाला भाग तीसरा पाठ तीन विश्व के प्रकरण मे प्रश्नोत्तर १०६ से २५१ तक देखियेगा।

आस्रवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान

प्र० ५२—'आस्रवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे छह-ढाला मे क्या बताया है ?

उत्तर—, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा,
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥८॥
ये ही आत्म को दुख कारण, तातै इनको तजिये,

भावार्थ—अब आस्रवतत्वो का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का वर्णन करते हैं। (१) जीव के मिथ्यात्व—मोह—राग-द्वेष रूप परिणाम भाव आस्रव है। भाव आस्रव के पाच भेद हैं—मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग। (२) मिथ्यात्वादि ही आत्मा को दुख का कारण है, किन्तु पर पदार्थ दुख का कारण नहीं है। इसलिये अपने दोष रहित त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर दोष रूप मिथ्या भावो का अभाव करना चाहिये।

प्र० ५३—मोक्षमार्ग प्रकाशक मे, 'आस्रवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर—(१) अन्तरंग अभिप्राय मे मिथ्यात्वादि रूप जो रागादि-भाव हैं वे ही आस्रव हैं। ये सब मिथ्या अध्यवसाय हैं, वे त्याज्य हैं।

इसलिये हिसादिवत् अहिसादिक को भी बन्ध का कारण जानकर हेय ही मानना । (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २२६) (२) तथा अघाति कर्मों के उदय से बाह्य सामग्री मिलती है, उसमें शरीरादिक तो जीव के प्रदेशों से एक क्षेत्रावगाही होकर एक बन्धान रूप होते हैं और धन, कुटुम्बादिक आत्मा से (सर्वथा) भिन्न रूप हैं इसलिये वे सब बन्ध के कारण नहीं हैं, क्योंकि पर द्रव्य बन्ध का कारण नहीं होता । उनमें आत्मा को ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादिभाव होते हैं वही बन्ध का कारण जानना । (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २७)

प्र० ५४—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' क्या बताया है ?

उत्तर—पुण्य-पाप दोनों विभाव परिणति से उत्पन्न हुये हैं—इस लिये दोनों बन्ध रूप ही हैं । (१) व्यवहार दृष्टि से (मिथ्यादृष्टि की खोटी मान्यता होने से) भ्रमवश उनकी प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न भासित होने से, वे अच्छे और बुरे दो प्रकार के दिखाई देते हैं । (२) परमार्थ दृष्टि तो उन्हें (पुण्य-पाप भावों को) एक रूप ही—बन्ध रूप ही बुग ही जानती है । (समयसार कलश १०१) तथा प्रवचनसार गाथा ७७ में कहा है कि जो पुण्य-पाप में अन्तर डालता है वह घोर ससार में भ्रमण करता है । यह आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान है ।

प्र० ५५—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—अनन्त ज्ञानियों का एक मत है—ऐसा पता चल जाता है ।

प्र० ५६—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' को सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—केवली के समान 'आस्रवतत्व-का ज्यो का त्यो श्रद्धान' करते हैं और पुण्य-पाप रहित ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी अवन्ध स्वभावी निज आत्मा में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते हैं ।

प्र० ५७—जिन जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर सम्यक्त्व के सम्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—अहो! अहो! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित, 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है । मुझे तो इसका पता ही नहीं था—ऐसा विचार कर पुण्य-पाप रहित ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी अवन्ध स्वभावी निज आत्मा का आश्रय लेकर वहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह निज आत्मा में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाता है ।

प्र० ५८—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ ससारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करते हैं और चारों गतियों में घूमते हुए निगोद में चले जाते हैं ।

प्र० ५९—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विशेष स्पष्टीकरण कहा देखें ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले में ३४७ प्रश्नोत्तर से ३६० प्रश्नोत्तरो तक देखियेगा ।

बन्धतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान

प्र० ६०—छहढाला मे 'बन्धतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—जीव प्रदेश वर्ध विधि सो सो, बन्धन कवहुँ न सजिये ।

भावार्थ—(१) राग परिणाम मात्र ऐसा जो भावबन्ध है वह द्रव्यबन्ध का हेतु होने से वही निश्चय बन्ध है जो छोड़ने योग्य है । (२) तत्त्व दृष्टि से तो पुण्य-पाप दोनों बन्धन कर्ता ही है—यह 'बन्ध तत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान' छहढाला मे बताया है ।

प्र० ६१—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों ने 'बन्धतत्त्व का ज्यों का त्यों का श्रद्धान किसे बताया है?

उत्तर—(१) अघाति कर्म के फल अनुसार पदार्थों की संयोग-वियोग रूप अवस्थायें होती हैं । सम्यग्दृष्टि उनको व्यवहार से जान का ज्ञेय मानता है । (२) पुण्य-पाप का बन्ध वह पुद्गल की अवस्थायें हैं । उनके उदय से जो संयोग प्राप्त हो वे भी क्षणिक संयोग रूप से आते-जाते हैं जितने काल तक वे निकट रहे उतने काल भी वे सुख-दुःख देने को समर्थ नहीं हैं । (३) शुभाशुभ भाव वह ससार है । इसलिये उसकी रुचि छोड़कर, स्वोन्मुख होकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान पूर्वक निज आत्म स्वरूप में लीन होना ही जीव का कर्तव्य है ।

पुण्य-पाप-फल माहि, हरख बिलखौ मत भाई,
यह पुद्गल परजाय, उपजि बिनसै फिर थाई ।
लाख बात की बात यही, निश्चय डर लाओ,
तोरी सकल जग दद-फन्द, नित आतम ध्याओ ॥६॥

(४) (अ) कर्म योग्य पुद्गलो से भरा हुआ लोक है सो भले रहो,
(आ) मन-वचन-काय का चलन स्वरूप कर्म (योग) है सो भी भले

रहो, (इ) वे (पूर्वोक्त) करण भी उसके भले रहो, (ई) और वह चेतन-अचेतन का घात भी भले हो। परन्तु अहो! यह सम्यग्दृष्टि आत्मा रागादि को उपयोगभूमि में न लाता हुआ, केवल (एक) ज्ञान रूप परिणमित होता हुआ, किसी भी कारण से निश्चयतः बन्ध को प्राप्त नहीं होता। (अहो! देखो! यह सम्यग्दर्शन की अद्भुत महिमा है) (समयसार कलश १६५ श्लोकार्थ) यह जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित बन्धतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान है।

प्र० ६२-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्ध-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर-अनन्त ज्ञानियो का एकमत है-ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ६३-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्ध-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर-केवली के समान बन्धतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान करते हैं और निज अबन्ध स्वभावी ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी आत्मा में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते हैं।

प्र० ६४-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्ध-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख पात्रभव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर-अहो! अहो! जिन जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्धतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है। मुझे तो इसका पता नहीं था-ऐसा विचार कर अबन्ध स्वभावी ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी आत्मा का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह निज आत्मा में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाता है।

प्र० ६५—निज—जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्ध-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ ससारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्धतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करते हैं और चारो गतियो मे घूमते हुये निगोद मे चले जाते हैं ।

प्र० ६६—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्ध तत्त्व का ज्यो का त्यो का श्रद्धान' का विशेष स्पष्टीकरण कहां देखें ?

उत्तर—जैन सिद्धांत प्रवेग रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले मे ३६१ प्रश्नोत्तर से ३७६ प्रश्नोत्तर तक देखियेगा ।

प्र० ६७—छहढाला मे 'संवरतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर—(१) शम-दम तै जो कर्म न आवै, सो सवर आदरिये ॥ कषाय के अभाव को शम कहते हैं और द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रियो के विषयभूत पदार्थ से आत्मा को भिन्न जानने को दम कहते हैं । कषाय के अभाव से और द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय-इन्द्रियो के विषय भूत पदार्थों से निज आत्मा को भिन्न जानना मानना—यह 'सवर-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' है । अशुद्धि का उत्पन्न न होना और शुद्धि का प्रगट होना—यह प्रगट करने योग्य उपादेय है ।

(२) जिन पुण्य—पाप नहि कीना, आतम अनुभव चित दीना,
तिनही विधि आवत रोके, सवर लहि सुख अव लोके ॥१०॥

अर्थ - जिन्होंने शुभभाव और अशुभभाव नहीं किये तथा मात्र आत्मा के अनुभव मे (गुडोपयोग मे) ज्ञान को लगाया है । उन्होंने आते

हुये कर्मों को रोका है और संवर प्राप्त करके पुनः का सदात्तकार किया है। (३) 'अनन्त हित हेतु विगत ज्ञान' अर्थात् निश्चय सम्पूर्ण-दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य ही जीव को हितकारी है। स्वरूप में स्थिरता द्वारा राग का जितना अभाव वह वैराग्य है और वही सुख का कारण है। यह संवर तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान है।

प्र० ६८—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों ने 'संवरतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' किसे बताया है ?

उत्तर—शुद्धोपयोग में निश्चय सम्पूर्णदर्शन के काल में चारित्र्यगुण में दो धारा शुरु हो जाती है। जिसे मिश्रभाव कहते हैं। मिश्रभाव में जो वीतरागता है वह नवर है और राग है वह बन्ध है। अतः जितनी वीतरागता है वह ही संवर है। वीतरागता को ही संवर मानना—यह 'संवरतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' है।

प्र० ६९—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'संवर-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—अनन्त ज्ञानियों का एकमत है—ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ७०—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'संवर-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—केवली के समान 'संवरतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' करते हैं और अवन्ध स्वभावी निज भगवान में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा वन जाते हैं।

प्र० ७१—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'संवर-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर-सम्यक्त्व के सम्मुख पात्र भव्य मिथ्या दृष्टि जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर-अहो! अहो! जिन-जिनवर औ जिनवर वृषभो से कथित 'सवरतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी हैं। मुझे तो इस बात का पता ही नहीं था। ऐसा विचार कर अबन्ध स्वभावी ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीवतत्व का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह निज आत्मा में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाता है।

प्र० ७२-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'सवरतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और क्या करते हैं?

उत्तर-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'सवरतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करते हैं और चारो गतियों में घूमते हुये निगोद में चले जाते हैं।

प्र० ७३-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'सवरतत्व का ज्यों का त्यो श्रद्धान' का विशेष स्पष्टीकरण कहा देखें ?

उत्तर-जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले में ३७७ प्रश्नोत्तर से ३६२ प्रश्नोत्तर तक में देखियेगा।

निर्जरातत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान

प्र० ७४-छहढाला में 'निर्जरातत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर-(१) तप-बल से विधि झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये । न। भावार्थ - शुभाशुभ इच्छाओं के अभाव रूप तप की शक्ति से कर्मों का एकदेश खिर जाना सो निर्जरा है। उस निर्जरा को सदैव प्राप्त करना चाहिए।

(२) निज काल पाय विधि झरना, तासो निज काज न सरना,
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसोवे ॥

भावार्थ — अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मों का खिर जाना तो प्रति समय अज्ञानी को भी होता है। वह कही शुद्धि का कारण नहीं होता है। आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा जो कर्म खिर जाते हैं वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा कहलाती है। तदनुसार शुद्धि की वृद्धि होते-होते सम्पूर्ण निर्जरा होती है तब जीव सुख की पूर्णता रूप मोक्ष प्राप्त करता है—यह निर्जरा तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान् छहडाला में बताया है।

प्र० ७५—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'निर्जरातत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान्' किसे बताया है ?

उत्तर—जैसे गीला कम्बल को टाग दो उसमें पानी झरता रहता है और कम्बल सूख जाता है; उसी प्रकार आत्मा में अशुद्धि की हानि शुद्धि की वृद्धि निर्जरा है।

प्र० ७६—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'निर्जरा-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान्' से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—अनन्त ज्ञानियों का एक मत है—ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ७७—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'निर्जरा तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान्' सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—केवली के समान 'निर्जरा तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान्' करते हैं और अबन्ध स्वभावी निज भगवान् में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते हैं।

प्र० ७८—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'निर्जरा-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर सम्यक्त्व के सम्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—अहो! अहो! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'निर्जरा तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है मुझे तो इस बात का पता नहीं था। ऐसा विचार कर अबन्ध स्वभावी निज भगवान् आत्मा का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह निज आत्मा में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाता है।

प्र० ७९—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'निर्जरा-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानता है और क्या करता है ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'निर्जरातत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करता है और चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्र० ८०—जिन-जिनवर-जिनवर वृषभो से कथित निर्जरातत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विशेष स्पष्टीकरण कहा देखें।

उत्तर—जन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले में ३६३ प्रश्नोत्तर से ४११ प्रश्नोत्तर तक देखियेगा।

मोक्षतत्त्व का ज्यों का श्रद्धान

प्र० ८१—छहड़ाला में, 'मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) सकल कर्म तै रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।

भावार्थ—आठ कर्मों के सर्वथा नाशपूर्वक आत्मा की जो सम्पूर्ण शुद्ध दशा प्रकट होती है उसे मोक्ष कहते हैं। वह, दगा अविनाशी तथा अनन्त सुखमय है।

प्र० ८२—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' किसे बताया है?

उत्तर—आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है। मोक्ष में सम्पूर्ण आकुलता का अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है।

प्र० ८३—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' से क्या लाभ रहा।

उत्तर—अनन्त ज्ञानियों का एक मत है—ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ८४—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान, सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—केवली के समान 'मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' करते हैं और त्रिकाल मोक्षस्वरूप निज भगवान आत्मा में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते हैं।

प्र० ८५—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान,' सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—अहो-अहो! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है, मुझे तो इस बात का पता ही नहीं था—ऐसा विचारकर त्रिकाल मोक्ष स्वरूप निज

भगवान् आत्मा का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह मोक्षस्वरूप निज आत्मा में विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाता है।

प्र० ८६—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, मोक्ष-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान् सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानता है और क्या करता है ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान्' का विरोध करता है और चारो गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्र० ८७—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, मोक्ष तत्त्व का ज्यों का त्यो श्रद्धान्, का विशेष स्पष्टीकरण कहा देखें ?

उत्तर—जैन सिद्धांत प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले में ४१२ प्रश्नोत्तर से ४२६ प्रश्नोत्तर तक देखियेगा।

प्र० ८८—मोक्षमार्ग प्रकाशक नवमे अधिकार में, 'साततत्त्वो का ज्यो का त्यो श्रद्धान् के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—'तत्त्वार्थ श्रद्धान् करने का अभिप्राय केवल उनका निश्चय करना मात्र ही नहीं है। वहा अभिप्राय ऐसा है कि (१) जीव-अजीव को पहिचानकर अपने को तथा पर को जैसा का तैसा माने अर्थात् अपने को आप रूप जानकर पर का अंश भी अपने में न मिलाना और अपना अंश भी पर में न मिलाना। (२) आस्रव को पहिचानकर उसे हेय माने। (३) तथा बन्ध को पहिचानकर उसे अहित माने। (४) तथा सवर को पहिचानकर उसे प्रगट करने योग्य उपादेय माने। (५) तथा निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण माने। (६) तथा

मोक्ष को पहिचानकर उसको अपना परम हित प्रगट करने योग्य माने — ऐसा तत्त्वार्थ श्रद्धान का ज्यो का त्यो अभिप्राय है ।

प्र० ८६—‘इहित्रिध जो सरधा तत्वन को, सो समकित व्यवहारी’
इसका भाव क्या है ?

उत्तर—इस प्रकार प्रश्नोत्तर ३८ से ८८ प्रश्नोत्तर तक सात तत्त्वो का भेद सहित श्रद्धा न करना सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है ।

प्र० ८०—निश्चय सम्यग्दर्शन का निमित्त कारण कौन है और उसे व्यवहार से क्या कहा जाता है ?

उत्तर—देव, जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो । ये हु मान समकित को कारण । भावार्थ —जिनेन्द्रदेव, वीतरागी दिगम्बर जैन गुरु तथा जिनेन्द्रप्रणीत अहिंसामय धर्म भी उस व्यवहार सम्यग्दर्शन के (निमित्त) कारण है । अर्थात् इन तीनों का यथार्थ श्रद्धान भी व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है ।

प्र० ८१—सम्यक्त्व को किससे सहित और किससे रहित धारण करना चाहिये ?

उत्तर—अष्ट-अग-जुत धारो । वसुमद टारि, निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो । शकादिक वसु दोष विना, सवेगादिक चित्त पागो । भावार्थ —(१) उस सम्यग्दर्शन को आठ अंगो सहित धारण करना चाहिए । (२) आठ मद, तीन मूढता, छह अनायतन, और आठ शकादि दोष—इस प्रकार सम्यक्त्व के पच्चीस दोषो का त्याग करना चाहिए । (३) सवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य और प्रशम सम्यग्दृष्टि मे पाए जाते हैं ।

प्र० ८२—जब जीव को सम्यक्त्व होता है जो उसमे आठ अंग

प्रगट होते हैं और पच्चीस दोष होने ही नहीं हैं तब फिर सम्यक्त्व को आठ अंग सहित और पच्चीस दोषों से रहित का वर्णन क्यों करते हैं ?

उत्तर—अष्ट अंग अरु दोष पच्चीसों, तिन सक्षेप कहिये ।

विन जाने तैं दोष गुनन को, कैसे तजिए गहिये ॥११॥

भावार्थ—सम्यक्त्व के आठ अंगों और पच्चीस दोषों का सक्षेप में वर्णन किया जाता है, क्योंकि जाने और समझे बिना दोषों को कैसे छोड़ा जा सकता है तथा गुणों को कैसे ग्रहण किया जा सकता है।

प्र० ६३—आत्मज्ञानी सम्यग्दृष्टि को कौन से आठ अंग प्रगट होते हैं और कौन से दोष उत्पन्न नहीं होते हैं ?

उत्तर—(१) जिन वच में शका न धार (२) वृष, भव-सुख वाछा भानै (३) मुनि-तन मलिन न देख धिनावै (४) तत्त्व-कुतत्त्व पिछानै (५) निज गुण अरु पर औगुण ढाके, वा निज धर्म बढावै । (६) कामादिक कर वृष तैं चिगते, निज-पर को सु दिढावै ॥१२॥ धर्मी सो गौ-वच्छ प्रीति सम, (८) कर जिन धर्म दिपावै । इन गुण तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै ॥

भावार्थ—[अ] आत्म ज्ञानी जीव के मन में कभी भी (१) तत्त्वार्थ श्रद्धान में शका नहीं होती और मुक्ति मार्ग साधने में रत रहते हैं । (२) चित्त में दूसरी अन्य कोई वाछा उत्पन्न नहीं होती है । (३) मुनिजनों के देह की मलिनता देखकर जरा भी ग्लानि नहीं करते हैं । (४) तत्त्व और कुतत्त्व के निर्णय में मूर्ख नहीं रहते हैं । (५) अन्तर हृदय में सर्व जीवों के प्रति विशेष दया रूप कोमल परिणाम रहता है । धर्मात्मा के गुणों को प्रसिद्ध करते हैं तथा अवगुणों को ढाँकते हैं । (६) धर्मात्मा जीवों को धर्म में शिथिल होता जाने तो हर सम्भव उपाय के द्वारा उन्हें मोक्षमार्ग में स्थिर करते हैं ।

(७) साधर्म्यो बन्धुओ को देखकर उनके प्रति गौ-वत्स समान प्रीति करते हैं। (८) ऐसे सभी धर्म कार्यों को करते हैं कि जिससे धर्म की अतिशय महिमा प्रसिद्ध हो-इत्यादि प्रमाण सम्यक्त्व होने पर निश्चिन्तादि आठ गुण तत्काल प्रगट हो जाते हैं। [आ] इन आठ गुणों से विपरीत (१) शका, (२) काक्षा, (३) विचिकित्सा, (४) मूढ दृष्टि, (५) अप्रगूहन, (६) अस्थितिकरण (७) अवात्सल्य और (८) अप्रभावना रूप आठ दोष उत्पन्न ही नहीं होते हैं।

प्र० ६४-सम्यग्दृष्टि जीव को कौन-कौन से आठ मद नहीं होते हैं और क्यों नहीं होते हैं ? और होते हैं तो क्या होता है?

उत्तर-पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तौ मद ठानै।

मद न रूप कौ मद न ज्ञान कौ, धन बल कौ मद भानै। १३

तप कौ मद न मद जु प्रभुता को, करै न सौ निज जानै।

मद धारे तो यही दोष वसु समकित कौ मल ठानै ॥

भावार्थ—[अ] सम्यग्दृष्टि जीव का (१) पिता राजा होवे तो उसका भी कुलमद नहीं होता है। (२) मामा राजा होवे तो उसका भी जातिमद नहीं होता है। (३) वैभव धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति होने का भी मद नहीं होता है। (४) सुन्दर रूप का भी मद नहीं होता है। (५) ज्ञान का भी मद नहीं होता है। (६) शरीर में विशेष बल हो तो उसका भी मद नहीं होता है। (७) लोभ में कोई मुखिया-प्रधान पद आदि अधिकार का भी मद नहीं होता है। (८) धन-सम्पत्तिकोष का भी मद नहीं होता है। [आ] जिसने रागादि विभाव भावों को छोड़कर उनसे भिन्न आत्मा का ज्ञान प्रगट किया है उसको जाति आदि आठ प्रकार के अस्थिर नाशवान वस्तुओं का मद कैसे हो सकता है ? कभी भी नहीं हो सकता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को आठ प्रकार के मदों का अभाव वर्तता है। [इ] यदि उनका गर्व करता है तो यह मद सम्यग्दर्शन के आठ दोष बनकर उसे दूषित करते हैं।

प्र० ६५—छह अनायतन और तीन मूढता दोष क्या-क्या हैं जो सम्यग्दृष्टि में नहीं पाये जाते हैं ?

उत्तर—कुगुरु-कुदेव-कुवृष सेवक की नहि प्रशंसा उचरें है ।
जिन मुनि जिन श्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्है न नमन करै है ॥१४॥
भावार्थ—(१) कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरुसेवक, कुदेव सेवक तथा तथा कुधर्मसेवक—यह छह अनायतन दोष कहलाते हैं । उनकी भक्ति विनय और पूजनादि तो दूर रही, किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव उनकी प्रशंसा भी नहीं करता, क्यों कि उनकी प्रशंसा करने से भी सम्यक्त्व में दोष लगता है । (२) सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्रदेव, वीतरागीमुनि, और जिनवाणी के अतिरिक्त कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्रादि को भय-आशा-लोभ और स्नेह आदि के कारण भी नमस्कार नहीं करता, क्यों कि उन्हें नमस्कार करने मात्र से भी सम्यक्त्व दूषित हो जाता है । (३) कुगुरु सेवा, कुदेव सेवा तथा कुधर्म सेवा—यह तीन भी सम्यक्त्व के मूढता नामक दोष हैं ।

प्र० ६६—सम्यग्दृष्टि जीव कौन हैं ?

उत्तर—शकादि आठ दोष, आठ मद तीन मूढता और छह अनायतन—ये पच्चीस दोष जिसमें नहीं पाये जाते हैं—वह जीव सम्यग्दृष्टि है ।

प्र० ६७—(१) क्या अव्रती सम्यग्दृष्टि की देवी द्वारा पूजा (२) और गृहस्थपने में अप्रीति होती है ?

उत्तर—दोष रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजै है ।
चरित मोहवश लेश न सजम, पै सुरनाथ जजै है ।
गेही, पै गृह में न रचै ज्यो जलत भिन्न कमल है ।
नगर नारि कौ प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ॥१५॥
भावार्थः—(१) जो विवेकी पच्चीस दोष रहित तथा आठ गुण सहित

सम्यग्दर्शन धारण करते हैं, उन्हें अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के तीव्र उदय में युक्त होने के कारण यद्यपि समयभाव लेशमात्र भी नहीं दिखता है तथापि इन्द्रादि उनका आदर करते हैं। (२) [अ] जिस प्रकार पानी में रहने पर भी कमल पानी से अलिप्त रहता है; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि घर में रहते हुये भी गृहस्थपने में लिप्त नहीं होता परन्तु उदासीन रहता है। [आ] जिस प्रकार वेश्या का प्रेम मात्र पैसे में ही होता है, मनुष्य पर नहीं होता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का प्रेम निज आत्मा में ही होता है, किन्तु गृहस्थपने में नहीं होता है। [इ] जिस प्रकार सोना कीचड़ में पड़े रहने पर भी निर्मल रहता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थपने में दीखने पर भी उसमें लिप्त नहीं होता है, क्योंकि वह उसे त्यागने योग्य मानता है। [ई] जैसे रोगी औषधि सेवन को अच्छा नहीं मानता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थ सम्बन्धी राग को अच्छा नहीं मानता है। (३) जैसे बन्दी कारागृह में रहना नहीं चाहता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि गृहस्थपने में रहना नहीं चाहता है।

प्र० ६८—(१) सम्यग्दृष्टि जीव कहा-कहा उत्पन्न नहीं होते हैं, (२) कहाँ-कहाँ उत्पन्न होते हैं (३) सुखदायक वस्तु कौन है (४) और सर्व धर्मों का मूल कौन है ?

उत्तर—प्रथम नरक विन षट् भू ज्योतिष वान भवन पड नारि; थावर विकलत्रय पशु में नहि, उपजात सम्यक धारी। तीन लोक तिहुँ काल माँहि नहि, दर्शन सो सुखकारी, सकल धर्म को मूल यही, इस विन करनी दुखकारी ॥१६॥
भावार्थ—सम्यग्दृष्टि जीव आयु पूर्ण होने पर जब मृत्यु प्राप्त करते हैं तब दूसरे से सातवे नरक के नारकी, ज्योतिषी व्यन्तर, भवनवासी, नपुंसक, सब प्रकार की स्त्री, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और कर्मभूमि के पशु नहीं होते हैं। (नीच फल वाले, विकृत अंग वाले, अल्पायु वाले तथा दरिद्री नहीं होते हैं। (२) विमानवासी देव, भोग-

भूमि के मनुष्य या भोगभूमि के तिर्य च होते हैं। कदाचित् नरक में जाये तो पहले नरक से नीचे नहीं जाते हैं। (३) तीन लोक और तीन काल में सम्यग्दर्शन के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है। (४) और सम्यग्दर्शन ही सब धर्मों का मूल है। सम्यग्दर्शन के बिना जितने क्रियाकांड हैं वे सब दुःखदायक हैं।

प्र० ६६-(१) मोक्षमहल में पहुँचने की प्रथम सीढ़ी कौन सी है? (२) सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र क्या है? (३) पात्र जीव को क्या करना चाहिए (४) पं० जी की सीख क्या है? (५) और सम्यक्त्व प्राप्त न किया तो क्या होगा?

उत्तर-मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा, सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।

‘दौल’ समझ, सुन, चेत, सयाने, काल वृथा मत खोवै,

यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं हौवै ॥१७॥

भावार्थ - (१) सम्यग्दर्शन ही मोक्षरूपी महल में पहुँचने की प्रथम सीढ़ी है। (२) सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्या चारित्र कहलाता है। (३) इसलिये प्रत्येक आत्मारथी को निज आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये (४) दौलतराम जी कहते हैं-‘हे विवेकी आत्मा ! तू पवित्र सम्यग्दर्शन के स्वरूप को स्वयं सुनकर अन्य अनुभवी ज्ञानियों से प्राप्त करने में सावधान हो, अपने मनुष्य जीवन को व्यर्थ न खो। (५) और इस मनुष्य जन्म में यदि सम्यक्त्व प्राप्त न किया तो फिर मनुष्य पर्याय आदि अच्छे योग पुन पुन प्राप्त नहीं होते हैं।

प्र० १००-मोक्षमार्ग प्रकाशक नवमे अधिकार में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर-(१) जो विचारशक्ति सहित हो और जिसके रागादिक मन्द हो वह जीव पुरुषार्थ से उपदेशादिक के निमित्त से तत्त्व निर्ण-

यादि मे उपयोग लगाये तो उसका उपयोग वहाँ लगे और तब उसका भला हो । (२) यदि इस अवसर मे भी तत्त्व निर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गवाये, या तो मन्द रागादि सहित विषय कषायो के कार्यों मे ही प्रवर्तें या व्यवहार धर्म कार्यों मे प्रवर्तें, तब अवसर तो चला जावेगा और ससार मे ही भ्रमण होगा । (३) इसलिये अवसर चूकना योग्य नहीं है । अब सर्व प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है । इसलिये श्री गुरु दयालु होकर मोक्ष मार्ग का उपदेश दे, उसमे भव्य जीवो को प्रवृत्ति करना ।

— — — — —

चौथी, पांचवी, छठी ढाल के सारांश पर

२० प्रश्नोत्तर

प्र० १-सम्यग्दर्शन के अभाव मे जो ज्ञान होता है उसे क्या कहा जाता है (२) और सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् जो ज्ञान होता है उसे क्या कहा जाता है ?

उत्तर—(१) सम्यग्दर्शन के अभाव मे जो ज्ञान होता है उसे मिथ्या ज्ञान कहा जाता है (२) और सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् जो ज्ञान होता है उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है ।

प्र० २-सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रकट होते हैं फिर उनमे अन्तर किस-किस कारण से है ?

उत्तर—(१) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनो भिन्न-भिन्न गुणो की पर्यायि है । सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की शुद्ध पर्यायि है और सम्यग्ज्ञान ज्ञान गुण की शुद्ध पर्यायि है । (२) दोनो के लक्षण मे अन्तर है—सम्यग्दर्शन का लक्षण विपरीत अभिप्राय रहित तत्त्वार्थ श्रद्धा है और सम्यग्ज्ञान का लक्षण सशय आदि दोष रहित स्व-पर का यथार्थतया निर्णय है । (३) दोनो मे कारण—कार्य भाव से भी अन्तर है । सम्यग्दर्शन निमित्त कारण है और सम्यग्ज्ञान नैमित्तिक कार्य है ।

प्र० ३—ज्ञान-श्रद्धान तो एक साथ होते हैं, तो उनमें कारण-कार्यपना क्यों कहने हो?

उत्तर—“वह हो तो वह होता है” इस अपेक्षा से कारण-कार्यपना कहा है। जिस प्रकार दीपक और प्रकाश दोनों एक साथ होते हैं, तथापि दीपक हो तो प्रकाश होता है इसलिये दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है, उसी प्रकार ज्ञान-श्रद्धान भी है।

प्र० ४—केवल ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो ज्ञान तीन काल और तीन लोकवर्ती सर्व पदार्थों को प्रत्येक समय में यथास्थित, परिपूर्ण रूप से स्पष्ट और एक साथ जानता है उस ज्ञान को केवल ज्ञान कहते हैं।

प्र० ५—सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर—(१) इस ससार में सम्यग्ज्ञान के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है। (२) सम्यग्ज्ञान ही जन्म-जरा और मृत्यु रूपी तीनों रोगों का नाश करने के लिये उत्तम अमृत समान है।

प्र० ६—ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म नाश के विषय में क्या अन्तर है ?

उत्तर—(१) मिथ्यादृष्टि जीव को सम्यग्ज्ञान के बिना करोड़ों जन्म तक तप तपने से जितने कर्मों का नाश होता है। उतने कर्म सम्यग्ज्ञानी जीव के त्रिगुप्ति से क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं।

प्र० ७—सम्यग्ज्ञान का क्या प्रभाव है ?

उत्तर—पूर्वकाल में जो जीव मोक्ष गये हैं, भविष्य में जायेंगे और वर्तमान में महा विदेह क्षेत्र से जा रहे हैं। यह सब सम्यग्ज्ञान का ही प्रभाव है।

प्र० ८—और सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर—जिस प्रकार मूसलाधार वर्षा वन की भयंकर अग्नि को क्षण मात्र में बुझा देती है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान विषय वासना को

क्षणमात्र में नष्ट कर देता है ।

प्र० ९-आत्मार्थी को क्या करना चाहिये ?

उत्तर-आत्मा और पर वस्तुओं का भेद विज्ञान होने पर सम्यग्-ज्ञान होता है । इसलिये सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय का त्याग करके तत्त्व के अभ्यास द्वारा सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।

प्र० १०-आत्मार्थी को सम्यग्ज्ञान क्यों प्राप्त करना चाहिये ?

उत्तर-मनुष्य पर्याय, उत्तम श्रावक कुल और जिनवाणी का सुनना आदि सुयोग बारम्बार प्राप्त नहीं होते हैं-ऐसा दुर्लभ सुयोग प्राप्त करके सम्यग्ज्ञान प्राप्त न करना मूर्खता है ।

प्र० ११-प्रत्येक आत्मार्थी को प्रथम क्या करना चाहिये ?

उत्तर-धन समाज गज बाज, राज तो काम न आवै,
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै,
तास ज्ञान को कारन, स्व-पर विवेक बखानौ ।
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनौ ॥७॥

भावार्थ - (१) धन-सम्पत्ति, परिवार, नौकर-चाकर, हाथी-घोडा तथा राज्यादि कोई भी पदार्थ आत्मा को सहायक नहीं होते, किन्तु सम्यग्ज्ञान आत्मा का स्वरूप है । वह एक बार स्वभाव का आश्रय लेकर प्राप्त कर लिया जाय, कभी नष्ट नहीं होता, अचल एक रूप रहता है । (२) निज आत्मा और पर वस्तुओं का भेद विज्ञान ही उस सम्यग्ज्ञान का कारण है । (३) इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी भव्य जीव को करोड़ो उपाय करके उस भेद विज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए ।

प्र० १२-छहढाला में पुण्य-पाप में हर्ष-विषाद का निषेध क्यों किया है ?

उत्तर-पुण्य-पाप फल माहि हरख बिलखौ मत भाई,
यह पुद्गल पर जाय उपजि बिनसै हर थाई ।

भावार्थ-(१) आत्मार्थी जीव का कर्तव्य है कि धन-मकान-दुकान,

कीर्ति, निरोगी शरीरादि पुण्य के फल है। उनसे अपने को लाभ है या हानि है-ऐसा न माने (२) पर पदार्थ सर्वथा भिन्न है, ज्ञेय मात्र है-उनमें किसी को अनुकूल-प्रतिकूल मानना मात्र जीव की भूल है। (३) इसलिए पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक नहीं करना चाहिए।

प्र० १३-सर्व शास्त्रों का सार क्या है ?

उत्तर-लाख बात की बात यही निश्चय डर लाओ।

तोरि सकल जग दद-फद, नित आत्म ध्याओ ॥६॥

भावार्थ-जैन धर्म के समस्त उपदेश का सार यही है कि शुभाशुभ ही ससार है। उसकी रुचि छोड़कर स्वोन्मुख होकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान पूर्वक निज आत्मस्वरूप में एकाग्र होना ही जीव का परम कर्तव्य है।

प्र० १४-सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके फिर क्या करना चाहिये ?

उत्तर-सम्यक्चारित्र प्रगट करना चाहिए। साधक को जितनी शुद्धि होती है वह चारित्र है और अशुद्धि है वह पुण्य बन्ध का कारण होने से हेय है। अपने में पूर्ण लीन होकर पूर्ण परमात्मदशा प्राप्त करनी चाहिये।

प्र० १५-स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस चारित्र के होने से समस्त पर पदार्थों से वृत्ति हट जाती है। वर्णादि तथा रागादि से चैतन्य भाव को पृथक् कर लिया जाता है। अपने आत्मा में, आत्मा के लिये, आत्मा द्वारा, अपने आत्मा का ही अनुभव होने लगता है। वहा नय, प्रमाण, निक्षेप, गुण-गुणी, ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय, ध्यान-ध्याता-ध्येय, कर्ता-कर्म और क्रिया आदि भेदों का किंचित् विकल्प नहीं रहता है। शुद्ध उपयोग रूप अमेद रत्नत्रय द्वारा शुद्ध चैतन्य का ही अनुभव होने लगता है उसे स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

प्र० १६-यहा स्वरूपाचरण चारित्र किसे किसे कहा है ?

उत्तर-(१) अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव रूप दशा वी। (२)

दो चौकड़ी कषाय के अभाव रूप देश चारित्र को । (३) तीन चौकड़ी कषाय के अभाव रूप सकलचारित्र को । (४) और सज्ज्वलनादि के अभाव रूप यथाख्यात चारित्र को स्वरूपाचरण चारित्र कहा है ।

प्र० १७—स्वरूपाचरण चारित्र कौन से गुणस्थान से शुरु होकर पूर्ण होता है ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होकर मुनिदशा मे अधिक उच्च होकर १२वे गुणस्थान मे पूर्ण होता है ।

प्र० १८—यदि शान्ति की इच्छा हो तो क्या करना ?

उत्तर—आलस्य को छोडकर, आत्मा कर्तव्य समझकर, रोग और वृद्ध अवस्था आदि आने से पूर्व ही मोक्षमार्ग मे प्रवृत्त हो जाना चाहिए ।

प्र० १९—प्रत्येक अज्ञानी जीव ने अनादि से क्या किया और उससे क्या नहीं हुआ ?

उत्तर—(१) प्रत्येक ससारी जीव मिथ्यात्व, कषाय और विषयो का सेवन तो अनादिकाल से करता आया है, किन्तु उससे उसे किंचित् शान्ति प्राप्त नहीं हुई ।

प्र० २०—छहढाला मे अन्तिम शिक्षा क्या दी है ?

उत्तर—मनुष्यपर्याय, सत्समागम आदि सुयोग बारम्बार प्राप्त नहीं होते है । इसलिए उन्हे व्यर्थ न गवाकर अवश्य ही आत्महित साध लेना चाहिए ।

पांचवा अधिकार

चार प्रकार की इच्छाओं का स्पष्टीकरण

प्र० १—चार प्रकार की इच्छाओं का वर्णन किस शास्त्र से आपने प्रश्नोत्तरो के रूप में संग्रह किया है ?

उत्तर—सत्ता स्वरूप से प्रश्नोत्तरो के रूप में संग्रह किया है ।

प्र० २—सत्ता स्वरूप से प्रश्नोत्तरों के रूप में क्यों संग्रह किया है ?

उत्तर—अज्ञानी जीव को अपनी भूल का पता लगे और वह भूल रहित अपने स्वभाव का आश्रय लेकर भूल का अभाव करके सुखी हो-ऐसी भावना से ही संग्रह किया है ।

प्र० ३—इच्छा रूप रोग क्या है और कब से है ?

उत्तर—अज्ञान से उत्पन्न होने वाली इच्छा ही निश्चय से दुःख है वह तुम्हें बतलाते हैं । यह ससारी जीव अनादि से अष्ट कर्म के उदय से उत्पन्न हुई जो अवस्था उस रूप परिणमित होता है । वहाँ भिन्न परद्रव्य, सयोगरूप परद्रव्य, विभाव परिणाम तथा ज्ञेयश्रुतज्ञान के पङ्क रूप भावपर्याय के धर्म उनके साथ अहंकार-ममकाररूप कल्पना करके परद्रव्यों को मिथ्या इष्ट-अनिष्टरूप मानकर मोह-राग-द्वेष के वशीभूत होकर किसी परद्रव्य को आपरूप मान लेता है । जिसे इष्ट-रूप मान लेता है उसे ग्रहण करना चाहता है तथा जिसे पररूप-अनिष्ट मान लेता है उसे दूर करना चाहता है, इस प्रकार जीव को अनादिकाल से एक इच्छारूप रोग अन्तरंग में शक्तिरूप उत्पन्न हुआ है उसके चार भेद हैं ।

प्र० ४—इच्छा के चार भेद कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) मोहइच्छा (२) कषाय इच्छा (३) भोग इच्छा (४) रोगाभाव इच्छा ।

प्र० ५—क्या चार प्रकार की इच्छा एक ही साथ होती है ?

उत्तर—वहा इन चार मे से एक काल मे एक ही की प्रवृत्ति होती है । किसी समय किसी इच्छा की और किसी समय किसी इच्छा की होती रहती है ।

प्र० ६—चार प्रकार की इच्छा किसके पाई जाती है, किसके नहीं पाई जाती है ?

उत्तर—वहा मूल तो मिथ्यात्वरूप मोहभाव एक सच्चे जैन बिना सर्व संसारी जीवो को पाया जाता है ।

प्र० ७—मोह इच्छा क्या है ?

उत्तर—प्रथम मोह इच्छा कार्य इस प्रकार है —स्वय तो कर्मजनित पर्यायरूप बना रहता है, उसी मे अहकार करता रहता है कि मैं मनुष्य हूँ, तिर्यच हूँ इस प्रकार जैसी-जैसी पर्याय होती है उस-उस रूप ही स्वय होता हुआ प्रवर्तता है । तथा जिस पर्याय मे स्वय उत्पन्न होता है उस सम्बन्धी सयोगरूप व भिन्न रूप परद्रव्य जो हस्तादि अगरूप व धन, कुटुम्ब, मन्दिर ग्राम आदि को अपना मानकर उनको उत्पन्न करने के लिये व सम्बन्ध सदा बना रहे उसके लिये उपाय करना चाहता है । तथा सम्बन्ध हो जाने पर सुखी होना, मग्न होना व उनके वियोग मे दु खी होना शोक करना अथवा ऐसा विचार आए कि मेरे कोई आगे-पीछे नहीं इत्यादिरूप आकुलता का होना उसका नाम मोह इच्छा है ।

प्र० ८—क्रोध क्या है ?

उत्तर—किसी परद्रव्य को अनिष्ट मानकर उसे अन्यथा परिणमन कराने की, उसे बिगाडने की व सत्तानाश कर देने की इच्छा वह क्रोध है ।

प्र० ९—मान क्या है ?

उत्तर—किसी परद्रव्य का उच्चपना न सुहाये व अपना उच्चपना प्रगट होने के अर्थ परद्रव्य से द्वेष करके उसे अन्यथा परिणमन कराने की इच्छा हो उसका नाम मान है ।

प्र० १०—माया क्या है ?

उत्तर—किसी परद्रव्य को इष्ट मानकर उसे प्राप्त करने के लिये व सम्बन्ध बना रखने के लिए व उसका विघ्न दूर करने के लिए जो छल-कपटरूप गुप्त कार्य करने की इच्छा का होना उसे माया कहते हैं।

प्र० ११—लोभ क्या है ?

उत्तर—अन्य किसी परद्रव्य को इष्ट मानकर उससे सम्बन्ध मिलाने व सम्बन्ध रखने की इच्छा होना सो लाभ है।

प्र० १२—कषाय इच्छा क्या है ?

उत्तर—इस प्रकार उन चार प्रकार की प्रवृत्ति का नाम कषाय इच्छा है।

प्र० १३—भोग इच्छा क्या है ?

उत्तर—पाच इन्द्रियो को प्रिय लगनेवाले जो परद्रव्य उनको रति-रूप भोगने की इच्छा का होना उसका नाम भोग इच्छा है।

प्र० १४ रोगाभाव इच्छा क्या है ?

उत्तर—क्षुधा-तृषा, शीत-उष्णादि व कामविकार आदि को मिटाने के लिये अन्य परद्रव्यो के सम्बन्ध की इच्छा होना उसका नाम रोगाभाव इच्छा है।

प्र० १५—जब मोह इच्छा की प्रबलता हो तब बाकी तीन इच्छाओं का क्या होता है ?

उत्तर— इस प्रकार चार प्रकार की इच्छा है, उनमे से किसी एक ही इच्छा की प्रबलता रहती है तथा शेष तीन इच्छाओ की गौणता रहती है।

प्र० १६—जब मोह इच्छा प्रबल हो तब कषाय इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर— जैसे-मोह इच्छा प्रबल हो तो तब पुत्रादिक के लिये पर-

देश जाता है, वहा भूख-तृषा, शीत-उष्णतादि का दुःख सहन करता है, स्वयं भूखा रहता है और अपना मान-मद खोकर भी कार्य करता है, अपना अपमानादिक करता है, छलादिक करता है तथा धनादिक खर्च करता है, इस प्रकार मोह-इच्छा प्रबल रहने पर कषाय इच्छा गौण रहती है ।

प्र० १७—जब मोह इच्छा प्रबल हो तब भोग इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—अपने हिस्से का भोजन, वस्त्रादि पुत्रादि, कुटुम्बियों को अच्छे-अच्छे लाकर देता है, अपने को रूखा-सूखा-बासी खाने को मिले तो भी प्रसन्न रहता है । जिस-तिस प्रकार अपने भी भागो को जबर-दस्ती देकर उनको प्रसन्न रखना चाहता है । इस प्रकार भोग इच्छा की भी गौणता रहती ।

प्र० १८—जब मोह इच्छा प्रबल हो तब रोगाभाव इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—तथा अपने शरीरादि में रोगादि कष्ट आने पर भी पुत्रादि के लिए परदेश जाता है । वहा क्षुधा-तृषा, शीत-उष्णादि की अनेक बाधाएं सहन करता है । स्वयं भूखा रहकर भी उनको भोजनादि खिलाता है । स्वयं शीतकाल में भीगे तथा कठोर बिस्तर पर सोकर भी उनको सूखे तथा कोमल बिस्तरों पर सुलाता है, इस प्रकार रोगाभाव इच्छा गौण रहती है । इस प्रकार मोह-इच्छा की प्रबलता रहती है ।

प्र० १९—जब कषाय इच्छा प्रबल हो तब मोह इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—कषाय इच्छा की प्रबलता होने पर पितादि, गुरुजनो को मारने लग जाता है, कुवचन कहता है, नीचे गिरा देता है, पुत्रादि को मारता, लडता है, बेच देता है, अपमानादि करता है, अपने शरीर को भी कष्ट देकर धनादि का संग्रह करता है तथा कषाय के वशीभूत

होकर प्राण तक भी दे देता है इत्यादि इस प्रकार कषाय इच्छा प्रबल होने पर मोह इच्छा गौण हो जाती है ।

प्र० २०—क्रोध कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर—क्रोध कषाय प्रबल होने पर अच्छा भोजनादि नहीं खाता, वस्त्राभरणादि नहीं पहिनता है, सुगन्ध आदि नहीं सूँघता, सुन्दर वर्णादि नहीं देखता, सुरीला रागरागणी आदि नहीं सुनता, इत्यादि विषय-सामग्री को बिगाड़ देता है, नष्ट कर देता है अन्य का घात कर देता है तथा नहीं बोलने योग्य निन्द्य वाक्य बोल देता है इत्यादि कार्य करता है ।

प्र० २१—मान कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर—मान कषाय तीव्र होने पर स्वयं उच्च होने का, दूसरो को नीचा दिखाने का सदा उपाय करता रहता है । स्वयं अच्छा भोजन लेने पर, सुन्दर वस्त्र पहिनने पर, सुगन्ध सूँघने पर, अच्छा वर्ण देखने पर मधुर राग सुनने पर अपने उपयोग को उसमे नहीं लगाता, उसका कभी चितवन नहीं करता तथा अपने को वे चीजे कभी प्रिय नहीं लगती, मात्र विवाहादि अवसरो के समय अपने को ऊँचा रखने के लिए अनेक उपाय करता है ।

प्र० २२—लोभ कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर—लोभ कषाय तीव्र होने पर अच्छा भोजन नहीं खाता है, अच्छे वस्त्रादि नहीं पहिनता, सुगन्ध विलेपनादि नहीं लगाता, सुन्दर रूप को नहीं देखता तथा अच्छा राग नहीं सुनता, मात्र धनादि सामग्री उत्पन्न करने की बुद्धि रहती है । कजूस जैसा स्वभाव होता है ।

प्र० २३—माया कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर—माया कषाय तीव्र होने पर अच्छा नहीं खाता, वस्त्रादि अच्छे नहीं पहिनता, सुगन्धित वस्तुओ को नहीं सूँघता, रूपादिक नहीं देखता, सुन्दर रागादिक नहीं सुनता । मात्र अनेक प्रकार के

छल-कपटादि मायाचार का व्यवहार करके दूसरो को ठगने का कार्य किया करता है ।

प्र० २४-कोधादि कषाय इच्छा प्रबल होने पर भोग इच्छा और रोगाभाव इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—इत्यादि प्रकार से क्रोध-मान-लोभ कषाय की प्रबलता होने पर भोग-इच्छा गौण हो जाती है तथा रोगाभाव इच्छा मन्द हो जाती है ।

प्र० २५- जब भोग इच्छा प्रबल हो तब मोह इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—जब भोग इच्छा प्रबल हो जाती है तब अपने पिता आदि को अच्छा नहीं खिलाता, सुन्दर वस्त्रादि नहीं पहिनाता इत्यादि । स्वयं ही अच्छी-अच्छी मिठाइया आदि खाने की इच्छा करता है, खाता है, सुन्दर पतले बहुमूल्य वस्त्रादि पहिनता है और घरके कुटुम्बी आदि भूखे मरते रहते हैं, इस प्रकार भोग इच्छा प्रबल होने पर मोह-इच्छा गौण हो जाती है ।

प्र० २६- जब भोगइच्छा प्रबल हो तब कषाय इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—अच्छा खाने-पहिनने, सू घने, देखने, सुनने की इच्छा करता है, वहा कोई बुरा कहे तो भी क्रोध नहीं करता, अपना मानादि न करे तो भी नहीं गिनता, अनेक प्रकार की मायाचारी करके भी दु खो को भोगकर कार्य सिद्ध करना चाहता है तथा भोग इच्छा की प्राप्ति के लिये धनादि भी खर्च करता है । इस प्रकार भोग इच्छा प्रबल होने पर कषाय इच्छा गौण हो जाती है ।

प्र० २७- जब भोग इच्छा प्रबल हो तब रोगाभाव इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—अच्छा खाना, पहिनना, सू घना, देखना, सुनना आदि कार्य होने पर भी रोगादि का होना तथा भूख-प्यासादि कार्य प्रत्यक्ष

उत्पन्न होते जानकर भी उस विषय-सामग्री से अरुचि नहीं होती, जिस प्रकार स्पर्शन इन्द्रिय की प्रबल इच्छा के वश होकर हाथी गड्ढे में गिरता है, रसनाइन्द्रिय के वश में होकर मछली जाल में फस मरती है, घ्राण इन्द्रिय के वश में होकर भ्रमर कमल में जीवन दे देता है, मृग कर्णइन्द्रिय के वश में होकर शिकार की गोली से मरता है तथा नेत्रइन्द्रिय के वश होकर पतंगा दीपक में प्राण दे देता है। इस प्रकार भोग इच्छा के प्रबल होने पर रोगाभाव इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० २८—जब रोगाभाव इच्छा प्रबल हो तब मोह इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—जब रोगाभाव इच्छा प्रबल रहती है तब कुटुम्बादि को छोड़ देता है, मन्दिर मकान, पुत्रादि को भी बेच देता है, इत्यादि रोग की तीव्रता होने पर मोह पैदा होने से कुटुम्बादि सम्बन्धियों से भी मोहका सम्बन्ध छूट जाता है तथा अन्यथा परिणमन करता है। इस प्रकार रोगाभाव इच्छा प्रबल होने पर मोह इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० २९—जब रोगाभाव इच्छा प्रबल हो तब कषाय इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—कोई बुरा कहे तथा अपमानादि करे तब भी अनेक छल-पाखण्ड कर व धन खर्च करके भी अपने रोग को मिटाना चाहता है। इस प्रकार रोगाभाव इच्छा के प्रबल होने पर कषाय इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० ३०—जब रोगाभाव इच्छा प्रबल हो तब भोगइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—तथा भूख-तृषा, शीत-गर्मी लगे व पीडा इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाए तब अच्छा-बुरा, मीठा-खारा और खाद्य-अखाद्य का भी विचार नहीं करता, खराब अखाद्य वस्तु को खाकर भी रोग मिटाना चाहता है, जैसे पत्थर व वाडके काटादि खाकर भी भूख

मिटाना चाहता है, इस प्रकार रोगाभाव इच्छा होने पर भोग इच्छा गौण हो जाती है ।

प्र० ३१—अज्ञानी के इच्छा नामक रोग सदा क्यों बना रहता है ?

उत्तर—एक काल में एक इच्छा की मुख्यता रहती है और अन्य इच्छा की गौणता हो जाती है, परन्तु मूल में इच्छा नामक रोग सदा बना रहता है ।

प्र० ३२—संसार में दुःखी होता हुआ जीव क्यों भ्रमण करता है ?

उत्तर—जिनको नवीन-नवीन विषयो की इच्छा है उन्हें दुःख स्वभाव ही से होता है यदि दुःख मिट गया हो तो वह नवीन विषयो के लिए व्यापार किसलिये करे ? यही बात श्री प्रवचनसार गाथा ६४ में कही है कि —

भावार्थ — जिस प्रकार रोगी को एक औषधि के खाने से आराम हो जाना है तो वह दूसरी औषधि का सेवन किसलिए करे ? उसी प्रकार एक विषय सामग्री के प्राप्त होने पर ही दुःख मिट जाये तो वह दूसरी विषय सामग्री किसलिए चाहे ? क्योंकि इच्छा तो रोग है और इच्छा मिटाने का इलाज विषय सामग्री है । अब एक प्रकार की विषय सामग्री की प्राप्ति से एक प्रकार की इच्छा रुक जाती है परन्तु तृष्णा इच्छा नामक रोग तो अंतर में से नहीं मिटता है, इसलिये दूसरी अन्य प्रकार की इच्छा और उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार सामग्री मिलाते-मिलाते आयुपूर्ण हो जाती है और इच्छा तो बराबर तब तक निरन्तर बनी रहती है । उसके बाद अन्य पर्याय प्राप्त करते हैं तब उस पर्याय सम्बन्धी वहा के कार्यों की नवीन इच्छा उत्पन्न होती है । इस प्रकार संसार में दुःखी होता हुआ भ्रमण करता है ।

प्र० ३३—दुःख का मूल कारण कौन है ?

उत्तर—अनिष्ट सामग्री के संयोग के कारण क और इष्ट सामग्री के वियोग के कारणों को विघ्न मानते हो, परन्तु आपने कुछ विचार

भी किया है ? यदि यही विघ्न हो तो मुनि आदि त्यागी तपस्वी तो इन कार्यों को अगीकार करते हैं, इसलिये विघ्न का मूल कारण अज्ञान-रागादि हैं, इस प्रकार दुःख व विघ्न का स्वरूप जानो ।

प्र० ३४—इच्छा के अभाव का क्या उपाय है ?

उत्तर—उसका इलाज सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य है ।

प्र० ३५—आपने इच्छा के अभाव का उपाय सम्यग्दर्शनादि बताया है उसकी प्राप्ति कैसे हो ?

उत्तर—(१) केवलज्ञानी के केवलज्ञान को मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है । (२) निज आत्मा से परद्रव्यों का सर्वथा सग्वन्ध नहीं है—ऐसा मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है । (३) जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा माने—जाने तो इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है । (४) मुझ आत्मा जायक और लोकालोक व्यवहार से ज्ञेय है—ऐसा मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है । (५) पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित होने से क्रोधादिकषाये होती है जब तत्त्व ज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट न हो तब चारों प्रकार की इच्छा का अभाव होकर स्वयमेव ही धर्म की प्राप्ति हो जाती है ।

पचास प्रश्नोत्तरों के रूप में

“समाधि-मरण का स्वरूप”

प्र० १- इस समाधिमरण का स्वरूप किस शास्त्र में से लिया है ?

उत्तर—आचार्य कल्प श्री प० टोडरमल जी के सहपाठी और धर्म प्रभावना में उत्साह प्रेरक श्रीयुक्त ब्र० रायमलजी कृत “ज्ञानानन्द निर्भर निजरस श्रावकचार” नामक ग्रंथ (पृ० २२४ से २४३) में से

यह अधिकार अति उपयोगी जानकर धर्म-जिज्ञासुओं के लिये यहाँ दिया गया ।

प्र० २- यह समाधिमरण किसने बनाया है ?

उत्तर—श्री 'बुधजन' जी के शब्दों में—“यह समाधि-मरण स्वरूप प० श्री टोडरमल जी के सुपुत्र श्री प० गुमानीरामजी कृत ही है ।”

प्र० ३- समाधिमरण किसे कहते हैं ?

उत्तर—हे भव्य ! तू सुन ! समाधि नाम नि कषाय का है, गान्त परिणामो का है, कषाय रहित शांत परिणामो से मरण होना समाधि-मरण है। सक्षिप्त रूप से समाधिमरण का यही वर्णन है विशेष रूप से कथन आगे किया जा रहा है।

प्र० ४- सम्यग्ज्ञानी क्या इच्छा करता है ?

उत्तर—सम्यक्ज्ञानी पुरुष का यह सहज स्वभाव ही है कि वह समाधिमरण ही की इच्छा करता है, उसकी हमेसा यही भावना रहती है, अन्त में मरण समय निकट आने पर वह इस प्रकार सावधान होता है जिस प्रकार वह सोया हुआ सिंह सावधान होता है जिसको कोई पुरुष ललकारे कि हे सिंह! तुम्हारे पर बैरियों की फौज आक्रमण कर रही है, तुम पुरुषार्थ करो और गुफा से बाहर निकलो। जब तक बैरियों का समूह दूर है तब तक तुम तैयार हो जाओ बैरियों की फौज को जीत लो। महान् पुरुषों की यही रीति है कि वे शत्रु के जाग्रत होने से पहले तैयार होते हैं।

उस पुरुष के ऐसे वचन सुनकर शार्दूल तत्क्षण ही उठा और उस ने ऐसी गर्जना की कि मानो आषाढ मास में इन्द्र ने ही गर्जना की हो ! सिंह की गर्जना सुनकर बैरियों की फौज में जो हाथी घोड़ा आदि थे वे सब कम्पायमान हो गये और वे सिंह को जीतने में समर्थ नहीं हुए। हाथियों ने आगे कदम रखना बन्द कर दिया उनके हृदय में सिंह के आकार की छाप पड़ गई है इसलिये वे धैर्य नहीं धारण कर रहे, क्षण-क्षण में निहार करते हैं, उनसे सिंह के पराक्रम का भुक्

बला नहीं किया जा सकता । (इस उदाहरण को अब सम्यक्ज्ञानी की अपेक्षा से बताते हैं) सम्यक्ज्ञानी पुरुष तो शार्दूलसिंह है और अष्ट-कर्म बैरी है । सम्यक्ज्ञानीरूपी सिंह मरण के समय इन अष्टकर्मरूपी बैरियो को जीतने के लिए विशेष रूप से उद्यम करता है । मृत्यु को निकट जानकर सम्यक्ज्ञानी पुरुष सिंह की तरह सावधान होता है और कायरपने को दूर ही से छोड़ देता है ।

प्र० ५- सम्यग्दृष्टि कैसा होता है और कैसा नहीं होता है ?

उत्तर-उसके हृदय में आत्मा का स्वरूप दैदीप्यमान प्रकट रूप से प्रतिभासता है । वह ज्ञान ज्योति को लिये आनन्दरस से परिपूर्ण है ।

वह अपने को साक्षात् पुरुषाकार अमूर्तिक, चैतन्य धातुका पिंड, अनन्त गुणों से युक्त चैतन्यदेव ही जानता है । उसके अतिशय से ही वह परद्रव्य के प्रति रचमात्र भी रागी नहीं होता है ।

प्र० ६- सम्यग्दृष्टि रागी क्यों नहीं होता है ?

उत्तर-वह अपने निज-स्वरूप को वीतराग ज्ञाता-दृष्टा, परद्रव्य से भिन्न, शाश्वत और अविनाशी जानता है और परद्रव्य को क्षण-भंगुर, अशाश्वत, अपने स्वभाव से भली भाँति भिन्न जानता है । इसलिये सम्यक्ज्ञानी रागी नहीं होता है और वह मरण से कैसे डरे ? न डरे ।

प्र० ७-ज्ञानी पुरुष मरण के समय किस प्रकार की भावना व विचार करता है ?

उत्तर-"मुझे ऐसे चिन्ह दिखाई देने लगे हैं जिनसे मालूम होता है कि अब इस शरीर की आयु थोड़ी है इसलिये मुझे सावधान होना उचित है इसमें (देर) विलम्ब करना उचित नहीं है । जैसे योद्धा युद्ध की भेरी सुनने के बाद बैरियो पर आक्रमण करने में क्षण मात्र की भी देर नहीं करता है और उसके वीर रस प्रकट होने लगता है कि "कब बैरियो से मुकाबला करूँ और कब उनको जीतूँ ।"

प्र० ८—काल को जीतने की इच्छा वाला सम्यग्दृष्टि क्या विचारता है ?

उत्तर—हे कुटुम्ब परिवार वालो! सुनो! देखो! इस पुद्गल पर्याय का चरित्र ! यह देखते देखते उत्पन्न होती है और देखते ही नष्ट हो जाती है सो मैं तो पहले ही विनाशीक स्वभाव जानता था । अब इसके नाश का समय आ गया है । इस शरीर की आयु तुच्छ रह गई है और उसमे भी प्रति समय क्षण-क्षण कम हुआ जाता है किन्तु मैं ज्ञाता-दृष्टा हुआ इसके (शरीरका) नाश को देख रहा हूँ । मैं इसका पडौसी हूँ न कि कर्त्ता या स्वामी । मैं देखता हूँ कि इस शरीर की आयु कैसे पूर्ण होती है और कैसे इसका (शरीरका) नाश होता है यही मैं तमाशगीर की तरह देख रहा हूँ । अनन्त पुद्गल परमाणु इकट्ठे होकर शरीर की पर्याय रूप परिणमते हैं, शरीर कोई भिन्न पदार्थ नहीं है और मेरा स्वरूप भी नहीं है । मेरा स्वरूप तो एक चेतन-स्वभाव शाश्वत अविनाशी है उसकी महिमा अद्भुत है सो मैं किससे कहूँ ?

प्र० ९—पुद्गल पर्याय का महात्म्य क्या है ?

उत्तर—देखो ! इस पुद्गल पर्याय का महात्म्य । अनन्त परमाणुओं का परिणमन इतने दिन एक-सा रहा, यह बड़ा आश्चर्य है। अब वे ही पुद्गल के विभिन्न परमाणु अन्य अन्य रूप परिणमन करने लगे हैं तो इसमे आश्चर्य क्या । लाखों मनुष्य इकट्ठे होकर मिलने से 'मेला' होता है । यह मेला पर्याय शाश्वत रहने लगे तो आश्चर्य समझना चाहिए । इतनेदिन तक लाखों मनुष्यों का परिणमन एक-सा रहा, ऐसा विचार करने वाला मनुष्य आश्चर्य मानता है । तत्पश्चात् वे लाखों मनुष्य भिन्न-भिन्न दशों दिशाओं में चले जाते हैं तब 'मेला' नाश हो जाता है । यह तो इन पुरुषों का अपना-अपना परिणमन ही है जोकि इनका स्वभाव है इसमे आश्चर्य क्या ? इसी प्रकार शरीर का परिणमन नाश रूप होता है यह स्थिर कैसे रहेगा ?

प्र० ११—शरीर पर्याय को रखने में कोई समर्थ न होने का क्या कारण है ?

उत्तर—तीन लोक में जितने पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने स्वभाव रूप परिणमन करते हैं। कोई किसी का कर्त्ता नहीं है, कोई किसी का भोक्ता नहीं, स्वयं ही उत्पन्न होता है स्वयं ही नष्ट होता है, स्वयं ही मिलता है, स्वयं ही बिछुड़ता है, स्वयं ही गलता है तो मैं इस शरीर का कर्त्ता और भोक्ता कैसे ? और मेरे रखने से यह (शरीर) कैसे रहे ? और उसी प्रकार मेरे दूर करने से यह दूर कैसे हो जाय ? मेरा इसके प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं है, पहले झूठा ही अपना कर्त्तव्य मानता था। मैं तो अनादिकाल से आकुल-व्याकुल होकर महादुःख पा रहा था। सो यह बात न्याय युक्त ही है। जिसका किया कुछ नहीं होता, वह परद्रव्य का कर्त्ता होकर उसे अपने स्वभाव के अनुसार परिणमाना चाहे तो वह दुःख पावे ही पावे।

प्र० ११—सम्यग्दृष्टि किसका कर्त्ता और भोक्ता है ?

उत्तर—मैं तो इस ज्ञायकस्वभाव ही का कर्त्ता और भोक्ता हूँ और उसी का वेदन और अनुभव करता हूँ। इस शरीर के जाने से मेरा कुछ भी विगाड नहीं और इसके रहने से कुछ भी सुधार नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष ही काष्ठ या पाषाण की तरह अचेतन द्रव्य है। काष्ठ, पाषाण और शरीर में कोई भेद नहीं है। इस शरीर में एक जानने का ही चमत्कार है सो वह मेरा स्वभाव है न कि शरीरका। शरीर तो प्रत्यक्ष ही मुर्दा है। मेरे निकल जाने पर इसे जला देते हैं। मेरे ही मुलाहिजे से इस शरीरका जगत द्वारा आदर किया जाता है।

प्र० १२—जगत को क्या खबर नहीं है कि आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न हैं ?

उत्तर—आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न ही है। इसीसे जगतके लोग भ्रम के कारण ही, इस शरीरको, अपना जानकर, ममत्व करते हैं और इसको नष्ट होते देखकर दुखी होते हैं और शोक करते हैं। कि “हाय! हाय! मेरा पुत्र, तू कहाँ गया ? हाय! हाय! मेरा पति तू कहाँ गया ? हाय! हाय! मेरी पुत्री तू कहाँ गई ? हाय पिता ! तू कहाँ गया ? हाय इष्ट भ्राता ! तू कहाँ गया ?” इस प्रकार

अज्ञानी पुरुष पर्यायों को नष्ट होते देखकर दुःखी होते हैं और महा-दुःख एवं क्लेश पाते हैं ।

प्र० १३—ज्ञानी पुरुष क्या विचार करते हैं ?

उत्तर—किसका पुत्र ? किसकी पुत्री ? किसका पति ? किसकी स्त्री ? किसकी माता ? किसका पिता ? किसकी हवेली ? किसका मन्दिर ? किसका माल ? किसका आभूषण और किमका वस्त्र ? ये सब सामग्री झूठी, विनाशीक है अतः ये सब उसी प्रकारसे अस्थिर हैं जैसे स्वप्न में दिखा हुआ राज्य, इन्द्रजाल द्वारा बनाया हुआ तमाशा, भूतोंकी माया या आकाश में बादलों की गोभा । ये सब वस्तुयें देखने में रमणीक लगती हैं किन्तु इनका स्वभाव विचारे तो कुछ भी नहीं है । यदि वस्तु होती तो स्थिर रहती और नष्ट क्यों होती ? ऐसा जानकर मैं त्रिलोक में जितनी पुद्गल की पर्यायें हैं उन सबसे ममत्व छोड़ता हूँ और अपने शरीर से भी ममत्व छोड़ता हूँ इसीसे इसके नष्ट होने से मेरे परिणामों में अशमात्र भी खेद नहीं है । ये शरीरादि सामग्री चाहे जैसे परिणाम मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है । चाहे ये कम हो, चाहे भोगों, चाहे नष्ट हो जावों मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।

प्र० १४—मोह का स्वभाव कैसा है ?

उत्तर—अहो देखो ! मोह का स्वभाव ? ये सब सामग्री प्रत्यक्ष ही परवस्तु है और उसमें भी ये विनाशीक है और इस भव और परभव में दुःखदाई है तो भी यह मसारी जीव इन्हे अपना समझकर रखना चाहता है ।

प्र० १५—ऐसा चरित्र देखकर ही ज्ञान-दृष्टि वाला जीव क्या जानता है ?

उत्तर—मेरा केवल 'ज्ञान' ही अपना स्वभाव है और उसे ही मैं देखता हूँ और मृत्यु का आगमन देखकर नहीं डरता हूँ । काल तो इस शरीरका ग्राहक है मेरा ग्राहक नहीं है । जैसे मक्खी, मिठाई आदि स्वादिष्ट वस्तुओं पर ही जाकर बैठती है किन्तु अग्नि पर कदाचित् भी नहीं बैठती है उसी प्रकार काल (मृत्यु) भी दौड़-दौड़कर शरीर

ही को पकड़ता है। और मेरे से दूर ही भागता है। मैं तो अनादि-काल से अविनाशी चतन्यदेव त्रिलोक द्वारा पूज्य पदार्थ हूँ। उस पर काल का जोर नहीं चलता। इस प्रकार कौन मरता है? और कौन जन्म लेता है? और कौन मृत्यु का भय करे? मुझे तो मृत्यु दीखती नहीं है। जो मरता है वह तो पहले ही मरा हुआ था और जीता है वह पहले ही जीता था। जो मरता है वह जीतानही और जो जीता है वह मरता नहीं है। किन्तु मोह दृष्टि के कारण विपरीत मालूम होता था अब मेरा मोहकर्म नष्ट हो गया इसलिये जैसा वस्तु का स्वभाव है वैसा ही मुझे दृष्टिगोचर होता है उसमें जन्म, मरण, दुःख, सुख दिखाई नहीं पड़ते। अतः मैं अब किस बात का सोच-विचार करूँ? मैं तो चैतन्यशक्ति वाला शाश्वत बना रहनेवाला हूँ उसका अवलोकन करते हुये दुःख का अनुभव कैसे हो?

प्र० १६—मैं कैसा हूँ?

उत्तर—मैं ज्ञानानन्द, स्वात्म रससे परिपूर्ण हूँ, और शुद्धोपयोगी हुआ ज्ञानरस का आचरण करता हूँ और ज्ञानाजलि द्वारा उस अमृत का पान करता हूँ। वह अमृत मेरे स्वभाव से उत्पन्न हुआ है इसलिये वह स्वाधीन है पराधीन नहीं है इसलिये मुझे उसके आस्वादन में खेद नहीं है।

प्र० १७—और मैं कैसा हूँ?

उत्तर—मैं अपने निजस्वभाव में स्थित हूँ, अकप हूँ। मैं ज्ञानामृत से परिपूर्ण हूँ। मैं दैदीप्यमान ज्ञानज्योति युक्त अपने ही निज स्वभाव में स्थित हूँ।

प्र० १८—चैतन्य स्वरूप की महिमा क्या है?

उत्तर—देखो! इस अद्भुत चैतन्य स्वरूप की महिमा! उसके ज्ञानस्वभाव में समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव झलकते हैं किन्तु वह स्वयं ज्ञेयरूप नहीं परिणमता है और उस झलकने में (जानने में) विकल्प का अंश भी नहीं है इसीलिये उसके निविकल्प, अतीन्द्रिय, अनुपम, बाधारहित और अखंड सुख उत्पन्न होता है। ऐसा सुख ससार में

नहीं है, ससार में तो दुःख ही है। अज्ञानी जीव इस दुःख में भी सुख का अनुमान करते हैं किन्तु वह सच्चा सुख नहीं है।

प्र० १९—और मैं कैसा हूँ ?

उत्तर—मैं ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण हूँ और उन गुणों से एकमय हुआ अनन्त गुणों की खान बन गया हूँ।

प्र० २०—मेरा चैतन्य स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—सर्वांग में चैतन्य ही चैतन्य उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार नमक की डली (टुकड़े में) में सर्वत्र क्षार रस है या जिस प्रकार शक्कर की डली में सर्वत्र अमृतरस व्याप्त हो रहा है। वह शक्कर की डली पूर्णतः अमृतमय पिंड ही है वैसे ही मैं एक ज्ञानमय पिंड बना हुआ हूँ। मेरे सर्वांग में ज्ञान ही ज्ञान है। जितना-जितना शरीर का आकार है उतना-उतना ही आकार के निमित्त मेरा आकार है किन्तु अवगाहन शक्ति द्वारा मेरा इतना बड़ा आकार इतने से आकार में समा जाता है। समा जाने में असंख्यात प्रदेश भिन्न-भिन्न रहते हैं। उनमें सकोच विस्तार की शक्ति है ऐसा सर्वज्ञ देव ने देखा है।

प्र० २१—और मेरा निजस्वरूप कैसा है ?

उत्तर—वह अनन्त आत्मीक सुख का भोक्ता है तथा एक सुख की ही मूर्ति है, वह चैतन्यमय पुरुषाकार है। जैसे मिट्टी के साँचे में एक शुद्ध चाँदी की प्रतिमा बनाई जाय वैसे ही इस शरीर के साँचे में आत्मा को जानना चाहिये। मिट्टी का साँचा समय पाकर गल जाता है, जल जाता है, टूट जाता है किन्तु चाँदी की प्रतिमा ज्यों की त्यों बनी रहे वह आवरण रहित होकर सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो जाय। साँचे के नाश होने से प्रतिमा का नाश नहीं होता है वस्तु पहले से ही दो थी इसलिये एक के नाश होने से दूसरे का नाश कैसे हो? यह तो सर्वमान्य नियम है। वैसे ही समय पाकर शरीर नष्ट होता है तो होओ मेरे स्वभाव का नाश होता नहीं, मैं किस बात का सोच करूँ ?

प्र० २२—मेरा चैतन्यरूप कैसा है ?

उत्तर—वह आकाश के समान निर्मल है, आकाश में किसी प्रकार

का विकार नहीं है। बिल्कुल वह स्वच्छ निर्मल है। यदि कोई आकाश को तलवार से तोड़ना, काटना चाहे या अग्नि से जलाना चाहे या पानी से गलाना चाहे तो वह आकाश कैसे तोड़ा, काटा जावे या जले या गले ? उसका बिल्कुल नाश नहीं हो सकता। यदि कोई आकाश को पकड़ना या तोड़ना चाहे तो वह पकड़ा या तोड़ा नहीं जा सकता। वैसे ही मैं आकाश की तरह अमूर्तिक, निर्विकार, पूर्ण निर्मलता का पिण्ड हूँ। मेरा नाश किस प्रकार हो ? किसी भी प्रकार नहीं हो, यह नियम है। यदि आकाश का नाश हो तो मेरा भी हो, ऐसा जानना। किन्तु आकाश के और मेरे स्वभाव में इतना विशेष अन्तर है कि आकाश तो जड़ अमूर्तिक पदार्थ है और मैं चैतन्य अमूर्तिक पदार्थ हूँ मैं चैतन्य हूँ इसीलिये ऐसा विचार करता हूँ कि आकाश जड़ है और मैं चैतन्य। मेरे द्वारा जानना प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है और आकाश नहीं जानता है।

प्र० २३—और मैं कैसा हूँ ?

उत्तर—मैं दर्पण की तरह स्वच्छ शक्ति का ही पिण्ड हूँ। दर्पण की स्वच्छ शक्ति में घट-पटादि पदार्थ स्वयमेव ही झलकते हैं। दर्पण में स्वच्छ शक्ति व्याप्त रहती है वैसे ही मैं स्वच्छ शक्तिमय हूँ। मेरी स्वच्छ शक्ति में (कर्म रहित अवस्था में) समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव ही झलकते हैं ऐसी स्वच्छ शक्ति मेरे स्वभाव में विद्यमान है। मेरे सर्वांग में एक स्वच्छता भरी हुई है मानो ये ज्ञेय पदार्थ भिन्न हैं। यह स्वच्छता शक्ति का स्वभाव ही है कि उसमें अन्य पदार्थों का दर्शन होता है।

प्र० २४—और मैं कैसा हूँ ?

उत्तर—मैं अत्यन्त अतिशय निर्मल, साक्षात् प्रकट ज्ञान का पुञ्ज बना हुआ हूँ और अनन्त गान्तरिक से परिपूर्ण और एक अभेद निराकुलता से व्याप्त हूँ।

प्र० २५—और मेरा चैतन्यस्वरूप कैसा है ?

उत्तर—वह अपनी अनन्त महिमा से युक्त है, वह किसी की

सहायता नहीं चाहता है, वह असहाय स्वभाव को धारण किये हुये है। वह स्वयम्भू है, वह एक अखण्ड ज्ञान मूर्ति, पर द्रव्य से भिन्न, शाश्वत, अविनाशी और परमदेव है और इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट देव किसे माने ? यदि त्रिकाल में कोई हो तो माने ? नहीं है।

प्र० २६—मेरा ज्ञान स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—वह अपने स्वभाव को छोड़कर अन्यरूप नहीं परिणमता है। वह अपने स्वभाव की मर्यादा उसी प्रकार नहीं छोड़ता जिस प्रकार जल से परिपूर्ण समुद्र सीमा को छोड़कर अन्यत्र गमन नहीं करता। समुद्र अपनी लहरों की सीमा में भ्रमण करता है। उसी प्रकार ज्ञानरूपी समुद्र अपनी शुद्ध परिणतिरूप तरगावलि युक्त अपने सहज स्वभाव में भ्रमण करता है। ऐसी अद्भुत महिमा युक्त मेरा ज्ञान स्वरूप परमदेव, अनादिकाल से इस शरीर से भिन्न है।

प्र० २७—आत्मा का शरीर के साथ कैसा सम्बन्ध है ?

उत्तर—मेरे और इस शरीर के पडौसी के समान संयोग है। मेरा स्वभाव अन्य प्रकार का है और इसका स्वाभाव अन्य प्रकार का है, मेरा परिणमन और इसका परिणमन भिन्न प्रकार का है। इसलिये यदि यह शरीर अभी गलन रूप परिणमता है तो मैं किस बात का शोक करूँ और किसका दुःख करूँ ? मैं तो तमाशगीर पडौसी की तरह इसका गलन देख रहा हूँ। मेरे इस शरीर से राग-द्वेष नहीं है। राग-द्वेष इस जगत में निश्चय समझे जाते हैं और ये परलोक में भी दुःख-दाई हैं। ये राग-द्वेष-मोह ही से उत्पन्न होते हैं। जिसके मोह नष्ट हो गया उसके राग-द्वेष नष्ट हो गये। मोह के द्वारा ही परद्रव्य में अहंकार और ममकार उत्पन्न होते हैं। यह द्रव्य है सो मैं हूँ ऐसा भाव तो अहंकार है और यह द्रव्य मेरा है ऐसा भाव ममकार है। पर सामग्री चाहने पर मिलती नहीं और छोड़ी जाती नहीं तब यह आत्मा खेद खिन्न होता है। यदि सर्व सामग्री को दूसरों की जाने तो इसके (सामग्री) आने और जाने का विकल्प क्यों उत्पन्न हो ? मेरे तो मोह पहले ही नष्ट हो गया है और मैंने शरीरादिक सामग्री को पहले ही पराई जान ली है इसलिये अब इस शरीर के जाने से किस

बात का विकल्प उठे? कदाचित् नहीं उठे। मैंने विकल्प उत्पन्न कराने वाले व्यक्ति का (मोहवत) पहले ही भली भाँति नाश कर दिया इसलिए मैं निर्विकल्प आनन्दमय निज स्वरूप को बार-बार सम्हालता एवं याद करता हुआ अपने स्वभाव में स्थित हूँ ।”

प्र० २८—कोई चतुर सम्यग्दृष्टि को इस प्रकार समझता है कि यह शरीर तो तुम्हारा नहीं है किन्तु इस शरीर के निमित्त से मनुष्य पर्याय में शुद्धोपयोग का साधन भली प्रकार होता था उसका उपकार जानकर इसे रखने का उद्यम करना उचित है इसमें हानि नहीं है ?

उत्तर—‘हे भाई ! तुमने यह बात कही सो तो हम भी जानते हैं। मनुष्य पर्याय में शुद्धोपयोग का साधन, ज्ञानाभ्यास का साधन, और ज्ञान वैराग्य की वृद्धि आदि अनेक गुणों की प्राप्ति होती है जो कि अन्य पर्याय में दुर्लभ है, किन्तु अपने सयमादि गुण रहते हुये शरीर रहे तो रहो वह तो ठीक ही है हमारे से कोई बैर तो है नहीं और यदि शरीर न रहे तो अपने सयमादि गुण निर्विघ्न रूप से रखना और शरीर से ममत्व छोड़ना चाहिये। हमें शरीर के लिए सयमादि गुण कदाचित् भी नहीं खोने हैं।

प्र० २९—सम्यग्दृष्टि ने क्या दृष्टान्त दिया है ?

उत्तर — जैसे कोई रत्नों का लोभी पुरुष परदेश से रत्नद्वीप में फूस की झोपड़ी में रत्न ला लाकर इकट्ठा करता है। यदि उम झोपड़ी में अग्नि लग जावे तो वह विचक्षण पुरुष ऐसा विचार करे कि किसी प्रकार इस अग्नि का निवारण करना चाहिए रत्नों सहित इस झोपड़ी को बचाना चाहिए। यह झोपड़ी रहेगी तो इसके सहारे बहुत रत्न और इकट्ठे कर लूँगा। इस प्रकार वह पुरुष अग्नि को बुझाती हुई जाने तो रत्न रखकर उसे बुझावे और यदि वह समझे कि रत्न जाने से झोपड़ी रहे तो यह कदाचित् झोपड़ी रखने का उपाय नहीं करता। उस अवस्था में वह झोपड़ी को जलने दे और सम्पूर्ण रत्नों को लेकर अपने देश आ जावे। तत्पश्चात् वह एक दो रत्न बेचकर

अनेक तरह की विभूति भोगता है और अनेक प्रकार के स्वर्ण के महल, मकानादि व वागादिक बनाता है और राग, रग, सुगन्ध आदि से युक्त क्रीड़ा करता हुआ अत्यन्त सुख भोगता है ।

प्र० ३०—भेदविज्ञानी पुरुष कैसा है ?

उत्तर—रत्नों के लोभी उक्त पुरुष की तरह भेदविज्ञानी पुरुष है । वह शरीर के लिये सयमादि गुणों में अतिचार नहीं लगाता और ऐसा विचार करता है कि “सयमादि गुण रहेगे तो मैं विदेह क्षेत्र में देव बनकर जाऊंगा और सीमधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकरों और अनेक केवलियों एवं मुनियों के दर्शन करूंगा और अनेक जन्मों के सचित पाप नष्ट करूंगा और मनुष्य पर्याय में अनेक प्रकार के सयम धारणा करूंगा । मैं श्री तीर्थंकर केवली भगवान के चरण कमल में क्षायिक सम्यक्त्व की साधना करूंगा और अनेक प्रकार के मनवाछित प्रश्न कर तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप जानूंगा । राग-द्वेष ससार के कारण है मैं उनका शीघ्रनापूर्वक आमूल नाश करूंगा । मैं श्री परम दयाल, आनन्दमय केवल लक्ष्मी सयुक्त श्री जिनेन्द्र भगवान की छविका दर्शन रूपी अमृत का निरन्तर लाभ लेऊंगा । तत्पश्चात् मैं शुद्धाचरण द्वारा कर्म-कलक को धोने का प्रयत्न करूंगा । मैं पवित्र होकर श्री तीर्थंकर देव के निकट दीक्षा धारण करूंगा । तत्पश्चात् मैं नाना प्रकार के दुर्द्धर तपश्चरण करूंगा और तत्परिणाम स्वरूप मेरा शुद्धोपयोग अत्यन्त निर्मल होगा और मैं अपने स्वरूप में लीन होऊंगा । मैं उसके बाद क्षपकश्रेणी के सन्मुख होऊंगा और कर्मरूपी शत्रुओंसे युद्धकर जन्म-जन्म के कर्मों का उन्मूलन करूंगा और केवलज्ञान प्रगट करूंगा और मुझे एक समय में समस्त लोकालोक के त्रिकालीन चराचर पदार्थ दृष्टिगोचर हो जायेंगे । तत्पश्चात् मेरा यह स्वभाव शाश्वत रहेगा । मैं ऐसी केवलज्ञान लक्ष्मी का स्वामी हूँ तब इस शरीर से कैसे ममत्त्व करूँ ?

प्र० ३१—सम्यक्ज्ञानी पुरुष क्या विचार करता है ?

उत्तर—मुझे दोनों ही तरह आनन्द है—शरीर रहेगा तो फिर

शुद्धोपयोगकी आराधना करूंगा और शरीर नहीं रहेगा तो परलोक में जाकर शुद्धोपयोग की आराधना करूंगा। इस प्रकार दोनों ही स्थिति में मेरे शुद्धोपयोग के सेवन में कोई विघ्न नहीं दिखता है इसलिये मेरे परिणामों में सकलेश क्यों उत्पन्न हो।

प्र० ३२—ज्ञानी अपने शुद्ध भावों को कैसा जानता है ?

उत्तर—“मेरे परिणामों में शुद्ध” स्वरूप से अत्यन्त आसक्ति है। उस आसक्ति को छुड़ाने में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, धरुणेंद्र, नरेन्द्र आदि कोई भी समर्थ नहीं है। इस आसक्ति को छुड़ाने में केवल मोह कर्म ही समर्थ है जिसे मैंने पहले ही जीत लिया। इसलिए अब तीन लोक में मेरा कोई शत्रु नहीं रहा और शत्रुओं बिना त्रिकाल-त्रिलोक में दुःख नहीं है इसलिए मरण से मुझे भय कैसे हो ? इस प्रकार मैं आज पूर्णतः निर्भय हुआ हूँ। यह बात अच्छी तरह जाननी चाहिये इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

प्र० ३३—क्या ज्ञानी पुरुष शरीर की स्थिति से परिचित होता है ?

उत्तर—शुद्धोपयोगी पुरुष इस प्रकार शरीर की स्थिति से पूर्णतः परिचित है और ऐसा विचार करने से उसके किसी भी प्रकार की आकुलता नहीं होती है। आकुलता ही ससार का बोज है इस आकुलता से ही ससारकी स्थिति एवं वृद्धि होती है। अनन्तकाल से किए हुये सयमादि गुण आकुलता से इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार अग्नि में रुई नष्ट हो जाती है।

प्र० ३४—सम्यक्दृष्टि को आकुलता क्यों नहीं होती है ?

उत्तर—सम्यक्दृष्टि पुरुष को किसी भी प्रकार की आकुलता नहीं करनी चाहिये और वस्तुतः एक निजस्वरूपका ही बारम्बार विचार करना चाहिए उसीको देखना चाहिये और उसीके गुणों का सस्मरण, चिन्तन निरन्तर करना चाहिए ! उसी में स्थित रहना चाहिए और कदाचित् शुद्ध स्वरूप से चित्त चलायमान हो तो ऐसा विचार करना चाहिये।” यह ससार अनित्य है। इस ससार में कुछ भी सार नहीं है। यदि इसमें कुछ सार होता तो तीर्थंकर देव इसे क्यों छोड़ते ?

प्र० ३५—सम्यग्दृष्टि को किसका शरण है ?

उत्तर—“इसलिये निश्चयत मुझे मेरा स्वरूप ही शरण है और बाह्यत पचपरमेष्ठी, जिनवाणी और रत्नत्रयधर्म शरण है और मुझे इनके अतिरिक्त स्वप्नमे भी और कोई वस्तु शरणरूप नहीं, ऐसा मैंने नियम लिया है”

प्र० ३६—सम्यग्दृष्टि का उपयोग स्व मे ना लगे तो तब वह क्या करता है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि पुरुष ऐसा नियम कर स्वरूप मे उपयोग लगावे और उसमे उपयोग नहीं लगे तो अग्निहृत और सिद्धके स्वरूप का अवलोकन करे और उनके द्रव्य, गुण, पर्याय का विचार करे। ऐसा विचार करते हुये उपयोग निर्मल हो तब फिर उसे (उपयोगको) अपने स्वरूप मे लगावे। अपने स्वरूप जैसा अरिहतो का स्वरूप है और अरिहत सिद्ध का स्वरूप जैसा अपना स्वरूप है। अपने (मेरी आत्मा के) और अग्निहृत-सिद्धो के द्रव्यत्व स्वभाव मे अन्तर नहीं है किन्तु उनके पर्याय स्वभाव मे अन्तर है ही। मैं द्रव्यत्व स्वभाव का ग्राहक हूँ इसलिये अरिहत का ध्यान करते हुए आत्मा का ध्यान भली प्रकार सधता है और आत्मा का ध्यान करते हुए अग्निहृतो का ध्यान भली प्रकार सधता है। अरिहतो और आत्मा के स्वरूप मे अन्तर नहीं है चाहे अरिहत का ध्यान करो या चाहे अत्मा का ध्यान करो दोनों समान है।” ऐसा विचार हुआ सम्यग्दृष्टि पुरुष सावधानीपूर्वक स्वभाव मे स्थित होता है।

प्र० ३७—सम्यग्दृष्टि क्या विचार करता है और कैसे कुटुम्ब, परिवार आदि से ममत्व छुडाता है ?

उत्तर—पहले अपने माता-पिता को समझाता है —अहो! इस शरीरके माता-पिता! आप यह अच्छी तरह जानते हो कि यह शरीर इतने दिनो तक तुम्हारा था अब तुम्हारा नहीं है। अब इसकी आयु पूरी होनेवाली है सो किसी के रखने से वह रखा नहीं जा सकता। इसकी इतनी ही स्थिति है सो अब इससे ममत्व छोडो! अब इससे

ममत्व करने से क्या फायदा ? अब इससे प्रीति करना दुःख ही का कारण है । इन्द्रादिक देवों की शरीर पर्याय भी विनाशीक है । जब मृत्यु समय आवे तब इन्द्रादिक देव भी दुःखी होकर मुह ताकते रह जाते हैं और अन्य देवों के देखते-देखते काल के किकर उन्हें उठा ले जाते हैं, किसीकी यह शक्ति नहीं है कि काल के किकरों से उन्हें क्षणमात्र भी रोक ले । इस प्रकार ये काल के किकर एक-एक करके सबको ले जायेंगे । जो अज्ञान वश होकर काल के अधीन रहेंगे उनकी यही गति होगी । सो तुम मोह के वश होकर इस पराये शरीर से ममत्व करते हो और इसे रखना चाहते हो, तुम्हें मोह के वश होने से ससार का चरित्र झूठा नहीं लगता है । दूसरे का शरीर रखना तो दूर तुम अपना शरीर तो पहले रखो फिर औरों के शरीरों के रखने का उपाय करना । आपकी यह भ्रम बुद्धि है जो व्यर्थ ही दुःख का कारण है किंतु यह प्रत्यक्ष होते हुए भी तुम्हें नहीं दिख रहा है ।

प्र० ३८-ज्ञानी माता-पिता से और क्या कहता है ?

उत्तर—ससार में अब तक काल ने किसको छोड़ा है । और अब किसको छोड़ेगा ? हाय ! हाय ! ! देखो, आश्चर्य की बात कि आप निर्भय होकर बैठे हो, यह आपकी अज्ञानता ही है । आपका क्या होनहार है ? यह मैं नहीं जानता हूँ । इसीलिये आपसे पूछता हूँ कि आप को अपना और परका कुछ ज्ञान भी है । हम कौन हैं ? कहा से आए हैं ? यह पर्याय पूर्ण कर कहा जायेंगे ? पुत्रादि से प्रेम करते हैं सो ये भी कौन हैं ? हमारा पुत्र इतने दिन तक (जन्म लेने से पहले) कहा था जो इसके प्रति हमारी ममत्व बुद्धि हुई और हमें इसके वियोग का शोक हुआ ? इन सब प्रश्नों पर सावधानी पूर्वक विचार करो और भ्रमरूप मत रहो ।

प्र० ३९-ज्ञानी सुखी होने के लिये माता-पिता को क्या बताता है ?

उत्तर—आप अपना कर्तव्य विचारने और करने में सुखी होओगे ।

परका कार्य या अकार्य उसके (परके) हाथ है (आधीन है) उसमे आपका कर्तव्य कुछ भी नहीं है। आप व्यर्थ ही खेद खिन्न हो रहे हैं। आप मोह के वश मे होकर ससार मे क्यों डूबते हैं? ससार मे नरकादि के दुख आप ही को सहने पड़ेंगे, आपके लिये और कोई उन्हे नहीं सहेगा। जैनधर्म का ऐसा उपदेश नहीं है कि पाप कोई करे और उसका फल भोगे दूसरा। अतः मुझे आपके लिये बहुत दया आती है, आप मेरा यह उपदेश ग्रहण करे। मेरा यह उपदेश आपके लिये सुख-दाई है।

प्र० ४०—ज्ञानी माता-पिता से और क्या कहता है ?

उत्तर—मैंने तो यथार्थ जिनधर्म का स्वरूप जान लिया है और आप उससे विमुख हो रहे हैं इसी कारण मोह आपको दुख दे रहा है। मैंने जिन धर्म के प्रताप से सरलतापूर्वक मोह को जीत लिया है। इसे जिनधर्म का ही प्रभाव जानो। इसलिये आपको भी इसका स्वरूप विचारना कार्यकारी है। देखो ! आप प्रत्यक्ष ज्ञाता-दृष्टा आत्मा है और शरीरादिक परवस्तु है। अपना स्वरूप अपने स्वभावरूप सहज ही परिणमता है किसीके रखने से वह (परिणमन) रुकता नहीं है किन्तु भोला जीव भ्रम रखता है आप भ्रम बुद्धि छोड़े और स्व-पर का भेदविज्ञान समझे अपना हित विचार कर कार्य करे। विलक्षण पुरुषोक्ती यही रीति है कि वे अपना हित ही चाहते हैं, वे निष्प्रयोजन एक कदम भी नहीं रखते।

प्र० ४१—ज्ञानी माता-पिता से और फिर क्या कहता है?

उत्तर—आप मुझसे जितना ममत्व करेंगे उतना ज्यादा दुख होगा, उससे कार्य कुछ भी बनेगा नहीं। इस जीव ने अनन्त बार अनन्त पर्यायो मे भिन्न-भिन्न माता-पिता पाये थे, वे अब कहा गये ? इस जीवको अनन्तबार स्त्री, पुत्र-पुत्रीका सयोग मिला था वे कहा गये ? इस जीव को पर्याय-पर्यायमे अनेक भाई, कुटुम्ब परिवारादि मिले थे वे सब अब कहा गये ? यह ससारी जीव पर्याय बुद्धि वाला है। इसे जैसी पर्याय मिलती है वह उसी को अपना स्वरूप मानता है और

उसमे तन्मय होकर परिणमने लगता है। वह यह नहीं जानता है कि जो पर्याय का स्वरूप है वह विनाशक है और मेरा स्वरूप नित्य, शाश्वत और अविनाशी है उसे ऐसा विचार ही नहीं होता। इसमे उस जीव का दोष नहीं है यह तो मोह का महात्म्य है जो प्रत्यक्ष सच्ची वस्तु को झूठी दिखा देता है। जिसके मोह नष्ट हो गया है ऐसा भेदविज्ञानी पुरुष इस पर्याय मे अपनत्व कैसे माने और वह कैसे इसे सत्य माने? वह दूसरे द्वारा चलित कैसे हो? कदाचित नहीं हो।

प्र० ४२-ज्ञानी माता-पिता को समझाते हुए और क्या कहता है ?

उत्तर-अब मुझे यथार्थ ज्ञानभाव हुआ है। मुझे स्व-परका विवेक हो गया है। अब मुझे ठगने में कौन समर्थ है? मैं अनादिकालसे पर्याय-पर्याय में ठगाता चला आया हूँ, तत्परिणाम स्वरूप मैंने भव-भव में जन्म-मरण के दुःख सहे। इसलिये अब आप अच्छी तरह जान लें कि आपके और हमारे इतने दिनों का ही संयोग सम्बन्ध था जो अब पूर्ण प्राय हो गया। अब आपको आत्मकार्य करना उचित है न कि मोह करना ।।

प्र० ४३-ज्ञानी माता-पिता को क्या उपदेश देता है ?

उत्तर—इसलिये अब अपने शाश्वत निज स्वरूप को सम्हाले। उसमे किसी तरह का खेद नहीं है। हमारे अपने ही घर में अमूल्य निधि है उसको सम्हालने से जन्म-जन्म के दुःख नष्ट हो जाते हैं। ससारमे जन्म-मरण का जो दुःख है वह सब अपना स्वरूप जाने बिना है इसलिये सबको ज्ञान ही की आराधना करनी चाहिये। ज्ञान स्वभाव अपना निज स्वरूप है, उसकी प्राप्ति से यह जीव महा सुखी होता है। आप प्रत्यक्ष देखने-जानने वाले ज्ञायक पुरुष शरीर सेभिन्न ऐसा अपना स्वभाव उसे छोड़कर और किससे प्रीतिकी जावे? मेरी स्थिति तो इस सोलहवे स्वर्ग के कल्पवासी देवकी तरह है जो तमाशा हेतु मध्य-लोक में आवे और किसी गरीब आदमी के शरीर में प्रविष्ट हो जावे और उसकी-सी क्रिया करने लगे। वह कभी तो लकड़ी का गट्ठर

सिर पर रखकर बाजार में बेचने जाता है और कभी मिट्टी का तसला सिर पर रख स्त्रियो से रोटी मागने लगता है, कभी पुत्रादिक को खिलाने लगता है, कभी धान काटने जाता है, कभी राजादि बड़े अधिकारियों के पास जाकर याचना करता है कि महाराजा ! मैं आजीविका के लिये बहुत ही दुःखी हूँ मेरी प्रतिपालना करे, कभी दो पैसे मजदूरी के लेकर दाती कमर में लगाकर काम करने के लिए जाता है, कभी रुपए दो रुपये की वस्तु खोकर रोता है हाय ! अब मैं क्या करूँगा ? मेरा धन चोर ले गए ! मैंने धीरे-धीरे धन इकट्ठा किया और उसे भी चोर ले गये, अब मैं अपना समय कैसे बिताऊँगा ? कभी नगर में भगदड़ हो तो वह पुरुष एक लडके को अपने काधे पर बैठाता है और एक लडके की अंगुली पकड़ लेता है और स्त्री तथा पुत्री को अपने आगे कर, सूप, चालणी, मटकी, झाड़ू आदि सामान को एक टोकरी में भरकर अपने सिर पर रखकर, एक दो गुदड़ो की गठरी बांधकर उस टोकरी पर रख आधी रात के समय नगर से बाहर निकलता है। उसे मार्ग में कोई राहगीर मिलता है, वह (राहगीर) उस पुरुष को पूछता है हे भाई आप कहा जाते हैं ? तब वह उत्तर देता है कि इस नगर में शत्रुओं की सेना आई है इसलिए मैं अपना धन लेकर भाग रहा हूँ और दूसरे नगर में जाकर अपना जीवन यापन करूँगा इत्यादि नाना प्रकार का चरित्र करता हुआ वह कल्पवासी देव उस गरीब के शरीर में रहते हुए भी अपने सोलहवें स्वर्ग की विभूति को एक क्षणमात्र भी नहीं भूलता है, वह अपनी विभूति का अवलोकन करता हुआ सुखी हो रहा है । उसने गरीब पुरुष के वेष में जो नाना प्रकार की क्रियायें की हैं-वह उनमें थोड़ासा भी अहंकार-ममकार नहीं करता, वह सोलहवें स्वर्ग की देवागना आदि विभूति और देव स्वरूप में ही अहंकार-ममकार करता है । उस देव की तरह मैं सिद्ध समान आत्मा द्रव्य, मैं पर्याय में नाना प्रकार की चेष्टा करता हुआ भी अपनी मोक्ष-लक्ष्मी को नहीं भूलता हूँ तब मैं लोक में किसका भय करूँ ?”

प्र० ४४—ज्ञानी स्त्री से ममत्व कैसे छुड़ाता है ?

उत्तर—तत्पश्चात् सम्यग्दृष्टि स्त्रीसे ममत्व छुड़ाता है—“अहो! इस शरीरसे ममत्व छोड़। तेरे और इस शरीर के इतने दिनों का ही संयोग सम्बन्ध था सो अब पूर्ण हो गया। अब इस शरीर से तेरा कुछ भी स्वार्थ नहीं सधेगा इसलिये तू अब मेरे से मोह छोड़ और बिना प्रयोजन खेद मत कर। यदि तेरा रखा हुआ यह शरीर रहे तो रख, मैं तो तुझे गुरुता नहीं और यदि तेरा रखा यह शरीर न रहे तो मैं क्या करूँ ? यदि तू अच्छी तरह विचार करे तो तुझे ज्ञात होगा कि तू भी आत्मा है और मैं भी आत्मा हूँ। स्त्री-पुरुष की पर्याय तो पुद्गल का रूप है अतः पुद्गलिक पर्याय से कैसी प्रीति? यह जड़ और आत्मा चैतन्य, ऊट-बैलका सा इन दोनों का संयोग कैसे बने? तेरी पर्याय है उसे भी चंचल ही जान। तू अपने हित का विचार क्यों नहीं करती ? हे स्त्री! मैंने इतने दिन तक तुम्हारे साथ सहवास किया उससे क्या सिद्धि हुई और इन भोगों से क्या सिद्धि होनी है। व्यर्थ ही भोगों से हम आत्मा को संसार चक्र में घुमाते हैं। भोग करते समय हम मोहवश होकर यह नहीं जानते कि मृत्यु आवेगी और तत्पश्चात् तीन लोककी सम्पदा भी मिथ्या हो जाती है इसलिये तुझे हमारी पर्याय के लिये खेद खिन्न होना उचित नहीं है। यदि तू हमारी प्रिय स्त्री है तो हमें धर्म का उपदेश दे यही तेरा वैयावृत्य करना है। अब हमारी देह नहीं रहेगी, आयु तुच्छ रह गई है इसलिये तू मोह कर आत्मा को संसार में क्यों डुबोती है। यह मनुष्य-जन्म दुर्लभ है। यदि तू मतलब ही के लिये हमारी साथिन है तो तू तेरी जाने। हम तुम्हारे डिगाने से डिगेगे नहीं। हमने तुझे दया कर उपदेश दिया है। तू मानना चाहे तो मान, नहीं माने तो तेरा जैसा होनहार होगा वैसा होगा। हमारा अब तुमसे कुछ भी मतलब नहीं है इसलिये अब हमसे ममत्व मत कर। हे प्रिये! परिणामो को शान्त रख, आकुल मत हो। यह आकुलता ही संसार का बीज है। इस प्रकार स्त्री को समझाकर सम्यग्दृष्टि उसे विदा करता है।

प्र० ४५—वह कुटुम्ब परिवार के अन्य व्यक्तियों को बुलाकर उन्हें क्या सम्बोधित करता है ?

उत्तर—“अहो कुटुम्बीगण ! अब इस शरीर की आयु तुच्छ रही है। अब हमारा परलोक नजदीक है इसलिये हम आपको कहते हैं कि आप हमसे किसी बात का राग न करे। आपके और हमारे चार दिन का सयोग था कोई तल्लीनता तो थी नहीं। जैसे सराय में अलग अलग स्थानों के राही दो रात ठहरे और फिर बिछुड़ते समय वे दुःखी हो। इसमें कौन सा सयानापन है। इस प्रकार हमें बिछुड़ते समय दुःख नहीं है किन्तु आप सबसे हमारा क्षमाभाव है। आप सब आनन्दमयी रहे। यदि आपकी आयु बाकी है तो आप धर्म सहित व राग रहित होकर रहो। अनुक्रम से आप सबकी हमारी सी स्थिति होनी है। इस ससार का ऐसा चरित्र जानकर ऐसा बुधजन कौन है जो इससे प्रीति करे। कुटुम्ब-परिवार वालों को इस प्रकार समझाकर सम्यग्दृष्टि उन्हें सीख देता है।

प्र० ४६—वह अपने पुत्रों को बुलाकर क्या समझाता है ?

उत्तर—अहो ! पुत्रो ! आप सब बुद्धिमान हैं, हमसे किसी प्रकार का मोह नहीं करे। जिनेश्वर देव के धर्म का भली प्रकार पालन करे। आपको धर्म ही सुखकारी होगा। कोई व्यक्ति माता-पिता को सुख-कारी मानता है यह मोहका ही माहात्म्य है। वस्तुतः कोई किसी का कर्त्ता नहीं। कोई किसी का भोक्ता नहीं है सब पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के कर्त्ता-भोक्ता है इसलिये अब हम आपको पुनः समझाते हैं कि यदि आप व्यवहारतः हमारी आज्ञा मानते हैं तो हम जैसे कहे वैसे करे। “सच्चे देव, धर्म, गुरु की दृढ प्रतीति करो, सार्धमियों से मित्रता करो, पराश्रयकी श्रद्धा छोड़ो, दान, शील तप सयम से अनु-राग करो, स्व-पर भेदविज्ञान का उपाय करो और ससारी पुरुषों के ससर्ग को छोड़ो। यह जीव ससार में सरागी जीवों की सगति से अनादिकाल से ही दुःख पाता है इसलिये उनकी सगति अवश्य छोड़नी चाहिए। धर्मात्मा पुरुषों की सगति इस लोक और परलोक दोनों में

महासुखदाई है। इस लोक में तो निराकुलतारूपी सुख की और यश की प्राप्ति होती है और परलोक में वह स्वर्गादिक का सुख पाकर मोक्ष में शिवरमणी का भर्त्ता होता है और वहाँ पूर्ण निराकुल, अतीन्द्रिय, अनुपम बाधारहित, शाश्वत अविनाशी सुख भोगता है। इसलिए हे पुत्रो! यदि तुम्हें हमारे वचनों की सत्यता प्रतीत हो तो करो और यदि हमारे वचन झूठे लगे और इनमें तुम्हारा अहित होता दिखे तो हमारे वचन अंगीकार मत करो। हमारा तुमसे कोई प्रयोजन नहीं किन्तु तुम्हें दया बुद्धि से ही यह उपदेश दिया है इसलिये इसे मानो तो ठीक और न मानो तो तुम अपनी जानो।”

प्र० ४७—सम्यग्दृष्टि फिर क्या करता है ?

उत्तर—(१) तत्पश्चात् सम्यग्दृष्टि पुरुष अपनी आयु थोड़ी जानकर दान, पुण्य, जो कुछ उसे करना होता है, स्वयं करता है। (२) तदनन्तर उसे जिन पुरुषों से परामर्श करना होता है उनसे कर वह निःशल्य हो जाता है और सासारिक कार्यों से सम्बन्धित जो स्त्री-पुरुष है उनको विदाकर देता है और धार्मिक कार्यों से सम्बन्धित पुरुषों को अपने पास बुलाता है और जब वह अपनी आयु का अन्त अति निकट समझता है तब वह आजीवन सर्व प्रकार के परिग्रह और चांगे प्रकारके आहारका त्याग करता है और समस्त परिग्रहका भार पुत्रों को सौंपकर स्वयं विशेष रूप से निःशल्य-वीतरागी हो जाता है। अपनी आयु के अन्त के सम्बन्ध में सन्देह होने पर दो-चार घड़ी, प्रहर, दिन आदि की मर्यादापूर्वक त्याग करता है।

प्र० ४८—सम्यग्दृष्टि और फिर क्या करता है ?

उत्तर—तत्पश्चात् वह चारपाई से उतरकर जमीन पर सिंह की तरह निर्भय होकर बैठता है जैसे शत्रुओं को जीतने के लिये सुभट उद्यमी होकर रण-भूमि में प्रविष्ट होता है। इस स्थिति में सम्यग्दृष्टि के अशमात्र आकुलता भी उत्पन्न नहीं होती।

प्र० ४९—सम्यग्दृष्टि के किसकी इच्छा होती है ?

उत्तर—उस बुद्धोपयोगी सम्यग्दृष्टि पुरुष के मोक्षलक्ष्मी का पाणि-

ग्रहण करने की तीव्र इच्छा रहती है कि अभी मोक्ष मे जाऊ । उसके हृदय पर मोक्षलक्ष्मी का आकार अङ्कित रहता है और इस कारण वह किंचित् भी राग परिणति नही होने देता है और इस प्रकार विचार करता है “राग परिणति ने मेरे स्वभाव मे थोडा सा भी प्रवेश किया तो मुझे वरण करने को उद्धत मोक्षलक्ष्मी लौट जायेगी, इसलिए मैं राग परिणति को दूर से छोड़ता हूँ ।” वह ऐसा विचार करता हुआ अपना काल पूर्ण करता है उसके परिणामा मे निराकुल आनन्दरस रहता है, वह शान्तिरस से अत्यन्त तृप्त रहता है । उसके आत्मिक सुख के अतिरिक्त किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा नही है । उसे केवल अतीन्द्रिय सुख की वाँछा है और उसी को भोगना चाहता है इस प्रकार वह स्वाधीन और सुखी हो रहा है ।

उसे यद्यपि साधर्मियो का सयोग सुलभ है तो भी उसे उनका सयोग पराधीन होने से आकुलतादायी ही लगता है और वह यह जानता है कि निश्चयत इनका सयोग सुख का कारण नही है । सुख का कारण एक मेरा शुद्धोपयोग ही है जो मेरे पास ही है अत मेरा सुख मेरे आधीन है । सम्यग्दृष्टि इस प्रकार आनन्दमयी हुआ शान्त परिणामो से युक्त समाधिमरण करता है ।

प्र० ५०—आपने इस समाधिकरण मे प्रश्न क्यों डाले है ?

उत्तर—स्वय और दूसरे पात्र भव्य जीवो को समझने—समझाने मे कठिनता न हो—इस विचार से प्रश्न डालकर इस समाधिमरण की प्रश्नोत्तरी बना दी है ।

एक क्षण भी जी, स्वभाव सन्मुख जी ।

तू स्वय भगवान है, भगवान बनकर जी ॥ १ ॥

अशुभ कर्म के उदय से, जिनवाणी न सुहाय ।

कै ऊँघै, कै लड मरै, कै उठ घर को जाये ॥ २ ॥

भाग्य हीन को न मिले, भली वस्तु का योग ।

दाख पके जब काग के होत कन्ठ मे रोग ॥ ३ ॥

छठवाँ अधिकार

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त देव रचित

द्रव्य सग्रह

प्र० १-द्रव्य सग्रह मे कितनी गाथायें हैं, और कितने अधिकार हैं ?

उत्तर-अट्ठावन गाथाये हैं । और अट्ठावन गाथाओ को तीन अधिकार मे बाँटा गया है ।

प्र० २-प्रथम अधिकार मे क्या बताया है ?

उत्तर-प्रथम अधिकार मे २७ गाथाये हैं और सत्ताईस गाथाओ मे छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय का प्रतिपादन करने वाला प्रथम अधिकार है ।

प्र० ३-दूसरे अधिकार मे क्या बताया है ?

उत्तर-दूसरे अधिकार मे ११ गाथाये हैं और ग्यारह गाथाओ मे सात तत्त्व और नव पदार्थ का प्रतिपादन करने वाला दूसरा अधिकार है ।

प्र० ४ - तीसरे अधिकार मे क्या बताया है ?

उत्तर-तीसरे अधिकार मे २० गाथाये हैं और बीस गाथाओ मे मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करने वाला तीसरा अधिकार है ।

जीवमजीवं द्रव्व जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठ ।

देविदविद वदे त सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

अर्थ -(जेण जिणवरवसहेण)जिन, जिनवर और जिनवर वृषभ भगवान ने (जीवमजीव द्रव्व) जीव और अजीव द्रव्य का (णिद्दिट्ठ) वर्णन किया है । (देविदविदवद) भवनवासी देव के ४०, व्यन्तर देव के ३२, कल्पवासी देव के २४, ज्योतिषी देव के सूर्य और चन्द्रमा, मनुष्य से चक्रवर्ती तथा तिर्यच से सिंह, इस प्रकार देवेन्द्रो के समूह से वन्दनीय (त) उन प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव को मैं (सव्वदा) सदा (सिरसा) नत. मस्तक होकर (वदे) वन्दना करता हूँ ॥१॥

भावार्थ.—प्र० ५—जिन किसे कहते हैं और जिन में कौन-कौन आते हैं ?

उत्तर—निज शुद्धात्म द्रव्य के आश्रय से मिथ्यात्व राग-द्वेषादि को जीतने वाली निर्मल परिणति जिसने प्रगट की है वही जैन है। मिथ्यात्व के नाशपूर्वक जितने अंश में जो रागादि का नाश करता है उतने अंश में वह जैन है। वास्तव में जैनत्व का प्रारम्भ निश्चय सम्यग्दर्शन से ही होता है, जो चतुर्थ गुणस्थान में प्रगट होता है। (३) असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरत श्रावक और भावलिङ्गी मुनि जिन में आते हैं।

प्र० ६—जिनवर किसे कहते हैं और जिनवर में विशेषरूप से कौन आते हैं ?

उत्तर—जो जिनो में श्रेष्ठ होते हैं वे जिनवर हैं और विशेष रूप से श्री गणधर देव जिनवर में आते हैं।

प्र० ७—जिनवरवृषभ किसे कहते हैं और जिनवरवृषभ में कौन-कौन आते हैं। तथा ग्रन्थ कर्त्ता ने विशेष रूप से मंगलाचरण में किसको याद किया है ?

उत्तर—(१) जो जिनवरो में भी श्रेष्ठ होते हैं वे जिनवरवृषभ हैं। (२) प्रत्येक तीर्थंकर भगवान् जिनवरवृषभ में आ जाते हैं। (३) यहाँ ग्रन्थकर्त्ता ने मंगलाचरण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को याद किया है।

प्र० ८—जिन-जिनवर-जिनवर वृषभों ने किसका वर्णन किया है ?

उत्तर—जीव और अजीव द्रव्यों का वर्णन किया है।

प्र० ९—विश्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—संख्या अपेक्षा अनन्त द्रव्य और जाति अपेक्षा छह द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं।

प्र० १०—विश्व को जानने के कितने लाभ हैं ?

उत्तर—अनेक लाभ हैं, परन्तु मुख्य सात लाभ हैं ।

प्र० ११—मुख्य सात लाभ कौन-कौन से हैं और इनका स्पष्टीकरण कहाँ देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरे में विश्व के पाठ में सात लाभ के नाम और स्पष्टीकरण देखे ।

प्र० १२—द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं ।

प्र० १३—द्रव्य को जानने के कितने लाभ हैं ?

उत्तर—अनेक लाभ हैं, परन्तु मुख्य सात लाभ हैं ।

प्र० १४—द्रव्य को जानने के मुख्य सात लाभ कौन-कौन से हैं और इनका स्पष्टीकरण कहाँ देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरे में द्रव्य के पाठ में सात लाभ के नाम और स्पष्टीकरण देखे ।

प्र० १५—गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो द्रव्य के सम्पूर्ण भाग और उसकी समस्त अवस्थाओं में रहता है उसको गुण कहते हैं ।

प्र० १६—गुण को जानने के कितने लाभ हैं ?

उत्तर—अनेक लाभ हैं, परन्तु मुख्य छह लाभ हैं ।

प्र० १७—गुण जानने के मुख्य छह लाभ कौन-कौन से हैं और इनका स्पष्टीकरण कहाँ देखें ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग पहिले में गुण के पाठ में छह लाभों के नाम और स्पष्टीकरण देखे ।

प्र० १८—द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—दो द्रव्य हैं, जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य ।

प्र० १६-जीव द्रव्य किसे कहते हैं और जीव द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—जिसमें सहज शुद्ध चैतन्यपना पाया जावे वे जीवद्रव्य हैं और वे जीवद्रव्य निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक अनन्त हैं।

प्र० २०-अजीव द्रव्य किसे कहते हैं और अजीवद्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—जिनमें ज्ञानदर्शन न पाया जावे उसे अजीवद्रव्य कहते हैं और अजीवद्रव्य जाति अपेक्षा पाच हैं और सख्या अपेक्षा पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोकप्रमाण असख्यात कालद्रव्य, अनन्तानन्त हैं।

प्र० २१-जीव द्रव्य और जीव तत्त्व में क्या अन्तर है ?

उत्तर—(१) जीवद्रव्य में निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक सब जीव आ गये। और जीवतत्त्व में जिसमें मेरा ज्ञान-दर्शन पाया जावे, वह एक ही जीव आता है।

प्र० २२-जीव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें निज सहज शुद्ध चैतन्यपना पाया जावे—वह जीव तत्त्व है।

प्र० २३-अजीव तत्त्व किसे कहते हैं और अजीव तत्त्व में कौन-कौन आते हैं ?

उत्तर—(१) जिनमें मेरा ज्ञान-दर्शन न पाया जावे वे अजीवतत्त्व हैं। मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व के अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य, ये सब अजीव तत्त्व में आते हैं।

प्र० २४-जीव द्रव्य और जीव तत्त्व में क्या अन्तर है ?

उत्तर—जीवद्रव्य में विश्व के सब जीव आ गये और जीवतत्त्व में एक मात्र अपना जीव ही आता है।

प्र० २५-अजीव द्रव्य और अजीव तत्त्व में क्या अन्तर है ?

उत्तर—अजीव तत्त्व में अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश

एकैक और लोक प्रमाण असरयात काल द्रव्य आते हैं और अजीव तत्त्व में इन सब द्रव्यों के साथ मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व के समस्त जीव द्रव्य भी आ जाते हैं।

प्र० २६-जीव तत्त्व और अजीव तत्त्व प्रयोजनभूत किस प्रकार हैं ?

उत्तर-[१] निज जीवतत्त्व एकमात्र आश्रय करने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है [२] अजीवतत्त्व एकमात्र जानने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है।

प्र० २७-निज जीवतत्त्व का आश्रय लेने से और अजीवतत्त्व को जानने योग्य मानने से क्या लाभ होता है ?

उत्तर-दुःख का अभाव और सुख की प्राप्ति होती है अर्थात् आश्रय-बन्ध का भागना प्रारम्भ हो जाता है, मवर-निर्जराकी प्राप्ति होकर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्र० २८-प्रत्येक जीव की सत्ता कितनी-कितनी है ?

उत्तर-अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और ज्ञान-दर्शनादि अनन्त विशेष गुण। एक व्यजन पर्याय और अनन्त अर्थ पर्याय सहित एक जीव की सत्ता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव की सत्ता जानना।

प्र० २९-प्रत्येक पुद्गल की सत्ता कितनी-कितनी है ?

उत्तर-अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णादि अनन्त विशेष गुण। एक व्यजन पर्याय और अनन्त अर्थ पर्याय सहित एक परमाणु की सत्ता है। इसी प्रकार प्रत्येक परमाणु की सत्ता जानना।

प्र० ३०-धर्म द्रव्य की सत्ता कितनी है ?

उत्तर-अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और गति हेतुत्वादि अनन्त विशेष गुण। एक स्वभाव व्यजन पर्याय और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्याय सहित धर्म द्रव्य की सत्ता है।

प्र० ३१-अधर्म द्रव्य की सत्ता कितनी है ?

उत्तर-अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और स्थिति हेतुत्वादि अनन्त विशेष गुण । एक स्वभाव व्यजन पर्याय और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्याय सहित अधर्म द्रव्य की सत्ता है ।

प्र० ३२-अकाश द्रव्य की सत्ता कितनी है ?

उत्तर-अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और अवगाहन हेतुत्वादि अनन्त विशेष गुण । एक स्वभाव व्यजन पर्याय और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्याय सहित आकाशद्रव्य की सत्ता है ।

प्र० ३३-प्रत्येक कालाणु की सत्ता कितनी-कितनी है ?

उत्तर-अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और स्थिति हेतुत्वादि अनन्त विशेष गुण । एक स्वभाव व्यजन पर्याय और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्याय सहित एक कालाणु की सत्ता है । इसी प्रकार प्रत्येक कालाणु की सत्ता जानना ।

प्र० ३४-जीव दुःखी क्यों है ?

उत्तर-(१) जीव-अजीव का यथार्थ ज्ञान न होने से ही संसारी मिथ्यादृष्टियों को स्व-पर का विवेक नहीं हो पाता है । (२) स्व-पर का विवेक ना होने से वे आत्म स्वरूप की प्राप्ति से वंचित रहने के कारण ही दुःखी है ।

प्र० ३५-दुःख दूर करने के लिये संसारी जीवों को क्या करना चाहिये ?

उत्तर-उन्हे स्व-पर यथार्थ विवेक प्रगट करने के लिये जीव-अजीव का यथार्थ ज्ञान करना चाहिये ।

(६) प्र० ३६-भोक्तृ नमस्कार क्या है ?
 उत्तर-भोक्तृ नमस्कार (आत्मा तत्वात्मा प्राप्तुं भोक्तृ नमस्कार है और भोक्तृ नमस्कार ही जिज्ञेन्द्राभगवासी की निश्चयी सुप्ति, तदुदनीनप्रमाणस्य) नमस्कार है ।

प्र० ३७-नमस्कार कितने हैं ?

उत्तर—पांच हैं—(१) शक्ति रूप नमस्कार, (२) एकदेग भाव नमस्कार, (३) द्रव्य नमस्कार, (४) जड नमस्कार, (५) पूर्ण भाव नमस्कार ।

प्र० ३८-इन पांच नमस्कार को थोड़े में समझाइये ?

उत्तर—(१) शक्ति रूप नमस्कार के आश्रय से ही एकदेग भाव नमस्कार प्रगट होता है । (२) एक देग भाव नमस्कार के साथ अपनी-अपनी भूमिका अनुसार साधक धर्मी जीव को जो राग होता है वह द्रव्य नमस्कार पुण्य वध का कारण है । (३) द्रव्य नमस्कार के साथ गरीगदि की क्रियाओं को जड नमस्कार व्यवहार का व्यवहार कहा जाता है । (४) शक्ति रूप नमस्कार का परिपूर्ण आश्रय लेने से नमस्कार का फल पूर्ण भाव नमस्कार प्रगट होता है ।

प्र० ३९-द्रव्य नमस्कार कौन से गुण स्थान तक होता है ?

उत्तर—चौथे गुण स्थान से लेकर छठे गुण स्थान तक होता है ।

प्र० ४०-जिनेन्द्र भगवान को कौन नमस्कार कर सकता है ?

उत्तर—साधक धर्मी जीव ही नमस्कार कर सकता है । अज्ञानी मिथ्यादृष्टि भगवान को नमस्कार नहीं कर सकता है, क्योंकि अज्ञानी को भाव नमस्कार की प्राप्ति नहीं है ॥ १ ॥

जीवद्रव्य के नौ अधिकार

जीवो उवग्रोगमग्रो अमूर्ति कत्ता सदेह परिणामो ।

भोक्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

अर्थ — इस गाथा में जीव के नौ अधिकारों के नाम दिये गये हैं । वह जीव (१) प्राणों से जीता है, (२) उपयोगमय है, (३) अमूर्तिक है, (४) कर्ता है, (५) भोक्ता है, (६) स्वदेह परिमाण है, (७) ससारी है, (८) सिद्ध है, (९) स्वभाव से उर्ध्वगमन करने वाला है ॥ २ ॥

प्र० ४१-इन नौ अधिकारो का मर्म जानने के लिये क्या जानना आवश्यक है ?

उत्तर—नय सम्बन्धी ज्ञान का होना आवश्यक है, क्योंकि नय ज्ञान हुये बिना नव अधिकारो का मर्म समझ मे नही आसकता है ।

प्र० ४२-प्रमाण ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होती है इसी वस्तु के सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते है ।

प्र० ४३-नय किसे कहते है ?

उत्तर—प्रमाण द्वारा निश्चित हुई अनन्त धर्मात्मक वस्तु के एक-एक अंग का ज्ञान मुख्यरूप से कराये उसे नय कहते है ।

प्र० ४४ नय का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—वस्तु अनन्त धर्मात्मक है । वस्तु मे किसी धर्म की मुख्यता करके अविरोध रूप से साध्य पदार्थ को जानना ही नय का तात्पर्य है ।

प्र० ४५-नय किसको होते है और किसको नही होते है ?

उत्तर—साधक सम्यग्दृष्टि को नय होते है मिथ्यादृष्टि को नय नही होते है ।

प्र० ४६-सम्यग्दृष्टि को ही नय क्यों होने है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि के सम्यक श्रुतज्ञान प्रमाण प्रगट होने से उसके नय होते है ।

प्र० ४७-मिथ्यादृष्टि को नय क्यों नहीं होते है ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि का श्रुतज्ञान मिथ्या होने से उसके नय नही होते है ।

प्र० ४८-क्या पहले व्यवहार नय होता है ?

उत्तर—नही होता है, क्योंकि “निरपेक्षा नया मिथ्या.-सापेक्षा

वस्तु तैः श्रुतः ।” निश्चयनय की अपेक्षा ही व्यवहारनय होता है ।
केवल व्यवहार पक्ष ही मोक्ष मार्ग में नहीं है ।

प्र० ४६—जिन भगवन्तों की वाणी की पद्धति क्या है ?

उत्तर—दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की पद्धति है ।

प्र० ५०—नय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं, निश्चयनय और व्यवहारनय ।

प्र० ५१—निश्चय-व्यवहार का लक्षण क्या है ?

उत्तर—(१) यथार्थ का नाम निश्चय है ।

(२) उपचार का नाम व्यवहार है ।

प्र० ५२—यथार्थ का नाम निश्चय और उपचार का नाम व्यवहार को किस-किस प्रकार जानना चाहिये ?

उत्तर—(१) जहाँ अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा निर्मल पर्याय को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है । (२) जहाँ निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा भूमिका अनुसार शुभभावों को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है । (३) जहाँ जीव के विकारी भावों को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है ।

प्र० ५३—अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

उत्तर—एक मात्र आश्रय करने योग्य की अपेक्षा से अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है । क्योंकि इसी के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति-वृद्धि और पूर्णता होती है ।

प्र० ५४ निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

उत्तर—प्रगट करने योग्य की अपेक्षा से निर्मल शुद्ध परिणति को

यथार्थ का नाम निश्चय कहा है ।

प्र० ५५—जीव के विकारी भावों को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

उत्तर—पर्याय में दोष अपने अपराध से है । द्रव्यकर्म-नोकर्म के कारण नहीं है । इसका ज्ञान कराने के लिये विकारी भावों को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है ।

प्र० ५६—निर्मल शुद्ध परिणति को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर—अनादि अनन्त ना होने की अपेक्षा से तथा आश्रय करने योग्य ना होने की अपेक्षा से निर्मल शुद्ध परिणति को उपचार का नाम व्यवहार कहा है ।

प्र० ५७—भूमिका अनुसार शुभ भावों को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर—मोक्ष मार्ग में शुद्ध अंश के साथ किस-किस प्रकार का राग होता है और किस-किस प्रकार का राग नहीं होता है । यह ज्ञान कराने के लिये भूमिका अनुसार शुभभावों को उपचार का नाम व्यवहार कहा है ।

प्र० ५८—द्रव्यकर्म नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर—जब-जब पर्याय ने विभाव भाव उत्पन्न होते हैं, तब-तब द्रव्यकर्म-नोकर्म का निमित्त होता है—इस अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा है ।

प्र० ५९—निश्चयनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के किसी असली (मूल) अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को निश्चयनय कहते हैं । जैसे—मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना ।

प्र० ६०—व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

उत्तर—किमी निमित्त कारण से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ रूप जानने वाले ज्ञान को व्यवहारनय कहते हैं। जैसे—मिट्टी के घड़े को घी रहने के निमित्त से घी का घड़ा कहना।

प्र० ६१—व्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—सद्भूत व्यवहारनय और असद्भूत व्यवहारनय।

प्र० ६२—सद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

उत्तर—जो एक पदार्थ में गुण-गुणी को भेद रूप ग्रहण करे—उसे सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं।

प्र० ६३—सद्भूत व्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं। उपचरित सद्भूत व्यवहारनय और अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय।

प्र० ६४—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो उपाधि सहित गुण-गुणी को भेदरूप से ग्रहण करे—उसे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे ससारी जीव के मतिज्ञानादि पर्याय और नर-नारकादि पर्याये।

प्र० ६५—अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो नय निरुपाधिक गुण-गुणी को भेद रूप ग्रहण करे—उसे अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे जीव के केवलज्ञान-केवलदर्शन।

प्र० ६६—असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मिले हुये भिन्न पदार्थों को अभेदरूप से कथन करे—उसे असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे यह शरीर मेरा है।

प्र० ६७—असद्भूत व्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं। उपचरित असद्भूत व्यवहारनय और

अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय ।

प्र० ६८-उपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अत्यन्त भिन्न पदार्थों को जो अभेदरूप से ग्रहण करे—उसे उपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं । जैसे—जीव के महल-घोडा-वस्त्रादि ।

प्र० ६९-अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो नय सयोग सम्बन्ध से युक्त दो पदार्थों के सम्बन्ध को विषय बनावे—उसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं । जैसे—जीव का गरीर, जीव का कर्म कहना ।

प्र० ७०-चार प्रकार का अध्यात्म व्यवहार किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) उपचरित असद्भूत व्यवहारनय — साधक ऐसा जानता है कि मेरी पर्याय मे विकार होता है । उसमे जो व्यक्त बुद्धि पूर्वक राग प्रगट ख्याल मे लिया जा सकता है—ऐसे राग को आत्मा का कहना । (२) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय —जिस समय बुद्धि पूर्वक राग है, उसी समय अपने ख्याल मे न आ सके—ऐसा अबुद्धि पूर्वक राग भी है—उसे जानना । (३) उपचरित सदद्भूत व्यवहारनय —ज्ञान पर को जानता है अथवा ज्ञान मे राग ज्ञात होने से “राग का ज्ञान है”—ऐसा कहना । अथवा ज्ञाता स्वभाव के भान पूर्वक ज्ञानी “विकार को भी जानता है” ऐसा कहना । (४) अनुपचरित सदद्भूत व्यवहारनय —ज्ञान और आत्मा इत्यादि गुण-गुणी का भेद करना ।

प्र० ७१-चार प्रकार के आगम और अध्यात्म के नयों की जानकारी आवश्यक क्यों है ?

उत्तर—किस अपेक्षा क्या बात बतलाई जा रही है जानकारी होने के लिये ।

प्र० ७२—जैन शास्त्रों के अर्थ करने की पद्धति के कितने प्रश्न हैं ?

उत्तर—चौदह प्रश्न हैं। वे प्रश्न ७३ से लेकर ८६ तक के अनुसार हैं।

प्र० ७३—उभयाभासी के दोनों नयों का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया तो वह दोनों नयों को किस प्रकार समझे ?

उत्तर—निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना।

प्र० ७४—व्यवहारनय का त्याग करके निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कही भगवान् अमृत चन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—हाँ दिया है। (१) समयसार कलश १७३ में आदेश दिया है कि “सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि में जो अध्यवसाय है—सो समस्त ही छोड़ना—ऐसा जिन देवों ने कहा है। (२) अमृत चन्द्राचार्य कहते हैं कि इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छोड़ाया है। (३) तो फिर सन्त पुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानघन रूप निज महिमा में स्थिति क्यों नहीं करते ? ऐसा कहकर आचार्य भगवान् ने खेद प्रगट किया है।

प्र० ७५—निश्चयनय को अंगीकार करने और व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान् कुन्द-कुन्द आचार्य ने मोक्ष प्राप्ति गाथा ३१ में क्या कहा है ?

उत्तर—जो व्यवहार की श्रद्धा छोड़कर निश्चय की श्रद्धा करता वह योगी अपने आत्म कार्य में जागता है तथा जो व्यवहार की श्रद्धा छोड़कर निश्चय की श्रद्धा करता वह योगी अपने आत्म कार्य में जागता है। निश्चयनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्र० ७६-व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर निश्चयनय का श्रद्धान करना कयो योग्य है ?

उत्तर-(१) व्यवहारनय [अ] स्वद्रव्य-परद्रव्य को, [आ] स्वद्रव्य के भावो को-परद्रव्य के भावो को, [इ] तथा कारण-कार्यादि को, किसी को किसी मे मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करना चाहिये। (२) और निश्चयनय उन्ही को यथावत निरूपण करता है तथा किसी को किसी मे नही मिलता है। ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिये उसका श्रद्धान करना चाहिये।

प्र० ७७-आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। परन्तु जिन मार्ग मे दोनो नयो का ग्रहण करना कहा है। उसका कारण क्या है ?

उत्तर-(१) जिनमार्ग मे कही तो निश्चयनय की मुख्यता के लिये व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ ऐसे ही है”—ऐसा जनना। (२) तथा कही व्यवहारनय की मुख्यता के लिये व्याख्यान है, उसे “ऐसे है-नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है”—ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्र० ७८-कुछ मनीषी ऐसा कहते है कि “ऐसे भी है और ऐसे भी है” इस प्रकार दोनो नयो का ग्रहण करना चाहिये। क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ, बिल्कुल गलत है, क्योकि उन्हे जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है तथा दोनो नयो को समान सत्यार्थ जानकर “ऐसे भी है और ऐसे भी है” इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्र० ७९-व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो उसका उपदेश जिन मार्ग

मे किसलिये दिया ? एक मात्र निश्चयनय ही का निरूपण करना था ।

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है—वहाँ उत्तर दिया दिया है—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना (ससार मे ससारी भाषा के बिना) परमार्थ का उपदेश अगवय है । इसलिये व्यवहार का उपदेश है । इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते है, उसका विषय भी है, परन्तु वह अंगीकार करने योग्य नहीं है ।

प्र० व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता है इसके पहले प्रकार को समझाइये ?

उत्तर—निश्चय से आत्मा पर द्रव्यो से भिन्न स्वाभावो से अभिन्न सिद्ध वस्तु है । उसे जो नहीं पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये । इसीलिये उनको व्यवहारनय से शरीरादिक पर द्रव्यो की सापेक्षता द्वारा नर-नारक-पृथ्वी कायादिरूप जीव के विशेष किये, तब मनुष्य जीव है, नागकी जीव है । इत्यादि प्रकार सहित उन्हें जीव की पहचान हुई । इस प्रकार व्यवहार बिना (शरीर के सयोग बिना) निश्चय के (आत्मा के) उपदेश का न होना जानना ।

प्र० ८१—प्रश्न ८० मे व्यवहारनय से शरीरादिक सहित जीव की पहचान कराई—तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिए ? सो समझाइये ।

उत्तर—व्यवहारनय से नर-नारक आदि पर्याय ही को जीव कहा—सो पर्याय ही को जीव नहीं मान लेना । वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के सयोग रूप है । वहाँ निश्चय से जीव द्रव्य भिन्न उस ही को जीव मानना । जीव के सयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा—सो कथन मात्र ही है । परमार्थ से शरीरादिक

जीव होते नहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय (शरीरादिक वाला जीव है) अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्र० ८२—व्यवहार बिना (भेद बिना) निश्चय का (अभेद आत्मा का) उपदेश कैसे नहीं होता ? इसके दूसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर—निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है। उसे जो नहीं पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे—तो वे समझ नहीं पाये। तब उनको अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये तब 'जानने वाला जीव है, देखने वाला जीव है। इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहचान हुई। इस प्रकार भेद बिना अभेद के उपदेश का न होना जानना।

प्र० ८३—प्रश्न ८२ में व्यवहार से ज्ञानदर्शन भेद द्वारा जीव की पहचान कराई। तब ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये ? सो समझाइये।

उत्तर—अभेद आत्मा में ज्ञान-दर्शनादि भेद किये—सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना, क्योंकि भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं। निश्चय से आत्मा अभेद ही है—उस ही को जीव वस्तु मानना। सज्ञा-सख्या-लक्षण आदि से भेद कहे—सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से द्रव्य-गुण भिन्न-भिन्न नहीं है, ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार भेदरूप व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्र० ८४—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ? तीसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर—निश्चय से वीतराग भाव मोक्ष मार्ग है, उसे जो नहीं पहचानते, उनको ऐसे ही कहते रहे—तो वे समझ नहीं पाये। तब उनको (१) तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक (२) पर द्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा (३) व्यवहार नय से व्रत-शील-सयमादि को वीतराग भाव के विशेष बतलाये। तब उन्हें वीतराग भाव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार बिना निश्चय मोक्ष मार्ग के उपदेश का न होना जानना।

प्र० ८५—प्रश्न ८४ मे व्यवहारनय से मोक्ष मार्ग की पहचान कराई। तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगकार नहीं करना चाहिये ? सो समझाइये।

उ०—पर द्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्ष मार्ग कहा-सो इन्ही को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना, क्योंकि (१) पर द्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा पर द्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जावे। परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नहीं है। इसलिए आत्मा अपने भाव जो रागादिक है, उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है। (३) इसलिये निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। (४) वीतराग भावों के और व्रतादिक के कदाचित्त कार्य-कारणपना (निमित्त-नैमित्तकपना) है, (५) इसलिए व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे-सो कथनमात्र ही है (६) परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है-ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है, ऐसा जानना।

प्र० ८६—जो जीव व्यवहारनय के कथन को ही सच्चा मान लेता है-उसे जिनवाणी मे किन-किन नामों से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धिउपाय गाथा ६ मे कहा कि “तस्य देशना नास्ति”। (२) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि “अज्ञान मोह अन्धकार है उसका सुलटना दुर्निवार है”। (३) प्रवचनासार गाथा ५५ मे कहा है “वह पद-पद पर धोखा खाता है”। (४) आत्मावलोकन मे कहा है कि “यह उसका हराजादीपना है”। इत्यादि सब शास्त्रों मे मूर्ख आदि नामों से सम्बोधन किया है।

प्र० ८७—जीव-अजीवादि मे हेय-ज्ञेय-उपादेय कि प्रकार है ?

उत्तर—शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव जिसका है वैस-
आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) आ

(३) अजीवतत्त्व की तरफ दृष्टि से जो आश्रय-वच-पुण्य-पाप उत्पन्न होते हैं वे सब छोड़ने योग्य है (४) शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव जिसका है वैसा निज परमात्मा द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न एकदेश वीतरागता प्रगट करने योग्य एक देश उपादेय । (५) पूर्ण क्षायिक दशा पूर्ण प्रगट करने योग्य उपादेय है ।

प्र० ८८—जीव-अजीव को क्यों जानना चाहिये ? इस विषय में मोक्षमार्ग प्रकाशक में क्या बताया ।

उत्तर—(१) प्रथम तो दुःख करने में अपना और पर का ज्ञान अवश्य होना चाहिये । (२) यदि अपना और पर का ज्ञान नहीं हो तो अपने को पहचाने बिना अपना दुःख कैसे दूर करे ? (३) अपने को और पर को एक जानकर अपना दुःख दूर करने के अर्थ पर का उपचार करे तो अपना दुःख कैसे दूर हो ? (४) आप स्वयं जीव हैं और पर अजीव भिन्न है, परन्तु यह पर में अहंकार-ममकार करे तो उसे दुःख ही होता है, अपना और पर का ज्ञान होने पर ही दुःख दूर होता है (५) अपना और पर का ज्ञान जीव-अजीव का ज्ञान होने पर ही होता है, क्योंकि आप स्वयं जीव तत्त्व हैं, शरीरादिक अजीव तत्त्व हैं । यदि लक्षणादि द्वारा जीव अजीव की पहचान हो तो अपनी और पर की भिन्नता भाषित हो, इसलिये जीव-अजीव को जानना चाहिये । (मो० पृ० ७८)

प्र० ८९—जीव अनादि से दुःखी क्यों है ?

उत्तर—(१) जीव को अनादि स्व-पर की एकत्व रूप श्रद्धा से मिथ्यादर्शन है । (२) स्व-पर के एकत्व ज्ञान से मिथ्याज्ञान है । (३) स्व-पर के एकत्व आचरण से मिथ्याचारित्र्य है । अतः अनादि से जीव स्व-पर के एकत्वादि के कारण ही दुःखी है ।

प्र० ९०—तयज्ञान और भेद ज्ञान की आवश्यकता क्यों है ?

उत्तर—समस्त दुःखों का मूल कारण मिथ्या दर्शन-ज्ञानचारित्र्य ही है । इन सभी दुःखों का अभाव कूरने के लिये तय ज्ञान और भेद

ज्ञान की आवश्यकता है ।

प्र० ६१—भेद ज्ञान कितने प्रकार से करे तो ससार का अभाव मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उत्तर—एक प्रकार से ही भेद ज्ञान करे तो आत्म सन्मुख हो सकता है । (१) एक तरफ निज जीव तत्व और दूसरी तरफ अजीव तत्व से मेग किसी भी अपेक्षा किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है । ऐसा जाने-माने तो ससार का अभाव मोक्ष की प्राप्ति हो ।

प्र० ६२—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुणों के कार्य को पर्याय कहते हैं ।

प्र० ६३—पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—व्यजन पर्याय और अर्थ पर्याय ।

प्र० ६४—व्यजन पर्याय किसे कहते हैं और व्यजन पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—द्रव्य के प्रदेशत्व गुण के विशेष कार्य को व्यजन पर्याय कहते हैं और व्यजन पर्याय के दो भेद हैं—स्वभाव व्यजन पर्याय और विभाव व्यजन पर्याय ।

प्र० ६५—अर्थ पर्याय किसे कहते हैं और अर्थ पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—प्रदेशत्व गुण के सिवाय सम्पूर्ण गुणों के कार्य को अर्थ पर्याय कहते हैं । और अर्थ पर्याय के दो भेद हैं—स्वभाव अर्थ पर्याय और विभाव अर्थ पर्याय ।

प्र० ६६—पर्याय का स्पष्टीकरण कहा देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला तीसरे भाग में पर्याय के वर्णन में देखियेगा ।

प्र० ६७—छहड़ाला में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक वखानौ ।

कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनौ ॥

प्र० ६८—इष्टोपदेश ५० वें श्लोक में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—चेतन पुद्गल भिन्न है यही तत्त्व सक्षेप ।

अन्य कथन सब है इसी के विस्तार विशेष ॥५०॥

प्र० ६९—सामायिक पाठ में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड देह सयोग ।

मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड चेतन का पूर्ण वियोग ॥

प्र० १००—योग सार में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—जीव पुद्गल दोऊ भिन्न है, भिन्न सकल व्यवहार ।

तज पुद्गल ग्रह जीव तो, गीघ्र लहे भवपार ॥५०॥

जीवाधिकार

तिक्काले चदुपाणा इ द्विय बल माड प्राणपाणो य ।

व्यवहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

अर्थ —(व्यवहारा) व्यवहारनय से जिसके (तिक्काले) भूत-वर्तमान और भविष्य काल में (इन्द्रियबलमाड) इन्द्रिय-बल-आयु (य) और (आणपाणो) श्वासोच्छ्वास (चदुपाणा) ये चार प्राण होते हैं । (दु) और (णिच्चयणय दो) निश्चयनय से (जस्स) जिसके (चेदणा) चेतना होती है (सो जीवो) वह जीव है ॥ ३ ॥

प्र० १०१—शुद्ध निश्चयनय से अनादि अनन्त प्रत्येक प्राणी के कौन सा प्राण है ?

उत्तर—निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक शुद्ध निश्चयनय से अनादि अनन्त शुद्ध चेतना प्राण ही है ।

प्र० १०२—प्राणों के कितने २ प्रकार हैं और किस-किस अपेक्षा से हैं ?

उत्तर--प्राणों के तीन प्रकार हैं। (१) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जड़ प्राण ससार दशा में ही होते हैं। (२) उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से भाव प्राण ससार दशा में होते हैं। (३) शुद्ध निश्चयनय से अनादि अनन्त चेतना प्राण प्राणी मात्र के पास है। (४) चौथे गुणस्थान से वारहवे गुणस्थान तक एकदेश अतीन्द्रिय भावप्राण और १३-१४ और सिद्ध दशा में क्षायिक दशा रूप अतीन्द्रिय भावप्राण अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से ज्ञानियों के होते हैं।

प्र० १०३—जड़ प्राण किसका कार्य है और किसको किस दशा में होते हैं ?

उत्तर--(१) पांच इन्द्रिया, ३ बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये जड़ प्राण पुद्गल द्रव्य की स्कन्ध रूप पर्याय हैं। (२) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव को ससार दशा में संयोग रूप से ये जड़ प्राणों का संयोग होता है।

प्र० १०४—भावप्राण किसका कार्य है और किसको किस दशा में हो सकते हैं ?

उत्तर--(१) क्षयोपशम ज्ञान के उघाडरूप ज्ञान दशा (२) बल प्राण वीर्य गुण की क्षयोपशम दशा आदि जीव की दशा उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से ससार दशा में है।

प्र० १०५--अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से एकेन्द्रिय जीव के कितने जड़ प्राणों का संयोग होता है ?

उत्तर--अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से एकेन्द्रिय जीव के स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास इन ४ जड़ प्राणों का संयोग होता है।

प्र० १०६—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से दो इन्द्रिय वाले जीव के कितने जड़ प्राणों का संयोग होता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से दो इन्द्रिय वाले जीव के स्पर्शन-रसना दो इन्द्रिया, वचन-काय दो बल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन ६ जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १०७—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से तीन इन्द्रिय वाले जीव के कितने जड प्राणो का सयोग होता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से तीन इन्द्रिय वाले जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण तीन इन्द्रिया, वचन बल दो बल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन सात जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १०८—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से चार इन्द्रिय वाले जीव के कितने जड प्राणो का सयोग होता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से चार इन्द्रिय वाले जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु चार इन्द्रिया, वचन-बल दो बल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन आठ जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १०९—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से पाच इन्द्रिय वाले असैनी जीव के कितने जड प्राणो का सयोग होता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से पाच इन्द्रिय वाले असैनी जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-कर्ण पाच इन्द्रिया, वचन-काय दो बल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन नौ जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० ११०—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय संज्ञी पाच इन्द्रिय वाले जीव के कितने जड प्राणो का सयोग होता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से सैनी पाच इन्द्रिय वाले जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-कर्ण पाच इन्द्रिया, मन-वचन-काय तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन दस जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १११—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जड प्राण जीव के होते हैं—ऐसा कौन कह सकता है और क्यों ?

उत्तर - जानी ही कह सकती है क्योंकि उसको अपने निश्चय चेतना प्राण का ज्ञान है ।

प्र० ११२—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जड़ प्राण जीव के हैं—इस वाक्य पर निश्चय व्यवहार के दस प्रश्नोत्तर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर ११३ से १२२ तक नीचे पढ़ियेगा ।

प्र० ११३—कोई चतुर कहता है मैं चेतना प्राण हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान रखता हूँ और मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की प्रवृत्ति रखता हूँ । परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनों को झूठा बता दिया तो हम निश्चय-व्यवहार दोनों नयों को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर—मैं चेतना प्राण वाला हूँ—ऐसा जो शुद्ध निश्चयनय स निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसा जो अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना ।

प्र० ११४—मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग करने का और मैं चेतना प्राण वाला हूँ—ऐसे शुद्ध निश्चयनय के अगीकार करने का आदेश कहीं जिनवाणी में भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ में आदेश दिया है कि (१) मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि—शुद्ध निश्चयनय से मैं चेतना प्राण वाला हूँ और अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मैं दस प्राणों वाला हूँ—यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे समस्त अध्यवसानों को छोड़ना, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को निश्चय-व्यवहार

कुछ होता ही नहीं—ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि में आया है। (२) स्वयं अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि मैं ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियों को जो मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसा पराश्रित व्यवहार होता है सो सर्व ही छुड़ाया है। तो फिर सन्त पुरुष स्वयं सिद्ध एक परम त्रिकाली चेतना ही को अंगीकार करके शुद्ध ज्ञान धनरूप निज महिमा में स्थिति करके क्यों केवल ज्ञानादि प्रगट नहीं करते हैं—ऐसा कह कर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्र० ११५—मैं चेतना प्राण वाला हूँ—ऐसे शुद्ध निश्चयनय को अंगीकार करने और मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग के दिष्य में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्षप्राप्त गाथा ३१ में कहा है कि (१) मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की श्रद्धा छोड़कर मैं चेतना प्राण वाला हूँ—ऐसे शुद्ध निश्चयनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्म कार्य में जागता है तथा (२) मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय में जागता है वह अपने आत्म कार्य में मोता है। (३) इसलिए मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़ कर मैं शुद्ध चेतना प्राण वाला हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्र० ११६—मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर मैं चेतना प्राण वाला हूँ—ऐसे शुद्ध निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय—मैं चेतना प्राण हूँ—ऐसा स्वद्रव्य और मैं दस प्राणवाला हूँ—ऐसा परद्रव्य को किसी को किसी में मिला कर निरूपण करना है। सो मैं दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका

त्यागकरना । (२) निश्चयनय—मैं चेतना प्राणवाला हूँ-ऐसा स्वद्रव्य और मैं दस प्राणवाला हूँ ऐसा—परद्रव्य । इस प्रकार निश्चयनय स्वद्रव्य-परद्रव्य का यथावत निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है । मैं चेतना प्राण वाला हूँ-सो ऐसे ही शुद्ध निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना ।

प्र० ११७—आप कहते हो कि मैं दस प्राण वाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना तथा मैं चेतना प्राण वाला हूँ-ऐसे शुद्ध निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना । यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे है ?

उत्तर--(१) जिन मार्ग में कही तो मैं चेतना प्राण वाला हूँ-ऐसे शुद्ध निश्चयनय को मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ ऐसे ही है”-ऐसा जानना । (२) तथा कही मैं दस प्राण वाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे “ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है”-ऐसा जानना । (३) मैं दस प्राणवाला नहीं हूँ, मैं तो चेतना प्राणवाला हूँ—इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण है ।

प्र० ११८—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि “मैं दस प्राणवाला भी हूँ” इस प्रकार हम निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करते हैं । क्या उन महानुभावों का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हा बिल्कुल गलत है, क्योंकि ऐसे महानुभावों को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नहीं है । तथा उन महानुभावों ने निश्चय-व्यवहार दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर कि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मैं दस प्राणवाला भी

हूँ-और शुद्ध निश्चयनय से मैं चेतना प्राणवाला भी हूँ-इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करना जिनवाणी में नहीं कहा है।

प्र० ११६-मैं दस प्राणवाला हूँ-यदि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश जिनवाणी में किसलिये दिया। मैं चेतना प्राणवाला हूँ-ऐसे एक मात्र शुद्ध निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार में किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नहीं है। उसी प्रकार मैं दस प्राणवाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के बिना मैं चेतना प्राणवाला हूँ-ऐसे परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इसलिए मैं दस प्राणवाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश है। (२) मैं चेतना प्राणवाला हूँ-ऐसे शुद्ध निश्चयनय का ज्ञान कराने के लिये, मैं दस प्राणवाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय द्वारा उपदेश देते हैं। व्यवहारनय, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है, परन्तु अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय अगोकार करने योग्य नहीं है।

प्र० १२०-मैं दस प्राणवाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना, मैं चेतना प्राणवाला हूँ-ऐसे शुद्ध निश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसे समझाइये।

उत्तर—शुद्ध निश्चयनय से आत्मा चेतना प्राणवाला है उसे जो नहीं पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये। इसलिये उनको अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से आत्मा दस प्राणवाला, नौ प्राणवाला, आठ प्राणवाला है। इस प्रकार प्राण सहित जीव की पहचान हुई।

प्र० १२१-मैं दस प्राणवाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत

व्यवहारनय से जीव की पहचान कराई, तब मैं दस प्राणवाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय में दस प्राण रूप पर्याय को जीव कहा सो प्राणी को ही जीव नहीं मान लेना। प्राण तो जीव के सयोग रूप है। शुद्ध निश्चयनय से चेतना प्राण वाला जीव भिन्न है, उस ही को जीव मानना। चेतना प्राण वाला आत्मा के सयोग से प्राणी को भी उपचार से जीव कहा-सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से जड़प्राण जीव होते ही नहीं-ऐसा श्रद्धान करना।

प्र० १२२-मैं दस प्राण वाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है-उस जीव को जिनवाणी में किस किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—मैं दस प्राण वाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है (१) उसे पुरुषार्थ सिद्धियुपाय में “तस्य देशना नास्ति” कहा है। (२) उसे समयसार कलश ५५ में ‘यह उसका अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।’ (३) इसे प्रवचनसार गाथा ५५ में “पद-पद पर धोखा खाता है।” (४) उसे आत्मावलोकन में “यह उसका हराम-जादीपना है।

प्र० १२३-चेतना प्राण क्या है और किसको होते हैं ?

उत्तर—चेतना प्राण त्रिकाल पारिणमिक भाव रूप से है और निगोद से लगा कर सिद्ध भगवान तक के सर्व जीवों के चेतना प्राण एक समान सदा विद्यमान रहता है। चेतना प्राण के आश्रय से ही धम की प्राप्ति वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्र० १२४-प्राणी में ज्ञेय-हेय-उणदेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) सयोग रूप जड प्राण व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। (२) क्षयोपशमरूप भाव प्राण ज्ञेय-हेय है। (३) चेतना प्राण आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (४) चेतना प्राण के आश्रय से जो ज्ञान व कलादि प्रगट हुआ है वह एक देश प्रगट करने योग्य उपादेय है। (५) चेतना प्राण के परिपूर्ण आश्रय से जो क्षायिक दशा प्रगट हुई है वह पूर्ण प्रगट करने योग्य उपादेय है।

प्र० १२५—अनादि से ससार क्यों है ?

उत्तर—जड प्राणों में अपने पने की मान्यता से ही ससार है। जब तक जीव देह प्रधान विषयो का ममत्व नहीं छोड़ता तब तक वह पुनः पुनः अन्य-अन्य प्राण धारण करता है।

प्र० १२६—इन जड प्राणों का सम्बन्ध कैसे हटे ?

उत्तर—मैं चेतना प्राण वाला हूँ ऐसा अनुभव करे तो इन दस प्राणों में ममत्वपना मिटकर क्रम से सिद्ध दशा की प्राप्ति हो तब प्राणों का सम्बन्ध ही नहीं बनेगा।

प्र० १२७—तीसरी गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—जीव द्रव्य से पुद्गल विपरीत है। डमलिये चेतनामयी परमात्म द्रव्य ही मैं हूँ—ऐसी भावना करनी चाहिये।

प्र० १२८—सिद्ध भगवाद् में कौन-कौन से प्राण होते हैं ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनय से चेतना प्राण तो है ही। पर्याय में जो क्षायिक दशा प्रगट हो जाती है उसे भी भाव प्राण कहते हैं। इस प्रकार सिद्ध भगवान् के चेतना प्राण और उसके आश्रय से शुद्ध दशा प्राण होते हैं।

प्र० १२९—साधक ज्ञानी के कौन कौन से प्राण होते हैं ?

उत्तर—(१) चेतना प्राण तो शुद्ध निश्चयनय से है ही। (२) पर्याय में अपनी-अपनी भूमिकानुसार जो शुद्धि प्रगट होती है वह भाव प्राण आनन्द रूप है। (३) जड प्राण ज्ञेय रूप है। (४) जो अशुद्धि है वह हेय रूप है।

प्र० १३०-थोड़े में इस गाथा में क्या बताया है ?

उत्तर-अपने चेतना प्राण का आश्रय ले तो सुखी हो ।

प्र० १३१-उपयोग अधिकार में कितनी गाथाएँ ली गई हैं ।

उत्तर-उपयोग अधिकार को तीन गाथाओं में समझाया गया है ।

उपयोग अधिकार (दर्शनोपयोग के भेद)

उपयोगो दुर्वियप्पो दसण णाण च दंसण चदुधा ।

चक्खु अचक्खू ओही दसणमध केवल णेय ॥ ४ ॥

अर्थ -(उपयोगो), उपयोग (दुर्वियप्पो) दो प्रकार का है (दसण च णाणं) दर्शन और ज्ञान । (दसण) इनमें से दर्शनोपयोग (चदुधा) चार प्रकार का (णेय) जानना चाहिये । (चक्खु अचक्खू ओही अध केवल दसणम्) चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन ।

प्र० १३२-उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर-चैतन्य का अनुसरण करके होने वाले आत्मा के परिणाम को उपयोग कहते हैं ।

प्र० १३३-उपयोग का द्रव्य और गुण क्या है ?

उत्तर-(१) चेतन जीव द्रव्य है । (२) ज्ञान-दर्शन गुण है । ज्ञान-दर्शन का एक नाम चैतन्य है ।

प्र० १३४-उपयोग के कितने भेद हैं ?

उत्तर-दो भेद हैं--दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग ।

प्र० १३५-चक्षु दर्शन किसको कहते हैं ?

उत्तर-चक्षु इन्द्रिय के द्वारा होने वाले मतिज्ञान से पहले के सामान्य प्रतिभास को चक्षुदर्शन कहते हैं ।

प्र० १३६-अचक्षु-दर्शन किसको कहते हैं ?

उत्तर-चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियो और मन के

द्वारा होने वाले मतिज्ञान से पहले के सामान्य प्रतिभास को अचक्षु-दर्शन कहते हैं ।

प्र० १३७—अवधि-दर्शन किसको कहते हैं ?

उत्तर—अवधि ज्ञान के पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास को अवधि दर्शन कहते हैं ।

प्र० १३८—केवल दर्शन किसको कहते हैं ?

उत्तर—केवल ज्ञान के साथ होने वाले सामान्य प्रतिभास को केवल दर्शन कहते हैं ।

प्र० १३९—दर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदार्थों के भेद रहित सामान्य प्रतिभास को दर्शनोपयोग कहते हैं ।

प्र० १४०—दर्शन कब उत्पन्न होता है ?

उत्तर—छद्मस्थ जीवों के ज्ञान के पहले और केवल ज्ञानियों के ज्ञान के साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है ।

प्र० १४१—शास्त्रों में आता है कि दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोप-शम-क्षय के अनुसार उपयोग होता है ?

उत्तर—निमित्त कारण का ज्ञान कराने के लिए उपचार कथन है ।

प्र० १४२—चार प्रकार के दर्शनों में श्रुतदर्शन और मन पर्यय दर्शक के नाम क्यों नहीं आये ?

उत्तर—श्रुतदर्शन और मन पर्यय दर्शन नहीं होते हैं, क्योंकि श्रुतज्ञान और मन पर्यय ज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होते हैं ।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्ठवियप्प मदि सुद ओही अणाणणाणि ।

मणपज्जय केवलमवि पच्चक्ख परोक्ख भेय च ॥५॥

अर्थ —(मति सुद ओही अणाणणाणि) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि-

ज्ञान मति ज्ञान, श्रुत अज्ञान, अवधि अज्ञान (अवि) और (मणउज्जय केवलण) मन पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान-इस प्रकार (णाण) ज्ञानोपयोग (अट्टविप्प) आठ प्रकार का है। (च) और वह ज्ञानोपयोग (पच्चक्ख पणोक्खभेय) प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है।

प्र० १४३—ज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदार्थों के विणेष प्रतिभास को ज्ञानोपयोग कहते हैं।

प्र० १४४—ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं ?

उत्तर—आठ भेद है। पाँच ज्ञान रूप और तीन अज्ञान रूप।

प्र० १४५—ज्ञानोपयोग के पाच ज्ञानरूप भेद कौन-कौन से हैं और तीन अज्ञानरूप भेद कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान—ये पाच ज्ञानरूप भेद है। (२) कुमति, कुश्रुत और कुअवधि—ये तीन अज्ञान रूप भेद है।

प्र० १४६—मतिज्ञान किसको कहते हैं ?

उत्तर—(१) पराश्रय की बुद्धि छोड़कर दर्शन उपयोग पूर्वक स्व सन्मुखता से प्रगट होने वाले निज आत्मा के ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं। (२) इन्द्रिय और मन जिसमे निमित्त मात्र है—ऐसे ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं।

प्र० १४७—श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्ध से अन्य पदार्थ को जानने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। (२) आत्मा की शुद्ध अनुभूति रूप श्रुतज्ञान को भावश्रुतज्ञान कहते हैं।

प्र० १४८—अवधिज्ञान किसको कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा सहित रूपोपदार्थ के स्पष्ट ज्ञान को अवधि ज्ञान कहते हैं।

प्र० १४६—मन पर्यय ज्ञान किसको कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा सहित दूसरे के मन में स्थित रूमी विषय के स्पष्ट ज्ञान होने को मन पर्यय ज्ञान कहते हैं।

प्र० १५०—केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो तीन कालवर्ती सर्व पदार्थों को (अनन्त धर्मात्मक सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय को) प्रत्येक समय में यथास्थित परिपूर्ण रूप से स्पष्ट और एकसाथ जानता है उसको केवलज्ञान कहते हैं।

प्र० १५१—श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य में क्रमवद्ध पर्याय होती है, आगे-पीछे नहीं होती है।

प्र० १५२—तीन अज्ञानरूप ज्ञान मिथ्यादृष्टियों को किस-किस प्रकार हैं ?

उत्तर—(१) चारों गणियों के मिथ्या दृष्टियों को कुमति-कुश्रुत तो होते ही हैं। (२) मिथ्यादृष्टि देव-देवियों तथा नारकियों को कुअवधि भी होता है। (३) किसी-किसी मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यच के भी कुअवधि होता है।

प्र० १५३—पाँच ज्ञानरूप ज्ञान ज्ञानियों की किस-किस प्रकार हैं ?

उत्तर—(१) सम्यक मति—सम्यक श्रुत—ये दो ज्ञान छद्मस्थ सम्यग्दृष्टियों को होते ही हैं। (२) अवधि ज्ञान किसी-किसी छद्मस्थ सम्यग्दृष्टियों को होता है। (३) देव-नारकी सम्यग्दृष्टियों को सुमति-सुश्रुत-सुअवधि-ये तीन होते हैं। (४) मन पर्यय ज्ञान किसी-किसी भावनिगी मुनि के होता है। (५) तीर्थंकर देव को मुनिदशा में तथा गणधर देव को मन पर्यय ज्ञान नियम से होता है। (६) केवल ज्ञान केवली और सिद्ध भगवन्तो को होता है।

प्र० १५४—एक समय में एक जीव के कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

उत्तर—एक समय में एक जीव के कम से कम एक और अधिक

से अधिक चार ज्ञान हो सकते हैं। खुलासा इस प्रकार है (१) केवल ज्ञान एक ही होता है। (२) दो-मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं। (३) तीन-मति-श्रुत अवधि ज्ञान अथवा मति-श्रुत मन पर्यय ज्ञान होते हैं। (४) चार-मति-श्रुत अवधि और मन पर्यय ज्ञान होते हैं।

प्र० १५५-ज्ञान को मिथ्याज्ञान क्यों कहा है ?

उत्तर-मिथ्या दृष्टियों का मति-श्रुतज्ञान अन्य ज्ञेयों में लगता है, किन्तु प्रयोजन भूत जीवादि तत्त्वों के यथार्थ निर्णय में नहीं लगता होने से मिथ्या दृष्टियों के ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहा है।

प्र० १५६-ज्ञान को अज्ञान क्यों कहा है ?

उत्तर-तत्त्वज्ञान का अभाव होने से ज्ञान को अज्ञान कहा है।

प्र० १५७-ज्ञान को कुज्ञान क्यों कहा है ?

उत्तर-अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं करने की अपेक्षा से कुज्ञान कहा है।

प्र० १५८-ज्ञान के दूसरी तरह से कितने भेद हैं ?

उत्तर-दो भेद हैं-परोक्ष और प्रत्यक्ष।

प्र० १५९-परोक्ष ज्ञान कौन-कौन से हैं ?

उत्तर-कुमति-कुश्रुत, सुमति-सुश्रुत ये चार ज्ञान परोक्ष हैं।

प्र० १६०-प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

उत्तर-दो भेद हैं-विकल और सकल।

प्र० १६१-विकल्पज्ञान कौन-कौन से हैं ?

उत्तर-कुअवधि-सुअवधि और मन पर्यय ज्ञान विकल ज्ञान हैं।

प्र० १६२-सकल प्रत्यक्ष कौन सा ज्ञान है ?

उत्तर-केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

प्र० १६३-ज्ञान-दर्शन के द्वारह भेद किस-किस भाव में आते हैं ?

उत्तर- [१] केवल ज्ञान और केवल दर्शन क्षायिक भाव में आते हैं। [२] बाकी दस भेद क्षायोपशमिक भाव में आते हैं। [३] इन

दस उपयोगो मे जितना ज्ञान-दर्शन का अभाव है वह औदयिक भाव मे आते है । तथा गाथा ६ मे “शुद्ध ज्ञान-दर्शन” पारिणामिक भाव मे आता है ।

प्र० १६४-औपशमिक भाव कहां गया ?

उत्तर—ज्ञान-दर्शन-वीर्य मे औपशमिक भाव नही होता है ।

उपयोग जीव का लक्षण है

अट्ठचटुणाण दसण सामण्ण जीव लक्खण भणिय ।

व्यवहारा शुद्धणया शुद्ध पुण दसण णाण ॥ ६ ॥

अर्थ —(व्यवहारा) व्यवहारनय से (अट्ठचटु णाण दसण) आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन को (सामण्ण) सामान्य (जीव लक्खण) जीव का लक्षण (भणिय) कहा गया है । (पुण) और (शुद्धणया) शुद्ध निश्चयनय से (सुद्ध दसण णाण) शुद्ध दर्शन और ज्ञान को ही जीव का लक्षण कहा गया है ।

प्र० १६५-चार दर्शनोपयोग आठ ज्ञानोपयोग के भेदो के लिये छठी गाथा मे ‘सामान्य’ शब्द क्या बतलाने को कहा है ?

उत्तर—इसमे दो कारण है । (१) १२ भेदो मे ससारी और मुक्त का पृथक्-पृथक् कथन न करने के कारण “सामान्य” शब्द कहा है । (२) ‘शुद्ध दर्शन-ज्ञान’ ऐसा कथन न करके ज्ञान-दर्शनोपयोग के ‘सामान्यतया’ भेद किये है । अतः १२ भेदो मे से यथा सम्भव जिस जीव के जो लागू पडे, वह उस जीव का लक्षण समझना चाहिए ।

प्र० १६६-गाथा चार से छह तक मे उपयोग का अर्थ क्या समझना चाहिए और क्या नहीं समझना चाहिये ?

उत्तर—(१) गाथा चार से छह तक मे ‘उपयोग’ का अर्थ ज्ञान-दर्शन का उपयोग समझना चाहिये । (२) चारित्रगुण की जो शुभोपयोग-अशुभोपयोग-बुद्धोपयोग अवस्था है, वह यहा नही समझना चाहिये ।

प्र० १६७-गाथा ४ से ६ तक मे व्यवहार किसे कहा और निश्चय किसे कहा है ?

उत्तर—दर्शनोपयोग के चार और ज्ञानोपयोग के आठ भेदों को व्यवहार कहा है और 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' को निश्चय कहा है ।

प्र० १६८-द्रव्यसंग्रह की तीसरी गाथा मे किसे व्यवहार कहा और किसे निश्चय कहा है ?

उत्तर—दस जड़ प्राणों को व्यवहार कहा है और शुद्ध चेतना प्राण को निश्चय कहा है ।

प्र० १६९-उपयोग अधिकार में सम्यक् श्रुत प्रमाण और नय किस प्रकार हैं ?

उत्तर—(१) ज्ञान-दर्शन के भेदों को और शुद्ध दर्शन-ज्ञान त्रिकाली को एक साथ जानना सम्यक् श्रुत प्रमाण है । (२) ज्ञान-दर्शन के भेदों को गौण करके 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' त्रिकाली को जानना वह निश्चयनय है । (३) 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' त्रिकाली को गौण करके ज्ञान-दर्शन के भेदों को जानना वह व्यवहारनय है ।

प्र० १७०-मिथ्यादृष्टि के कुमति-कुश्रुत-कुअवधि होते हैं—इस कथन को किस नय से कहेंगे ?

उत्तर—उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से

प्र० १७१-छद्मस्थ साधक जीव के मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय ज्ञान होते हैं—इस कथन को किस नय से कहेंगे ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से ।

प्र० १७२-केवली भगवान को केवल दर्शन और केवल ज्ञान है—इस कथन को किस नय से कहेंगे ?

उत्तर—अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से ।

प्र० १७३-उपयोग अधिकार की तीनों गाथा का सार क्या है ?

उत्तर—“शुद्ध दर्शन-ज्ञान’ त्रिकाली ज्ञायक का आश्रय ले तो

कुमति-कुश्रुतादि का अभाव करके साधक दशा के मति-श्रुतादि को प्रगट करके क्रम से केवल ज्ञान-केवल दर्शन प्रगट करे यह उपयोग अधिकार की तीन गथाओ का सार है ।

प्र० १७४-परमात्मप्रकाश गाथा १०७ में भेदों के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—मति ज्ञानादि पाँच विकल्प रहित जो 'परमपद' है वह साक्षात् मोक्ष का कारण है ।

प्र० १७५-समयसार गाथा २०४ में इन भेदों के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—“जिसमे समस्त भेद दूर हुये है ऐसे आत्म स्वभावभूत ज्ञान का ही अवलम्बन करना चाहिये । ज्ञान सामान्य के अवलम्बन से ही (१) निजपद की प्राप्ति होती है । (२) भ्रान्ति का नाश होता है । (३) जीव तत्त्व का लाभ होता है । (४) अनात्मा (अजीव तत्त्व का) का परिहार सिद्ध होता है । (५) द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म बलवान नहीं होते है । (६) राग-द्वेष-मोह उत्पन्न नहीं होते अर्थात् आश्रय उत्पन्न नहीं होता है । (७) राग-द्वेष-मोह बिना पुन कर्मस्त्रिव उत्पन्न नहीं होता अर्थात् सवर उत्पन्न होता है । (८) कर्म बन्ध नहीं होता अर्थात् बन्ध का अभाव होता है । (९) पूव बद्ध कर्म भुक्त होकर निर्जरा को प्राप्त हो जाते है । (१०) फिर समस्त कर्मों का अभाव होने से साक्षात् मोक्ष होता है—इसलिए शुद्ध-दर्शन-ज्ञान निज सामान्य स्वभाव को ही परमार्थ कहा है ।

प्र० १७६-जो मतिश्रुतादि भेदों को जानकर शान्ति मानता है और अपने आत्मा का आश्रय नहीं लेता है, उसे तत्त्वार्थसूत्र में क्या कहा है ?

उत्तर—‘उन्मत्तवत्’ कहा है ।

प्र० १७७-जीव को मतिश्रुतज्ञान और चक्षु-अचक्षु दर्शन होते

है—इसमें कौनसा नय लागू पड़ेगा ?

उत्तर—उपचरित असद्भूत व्यवहारनय ।

प्र० १७८—उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव को मतिश्रुत और चक्षु-अचक्षुदर्शन है - इस पर निश्चय व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइयेगा ?

उत्तर—१७९ प्रश्नोत्तर से १८८ प्रश्नोत्तर तक नीचे पढ़ियेगा ।

प्र० १७९—कोई चतुर कहता है कि मैं शुद्ध दर्शन-ज्ञान वाला हूँ—ऐसे अभेद निश्चयनय का तो श्रद्धान करता हूँ और उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मैं मतिश्रुत और चक्षु-अचक्षुदर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप व्यवहार की प्रवृत्ति करता हूँ । परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनों को झूठा बता तो हम निश्चय व्यवहार को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्याथ कहलावे ?

उत्तर—(१) मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ—ऐसा अभेदरूप निश्चयनय से जो निरूपण किया हो, उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना । (२) और मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसा उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना ।

प्र० १८०—मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग करने का और मैं शुद्ध दर्शन-ज्ञान वाला हूँ—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कहीं भगवान् अमृत चन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—(१) समयसार कलश १७३ में आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि निश्चय से मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ और उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शनवाला हूँ । यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे

समस्त अव्यवसानो को छोड़ना, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को अभेद निश्चय और भेद व्यवहार होता ही नहीं है ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि में आया है। (२) तथा स्वयं अमृत चन्द्राचार्य कहते हैं कि—मैं ऐसा मानता हूँ—ज्ञानियो को उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मैं मति श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसा भेदरूप पराश्रित व्यवहार होता है, सो सर्व ही छुड़ाया है। तो फिर सन्त पुरुष शुद्ध ज्ञान-दर्शन निश्चय को ही अंगीकार करके शुद्ध ज्ञान घनरूप निज महिमा में स्थिति करके क्यों केवलज्ञान-केवल दर्शनादि प्रगट नहीं करते हैं—ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्र० १८१—मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरूप निश्चय-नय को अंगीकार करने और मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—(१) मोक्ष प्राप्ति गाथा ३१ में कहा है कि—मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहार-नय की श्रद्धान छोड़कर मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेद रूप निश्चयनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्म कार्य में जागता है। (२) तथा मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय में जागता हूँ वह अपने आत्म कार्य में सोता है। (३) इसलिये मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का श्रद्धान करने योग्य है।

प्र० १८२—मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों

योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय—मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ अभेद वस्तु यह स्वद्रव्य का भाव । मैं मति श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—यह पर द्रव्य का भाव । इस प्रकार व्यवहारनय स्वद्रव्य के भाव और पर द्रव्य के भाव को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है । मैं मति-श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—सो ऐसे भेदरूप उपचरित असदभूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना । (२) निश्चयनय—स्व द्रव्य के भावों को और पर द्रव्य के भावों को यथावत निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है । मैं शुद्ध दर्शन-ज्ञान वाला हूँ—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना ।

प्र० १८३—आप कहते हो—मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप उपचरित असदभूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना और मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है । परन्तु जिनमार्ग में भेद-अभेदरूप निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर—(१) जिन मार्ग में मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरूप निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ ऐसे ही है”—ऐसा जानना । (२) तथा कहीं मैं मति-श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप उपचरित असदभूत व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे “ऐसे है नहीं, भेदरूप व्यवहारनय का अपेक्षा उपचार किया है”—ऐसा जानना । (३) मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला नहीं हूँ मैं तो शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ । इस प्रकार जानने का नाम ही भेद-अभेदरूप निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण है ।

प्र० १८४—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि मैं मतिश्रुत-चक्षु-

अचक्षु दर्शन भेदरूप भी हूँ और मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला अभेदरूप भी हूँ—इस प्रकार हम भेद-अभेदरूप निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करते हैं। क्या उन महानुभावों का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ, बिल्कुल ही गलत है, क्योंकि ऐसे महानुभावों को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नहीं है तथा उन महानुभावों ने अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जान करके उपचरित असद्भूत व्यवहार से मैं मति-श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला भी हूँ और निश्चय से मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला भी हूँ—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करना जिनवाणी में नहीं कहा है।

प्र० १८५—मैं मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—यदि ऐसा भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय असत्यार्थ है तो भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश जिनवाणी में किसलिये दिया ? मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे एकमात्र अभेद निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार में किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार मैं मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना, मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेद परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इसलिये मैं मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेद-रूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश है। (२) मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरूप निश्चय का ज्ञान कराने के लिये मैं मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहार का उपदेश है। भेदरूप व्यवहारनय है, उसका उपदेश भी है, जानने योग्य है, परन्तु भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्र० १८६-मैं मति-श्रुत चक्षु अचक्षु दर्शन वाला हू-ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के बिना मैं शुद्ध-ज्ञान दर्शन वाला हूँ-ऐसे अभेद निश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता है ?

उत्तर-शुद्ध निश्चयनय से मैं शुद्ध ज्ञानदर्शन वाला हूँ। उसे जो नहीं पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नहीं पाये। इसलिये उनको अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला जीव है, ऐसे जीव के विशेष किये तब मति-श्रुत चक्षु-अचक्षु वाला जीव है-इत्यादि पर्याय सहित उनको जीव की पहचान हुई। मैं मति श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ-ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना अभेदरूप निश्चय का उपदेश न होना जानना।

प्र० १८७-मैं मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ-ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना, सो समझाइये ?

उत्तर-मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन अभेद आत्मा में मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन रूप भेद किये, सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना, क्योंकि मैं मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ-ऐसा भेद तो समझाने के अर्थ किये है। निश्चय से आत्मा शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला अभेद ही है। उसी को जीव वस्तु मानना। सज्ञा-सख्या-लक्षण आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से भिन्न-भिन्न नहीं है-ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार मैं मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहार अगीकार करने योग्य नहीं है।

प्र० १८८-मैं मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ-ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है। उस जीव को जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर-मैं मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ-ऐसे भेदरूप

उपचरित असदभूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे (१) पुरुषार्थ सिद्धियुयाय श्लोक ६ में कहा है “तस्य देशना नास्ति” । (२) समयसार कलश ५५ में कहा है कि “यह उसका अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है” । (३) प्रवचनासार गाथा ५५ में कहा है “वह पद-पद पर धोखा खाता है” । (४) आत्मावलोकन में कहा है ‘यह उनका हरामजादी-पना है।

प्र० १८६—उपयोग अधिकार की गाथा ४ से ६ तक भेदों में हेय-ज्ञेय लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) शुद्ध दर्शन ज्ञान त्रिकाली स्वभाव आस्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) कुमति-कुश्रुत-कुअवधि, चक्षु-अचक्षु दर्शन आदि हेय है। (३) साधक दशा के मति-श्रुत-अवधि-मन पर्ययज्ञान, चक्षु-अचक्षु-अवधि दर्शन एकदेश प्रगट करने योग्य उपादेय है। (४) केवल ज्ञान-केवल दर्शन पूर्ण प्रगट करने योग्य पूर्ण उपादेय है।

अमूर्तिकत्व अधिकार

वण्ण रस पच्च गधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे ।

णो सति अमूर्ति तदो व्यवहारा मुत्ति वधा दो ॥ ७ ॥

अर्थ —(णिच्चया) निश्चयनय से (जीवे) जीव द्रव्य में (वण्ण रस पच्च) पांच वर्ण, पांच रस (गधा दो) दो गध (फासा अट्ठ) आठ स्पर्श (णो मति) नहीं होते हैं। (तदो) इसलिये जीव (अमूर्ति) अमूर्तिक है। (व्यवहारा) व्यवहारनय से जीव को (वधा दो) कर्म-बन्धन होने से (मूर्ति) मूर्तिक कहा है।

प्र० १६३—प्रत्येक जीव का स्वभाव कैसा है ?

उ०—प्रत्येक जीव अनादि अनन्त अवर्ण-अगध-अरस-अस्पर्श-अशब्द आदि अनन्त गुणों का पुंज है। इसलिये प्रत्येक जीव हर समय अमूर्तिक ही है।

प्र० १६४—संसार दशा मे जीव कैसा कहने मे आता है ?

उ०—संसार दशा मे अनादि से मूर्तिक पुद्गल कर्मों के साथ उसका बन्ध है। इसलिये सयोग का ज्ञान कराने के लिये उसे मूर्तिक कहा जाता है, परन्तु मूर्तिक है नहीं।

प्र० १६५—यदि कोई जीव को मूर्तिक ही माने तो क्या दोष आवेगा ?

उ०—जीव-अजीव का भेद ही नहीं रहेगा।

प्र०—१६६—जीव को संसार दशा मे मूर्तिक किस नय से कहा जा सकता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जा सकता है कि जीव मूर्तिक है।

प्र० १६७—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव मूर्तिक है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १८६ से २०७ तक के अनुसार नीचे पढ़िये।

प्र० १६८—कोई चतुर कहता है कि मैं अमूर्तिक हूँ ऐसे निश्चय-का श्रद्धान रखता हूँ और मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की प्रवृत्ति रखता हूँ। परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनों को झूठा बता दिया, तो हम निश्चय-व्यवहार दोनों नयों को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर—मैं अमूर्तिक हूँ ऐसा निश्चयनय से जो निरूपण किया है। उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान करना और मैं मूर्तिक हूँ—ऐसा जो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना।

प्र० १६९—मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग करने का और मैं अमूर्तिक हूँ—ऐसे निश्चयनय के अंगीकार

करने का आदेश कही जिनवाणी मे भगवान अमृत चन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयसार कलग १७३ मे आदेश दिया है कि (१) मिथ्या-दृष्टि की ऐसी मान्यता है कि निश्चयनय से मैं अमूर्तिक हूँ और अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मैं मूर्तिक हूँ—यह मिथ्या अध्यवसाय है—और ऐसे ऐसे समस्त अध्यवसानो को छोड़ना, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को निश्चय-व्यवहार कुछ होता हो नहीं—ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि मे आया है। (२) स्वयं अमृत-चन्द्राचार्य कहते हैं कि मैं ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियो को जो मैं मूर्तिक हूँ—ऐसा पराश्रित व्यवहार होता है, सो सर्व ही छुड़ाया है। तो फिर सन्त पुरुष स्वयंसिद्ध एक परम अमूर्तिक आत्मा को ही अगीकार करके क्यों केवलज्ञानादि प्रगट नहीं करते हैं—ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्र० २००—मैं अमूर्तिक हूँ—ऐसे निश्चयनय को अंगीकार करने और मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्ष पाहुड गाथा ३१ मे कहा है कि (१) मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की श्रद्धा छोड़कर मैं अमूर्तिक हूँ—ऐसे निश्चयनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्म कार्य मे जागता है। तथा (२) मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय मे जागता है वह अपने आत्म कार्य मे सोता है। (३) इसलिये मे मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्र० २०१—मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर मैं अमूर्तिक हूँ—ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय—मैं अमूर्तिक हूँ ऐसा स्वद्रव्य और मैं मूर्तिक हूँ—ऐसा परद्रव्य को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। सो मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय—मैं अमूर्तिक हूँ ऐसा स्वद्रव्य और मैं मूर्तिक हूँ—ऐसा परद्रव्य। इस प्रकार निश्चयनय स्वद्रव्य-परद्रव्य का यथावत निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है। मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना।

प्र० २०२—आप कहते हो कि मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना तथा मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना। यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे है ?

उत्तर—(१) जिनमार्ग में कही तो मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ ऐसे ही है”—ऐसा जानना। (२) तथा कही मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे “ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है”—ऐसा जानना। (३) मैं मूर्तिक नहीं हूँ, मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दो नयों का ग्रहण है।

प्र० २०३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि मैं मूर्तिक भी हूँ और अमूर्तिक आत्मा भी हूँ।” इस प्रकार हम निश्चय-व्यवहार दोनों का ग्रहण करते हैं। क्या उन महानुभावों का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ, बिल्कुल गलत है क्योंकि ऐसे महानुभावों को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता ही नहीं है। तथा उन महानुभावों

ने निश्चय व्यवहार दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर कि मैं अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मैं मूर्तिक भी हूँ और निश्चयनय से मैं अमूर्तिक आत्मा भी हूँ इस प्रकार भ्रम रूप प्रवर्तन से तो निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करना जिनवाणी मे नहीं कहा है।

प्र० २०४—मैं मूर्तिक हूँ—ऐसा यदि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश जिनवाणी मे किसलिये दिया। मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ—एक मात्र ऐसे निश्चयनय का ही निरूपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को मलेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नहीं है। उसी प्रकार मैं मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे परमार्थ का उपदेश अशक्य है—इसलिए मैं मूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार का उपदेश है। (२) मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का ज्ञान कराने के लिये मैं मूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के द्वारा उपदेश देते है। व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है, परन्तु व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्र० २०५—मैं मूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसे समझाइये।

उत्तर—निश्चयनय से आत्मा अमूर्तिक है, उसे जो नहीं पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे, तब तो वे समझ नहीं पाये। इसलिये उनको अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से आत्मा मूर्तिक है—इस प्रकार मूर्तिक सहित जीव की उन्हें पहचान हुई।

प्र० २०६—मैं मूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्भूत

व्यवहारनय से जीव की पहचान कराई । तब मैं मूर्तिक हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना चाहिये ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से स्पर्श-रस-गंध-वर्ण मूर्तिक को जीव कहा सो मूर्तिक को ही जीव नहीं मान लेना । मूर्तिक पुद्गल तो जीव के सयोग रूप है । निश्चयनय से अमूर्तिक आत्मा मूर्तिक पुद्गल से भिन्न है, उस ही को जीव मानना । अमूर्तिक आत्मा के सयोग से मूर्तिक को भी उपचार से जीव कहा सो कथन मात्र ही है । परमार्थ से मूर्तिक वाला जीव होता ही नहीं-ऐसा श्रद्धान करना ।

प्र० २०७—मैं मूर्तिक आत्मा हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है-उस जीव को जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—मैं मूर्तिक आत्मा हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है-(१) उसे पुरुषार्थ सद्द्विधुपाय में “तस्य देशना नास्ति” कहा है । (२) उसे समयसार कलश ५५ में “यह उसका अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है” । (३) उसे प्रवचनसार गाथा ५५ में “पद-पद पर धोखा खाता है ।” (४) उसे आत्मावलोकन में “यह उसका हराम-जादीपना है ।” ऐसा कहा है ।

प्र० २०८-अमूर्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनमें आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गंध और पाँच वर्ण ना हो उसे अमूर्त कहते हैं ।

प्र० २०९—आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गंध और पाँच वर्ण का स्पष्ट खुलासा कहाँ देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला तीसरे भाग में विश्व पाठ में प्रश्नोत्तर १०६ से १८१ तक देखियेगा ।

प्र० २१०—इस गाथा मे निश्चयनय-व्यवहारनय क्या बतलाता है ?

उत्तर—(१) निश्चयनय जीव की त्रैकालिक अमूर्तिकता को बताता है । (२) व्यवहारनय पुद्गल कर्म के साथ का अनादि सम्बन्ध बताता है । इन दोनों नयों का विषय परस्पर विरोधी है, परन्तु उसके एक साथ रहने में विरोध नहीं है ।

प्र० २११—तीसरी गाथा में और इस गाथा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—तीसरी गाथा में पुद्गल प्राणों के साथ का व्यवहार सम्बन्ध बतलाया है और इस सातवीं गाथा में पुद्गल कर्म के साथ का व्यवहार सम्बन्ध बतलाया है ।

प्र० २१२—अमूर्तिक अधिकार को जानने का क्या-क्या लाभ होना चाहिये ?

उत्तर—(१) पुद्गल द्रव्यकर्म से मुक्त आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है इसलिए मुझे वह हानि-लाभ नहीं कर सकता है । (२) अपने अमूर्तिक त्रैकालिक ध्रुव स्वभाव का आश्रय करने से धर्म की गुरुता, वृद्धि और पूर्णता होती है । (३) आत्मा में पूर्ण शुद्धता होने पर पुद्गल कर्म के साथ का आत्यन्तिक वियोग होकर आत्मा में सिद्ध दशा हो जाती है ।

प्र० २१३—अमूर्तिक इस अधिकार में हेय-ज्ञेय-उपादेय समझाइये ?

उत्तर—(१) अस्पर्श, अरस, अगन्ध, अवर्ण, अगन्ध, अमूर्तिक त्रिकाली ध्रुव स्वभाव आश्रय करने योग्य परम उपादेय है । (२) अमूर्त त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से प्रगट शुद्ध पर्याये प्रगट करने योग्य उपादेय है । (३) साधक दशा में जितना अस्थिरता का राग है वह हेय है । (४) द्रव्यकर्म का सम्बन्ध व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है ।

प्र० २१४—छहढाला में अमूर्तिक को किस नाम से सम्बोधन किया है और उसका अर्थ क्या है ?

उत्तर—(१) विनमूरत नाम से सम्बोधन किया है । (२) विन-

मृत अर्थात्- आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेगी मूर्ति नहीं है ।

प्र० २१५—विनमूरत का स्पष्ट वर्णन कहा देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेग रत्नमाला तीसरे भाग के पहले पाठ में प्रश्नोत्तर २०७ से २१७ तक देखियेगा ।

कर्त्ता अधिकार

पुग्गल कम्मादीण कत्ता व्यवहारदो दु णिच्चयदो ।

चेदण कम्माणदा सुद्धणया सुद्ध भावाण ॥ ८ ॥

अर्थ — (व्यवहारदो) व्यवहारनय से (आदा) आत्मा (पुग्गल कम्मा दीण) पुद्गल कर्मादि का (कत्ता) कर्त्ता है । (दु) और (णिच्चयदो) अशुद्ध निश्चयनय से (चेदण कम्माण) चेतन भाव कर्मों का कर्त्ता है । तथा (शुद्धाणया) शुद्ध निश्चयनय से (शुद्ध भावानाम) शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन स्वरूप चैतन्य आदि भावों का कर्त्ता है ।

प्र० २१६—कर्तृत्व और अकर्तृत्व क्या है ?

उत्तर—ये सामान्य गुण हैं, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में पाये जाते हैं ।

प्र० २१७—कर्तृत्व और अकर्तृत्व क्या बताता है ?

उत्तर—(१) प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी अवस्था का कर्त्ता है यह कर्तव्य गुण बताता है । और (२) पर की अवस्था का कर्त्ता नहीं हो सकता है—यह अकर्तृत्व गुण बताता है ।

प्र० २१८—कर्तृत्व और अकर्तृत्व गुण के कारण जीव किसका कर्त्ता है और किसका कर्त्ता नहीं है ?

उत्तर—(१) चैतन्य स्वभाव के कारण जीव जप्ति तथा द्रविश का कर्त्ता है, द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्त्ता नहीं है । (२) अज्ञान दशा में शुभाशुभ विकारी भावों का कर्त्ता है, विकारी भावों के निमित्तरूप द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्त्ता सर्वथा नहीं है । (३) जीव हस्तादि शरीर की क्रिया का कर्त्ता तो कदापि नहीं है ।

प्र० २१६—जीव घट-पट, रोटी खाने, बोलने आदि का कर्ता कहा जाता है वह किस अपेक्षा से है ?

उत्तर—जीव को अत्यन्त भिन्न वस्तुओं का कर्ता उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, कर्ता है नहीं ।

प्र० २२०—जीव उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से अत्यन्त भिन्न पदार्थों का कर्ता कहा जाता है इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो का स्पष्टीकरण समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार देखकर प्रश्नोत्तर स्वयं बनाओ ।

प्र० २२१—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरो का, आहारादि छह पर्याप्ति योग्य पुद्गल पिण्ड नोकर्मों का तथा ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का कर्ता जीव को किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कर्ता कहा जाता है, कर्ता है नहीं ।

प्र० २२२—जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का कर्ता है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो का स्पष्टीकरण समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार देखकर प्रश्नोत्तर स्वयं बनाओ ।

प्र० २२३—जीव शुभाशुभ विकारी भावों का कर्ता किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्व्यवहारनय से कहा जाता है ।

प्र० २२४—शुभाशुभ विकारी भावों का कर्ता उपचरित सद्व्यवहारनय से जीव है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार देखो और समझो ।

प्र० २२५—शुद्ध भावो का कर्ता जीव को किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय मे ।

प्र० २२६—जीव अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कर्ता किस-किस का है, स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—सवर-निर्जरा-मोक्ष, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरित्र, निश्चय प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यान, ध्यान, भक्ति, समाधि आदि समस्त शुद्ध भावो का कर्ता है क्योंकि यह सब वीतरागी क्रियाये है ।

प्र० २२७—कर्ता अधिकार की आठवी गाथा मे हेय-ज्ञेय-उपादेय लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) कर्तृत्व-अकर्तृत्व गुणरूप त्रिकाली आत्मा आश्रय करने योग्य परम उपादेय है । (२) त्रिकाली आत्मा के आश्रय से जो शुद्ध दशा प्रगटी-वह प्रगट करने योग्य उपादेय है । (३) साधक दशा मे जो व्यवहार रत्नत्रयादि के विकल्प है वह हेय है । (४) द्रव्यकर्म-नोकर्मादि सब व्यवहारनय से ज्ञेय है ।

प्र० २२८—जीव द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता तो कदापि नहीं है—ऐसा कही समयसार मे बताया है ?

उत्तर—समयसार की ८५-८६ गाथा मे जो द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता जीव को मानता है वह सर्वज्ञ के मत से बाहर है और वह द्विक्रियावादी है ।

प्र० २२९—जो द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता जीव को मानता है उसे छहढाला मे किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—बहिरात्मा के नाम से सम्बोधन किया है ।

प्र० २३०—कर्ता अधिकार का सार क्या है ?

उत्तर—नित्य-निरजन-निष्क्रिय-निजात्म त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेकर पर्याय में शुद्ध भावों का कर्ता बने ।

प्र० २३१—कुम्हार ने घड़ा बनाया—इस वाक्य पर निमित्त की परिभाषा लगाकर समझाइये ?

उत्तर—कुम्हार स्वयं स्वतः घड़ा रूप न परिणमे, परन्तु घड़े की उत्पत्ति में अनुकूल होने का जिस पर आरोप आ सके उस कुम्हार को निमित्त कारण कहते हैं ।

प्र० २३२—कुम्हार ने घड़ा बनाया—निमित्त-नैमित्तिक समझाइये ?

उत्तर—मिट्टी जब स्वयं स्वतः घड़े रूप परिणमित होती है तब कुम्हार के राग का निमित्त का घड़े के साथ सम्बन्ध है यह बतलाने के लिये घड़े को नैमित्तिक कहते हैं । इस प्रकार कुम्हार का राग, घड़े के स्वतंत्र सम्बन्ध को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं ।

भोक्तृत्व अधिकार

व्यवहारा सुह दुख पुगलकम्मफल पभु जेदि ।

आदा णिच्चयणयदो चेदणभाव खु आदस्स ॥ ६ ॥

अर्थ —(व्यवहारा) व्यवहारनय से (आदा) आत्मा (सुह दुख) सुख-दुख रूप पुद्गल कर्म के फल का भोगता है । और (णिच्चयणयदो) निश्चयनय से (खु) नियम पूर्वक (आदस्स) आत्मा के (चेदणभाव) चैतन्य भावों का भोगता है ।

प्र० २३३—भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व क्या है ?

उत्तर—छहों द्रव्यों के सामान्य गुण हैं, क्योंकि यह सब द्रव्यों में पाये जाते हैं ।

प्र० २३४—भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व सामान्य गुण क्या बताते हैं ?

उत्तर—(१) प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी अवस्था का भोगता है

यह भोक्तृत्व गुण बताता है । और (२) पर की अवस्था का भोक्ता नहीं हो सकता है वह अभोक्तृत्व गुण बताता है ।

प्र० २३५--भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व सामान्य गुण के कारण जीव किसका भोक्ता है और किसका भोक्ता नहीं है ?

उत्तर-(१) अज्ञान दशा में जीव हर्ष-विषादरूप अर्थात् सुख दुःख विकारी भावों का भोगता है, विकारी भावों के निमित्तरूप द्रव्यकर्म-नोर्कर्म का भोक्ता सर्वथा नहीं है । (२) साधक दशा में अतीन्द्रिय सुख का अशत भोक्ता है । (३) केवलज्ञानादि होने पर परिपूर्ण सुख का भोक्ता है । (४) जीव पुद्गल कर्मों के अनुभाग का या पर पदार्थों का भोक्ता किसी भी अपेक्षा नहीं है ।

प्र० २३६-जीव अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों का भोक्ता है-ऐसा किस अपेक्षा से कहा जाता है ।

उत्तर-उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, वास्तव में भोक्ता है नहीं ।

प्र० २३७-जीव उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों का भोक्ता है-इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर-प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तर बनाकर दो ।

प्र० २३८-जीव औदारिक आदि शरीर, पाच इन्द्रियों का तथा आठ द्रव्य कर्मों का भोक्ता किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर-अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, वास्तव में भोक्ता है नहीं ।

प्र० २३९-जब जीव अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ, शरीर इन्द्रिया तथा द्रव्यकर्षों का भोक्ता सर्वथा नहीं है तब आगम में उनका भोक्ता कथो कहा जाता है ?

उत्तर-जीव का भाव उस समय निमित्त होने से इनका भोक्ता

है-ऐसा कहा जाता है ।

प्र० २४०-जीव अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से औदारिक आदि शरीर, पाँच इन्द्रियां तथा आठ द्रव्यकर्मों का भोक्ता है-इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तारों को समझाइये ?

उत्तर-प्रश्नोत्तर ११८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो ।

प्र० २४१-जीव हर्ष-विषाद, सुख-दुःख विकारी भावों का भोक्ता किस अपेक्षा से आगम में कहा है ?

उ०-उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है ।

प्र० २४२-साधक दशा में जीव अतीन्द्रिय सुख का भोक्ता है-किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उ०-अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है ।

प्र० २४३-केवलज्ञानी अपने परिपूर्ण सुख का भोक्ता है-किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उ०-अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है ।

प्र० २४४-भोक्तृत्व अधिकार में हेय-उपादेय-ज्ञेय किस प्रकार हैं ?

उ०--(१) भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व रूप त्रिकाली आत्मा आश्रय करने योग्य परम उपादेय है । (२) साधक दशा में अतीन्द्रिय सुख का अगत भोक्ता है और यह एक देश प्रगट करने योग्य उपादेय है । (३) केवली परिपूर्ण अतीन्द्रिय सुख का भोक्ता है-यह पूर्ण भोगने की अपेक्षा पूर्ण उपादेय है । (४) साधक को अस्थिरता सम्बन्धी सुख-दुःख हेय है । (५) साता-असाता अनुभाग का फल तथा अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ, इन्द्रियाँ आदि व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है ।

प्र० २४५-भोक्तृत्व अधिकार का सार क्या है ?

उ०-जीव यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानकर पर की और विकार

की कर्तृत्व और भोक्तृत्व बुद्धि को छोड़कर अपने सहज निर्विकार चिदानन्दस्वरूप शुद्ध पर्याय का कर्ता-भोक्ता होने का प्रयत्न करे।

— ० —

स्वदेह परिणामत्व अधिकार

अणु गुरु देह पमाणो उव सहारप्प सप्पदो चेदा ।

अस मुहदो व्यवहारा णिच्चयणयदो असख देसो वा ॥ १० ॥

अर्थ—(व्यवहारा) व्यवहारनय से (चेदा) जीव (उप सहारप्प-सप्प दो) सकोच और विस्तार के कारण (असमुह दो) समुद्घात अवस्था को छोड़कर (अणु गुरु देह पमाणो) छोटे-बड़े शरीर के प्रमाण में रहता है। (वा) और (णिच्चयणय दो) निश्चयनय से (असख्य देसो) वह लोकाकाश जितने असख्य प्रदेश वाला है।

प्र० २४६—प्रत्येक जीव का स्वक्षेत्र क्या है ?

उ०—प्रत्येक जीव का स्वक्षेत्र लोकाकाश जितना असख्यात प्रदेश वाला है। प्रदेशों की संख्या सदैव उतनी की उतनी ही रहती है, क्योंकि स्वचतुष्टय ही एक अखंड द्रव्य है।

प्र० २४७—क्या छह द्रव्यों में से किसी द्रव्य के क्षेत्र में खण्ड-टुकड़ा हो सकते हैं ?

उ०—बिल्कुल नहीं हो सकते हैं, क्योंकि सभी मूल द्रव्य अखंड हैं, उसी प्रकार प्रत्येक जीव भी अखंड द्रव्य है, इसलिये उसके खण्ड, छेदन, टुकड़ा कदापि नहीं हो सकते हैं।

प्र० २४८—प्रत्येक द्रव्य के स्वक्षेत्र से क्या सिद्ध होता है ?

उ०—प्रत्येक द्रव्य का क्षेत्र पृथक्-पृथक् है, इसलिये जीव के क्षेत्र में अन्य कोई द्रव्य प्रवेश नहीं कर सकता है और जीव भी किसी दूसरे के क्षेत्र में नहीं घुस सकता है।

प्र० २४९—पुद्गल स्कंध के तो खण्ड, छेदन, टुकड़ा हो जाता है, तब सभी मूल द्रव्य अखंड हैं यह बात कहाँ रही ?

उ०—पुद्गल स्कंध मूल द्रव्य नहीं है मूल द्रव्य तो परमाणु है।

प्र० २५०—प्रदेशत्व गुण क्या है और क्या बताता है ?

उ०—(१) प्रदेशत्वगुण प्रत्येक द्रव्य का सामान्य गुण है।
(३) प्रदेशत्वगुण के कारण प्रत्येक द्रव्य का अपना-अपना ही आकार होता है।

प्र० २५१ जीव के क्षेत्र का आकार तो छोटा-बड़ा देखने में आता है ?

उ०—(१) जीव के प्रदेश सख्या अपेक्षा लोक प्रमाण असख्यात ही रहते हैं। (२) किन्तु ससार दशा में वे प्रदेश अपने कारण से सकोच-विस्तार को प्राप्त होते हैं। इस कारण ससार दशा में जीव का आकार एकसा नहीं रहता है।

प्र० २५२ जीव के साथ शरीर का संयोग होता है, तब तो शरीर के कारण जीव का आकार बदलता होगा ?

उ०—बिल्कुल नहीं। जीव के साथ संयोगरूप जो शरीर है। उसके आकार के अनुसार जीव का अपना आकार अपने कारण से होता है, शरीर के कारण नहीं होता है।

प्र० २५३—समुद्घात किसे कहते हैं और कितने हैं ?

उ०—(१) मूल शरीर को छोड़े बिना आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है। (२) समुद्घात के सात भेद हैं। वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली।

प्र० २५४—वेदना समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—अधिक दुःख की दशा में मूल शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना।

प्र० २५५—कषाय समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—क्रोधादि तीव्र कषाय के उदय से, धारण किये हुये शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना।

प्र० २५६—विक्रिया समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—विविध क्रिया करने के लिये मूल शरीर को छोड़े बिना आत्म प्रदेशो का बाहर निकलना ।

प्र० २५७—मारणान्तिक समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—जीव मृत्यु के समय तत्काल ही शरीर को नहीं छोड़ता, किन्तु शरीर में रहकर ही अन्य जन्म स्थान को स्पर्श करने के लिये आत्म प्रदेशो का बाहर निकलना ।

प्र० २५८—तैजस समुद्घात के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—शुभ तैजस, अशुभ तैजस ।

प्र० २५९—शुभ तैजस समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—जगत को रोग या दुर्भिक्ष से दुःखी देखकर महामुनि को दया उत्पन्न होने से जगत का दुःख दूर करने के लिये, मूल शरीर को छोड़े बिना ही तपोबल से दाहिने कन्धे में से पुरुषाकार सफेद पुतला निकलता है और दुःख दूर करके पुनः अपने शरीर में प्रवेश करता है, उसे शुभ तैजस समुद्घात कहते हैं ।

प्र० २६०—अशुभ तैजस समुद्घात किस कहते हैं ?

उ०—अनिष्ट कारक पदार्थों को देखकर मुनियों के मन में क्रोध उत्पन्न होने से उनके बाये कन्धे से विलाव आकार सिन्दूरी रंग का पुतला निकलता है । वह जिस पर क्रोध हुआ हो उसका नाश करता है और साथ ही उस मुनि का भी नाश करता है उसे अशुभ तैजस समुद्घात कहते हैं ।

प्र० २६१—आहारक समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—छट्ठे गुणस्थानवर्ती, परम क्रुद्धिधारी किसी मुनि के तत्त्व सम्बन्धी शका उत्पन्न होने पर, अपने तपोबल से मूल शरीर को छोड़े बिना मस्तक में से एक हाथ जितना पुरुषाकार सफेद और शुभ पुतला निकलता है । वह केवली या श्रुत केवली के पास जाता है ।

वहा उनका चरण स्पर्श होते ही अपनी शका का निवारण करके पुन अपने स्थान मे प्रवेश करता है ।

प्र० २६२—केवली समुद्घात किसे कहते है ?

उ०—केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद मूल शरीर को छोडे बिना दड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण क्रिया करते हुए केवली के आत्म प्रदेशो का फैलना ।

प्र० २६३—केवली समुद्घात किसको होता है ?

उ०—(१) केवली समुद्घात सभी केवलियों को नहीं होता है ।
(२) किन्तु जिन्हे केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद छह मास नहीं हुये हो उन्हें । तथा छह मास के बाद भी चार अघातिया कर्मों मे से आयु कर्म की स्थिती अल्प हो तो उन्ही को नियम से समुद्घात होता है ।

प्र० २६४—जीव के प्रदेशो का आकार शरीराकार किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उ०—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, है नहीं ।

प्र० २६५—जीव के प्रदेशो का आकार शरीराकार है इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उ०—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो ।

प्र० २६६—जीव समुद्घात करता है यह किस नय से कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है ।

प्र० २६७—जीव निश्चयनय से कैसा है ?

उत्तर—जीव के जो असख्यात प्रदेश है उनकी वह सख्या सदा उतनी ही रहती है, किसी भी समय एक भी प्रदेश कम-बढ नहीं होता है । जीव के प्रदेशो की सख्या लोक प्रमाण असख्यात है । इस ल

निश्चयनय से जीव असख्यात प्रदेशी है।

प्र० २६८-स्वदेह परिमाणत्व अधिकार मे हेय-ज्ञेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) जीव सख्या अपेक्षा लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशी है, वह आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) उसके आश्रय से जो शुद्ध वीतरागी दशा प्रगटी, वह प्रगट करने योग्य उपादेय है। (३) शरीर व कर्म का संयोग सम्बन्ध व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है। (४) जो अशुद्ध दशा है वह हेय है।

प्र० २६९-दसवी गाथा का मर्म क्या है ?

उत्तर—(१) जीव को देह के साथ अपने पने की मान्यता अनादि से है। इसी मान्यता से ससार मे परिभ्रमण करता हुआ दुःखी रहता है। (२) इसलिये देहादिक को पृथक् जानकर निर्मोहरूप निज शुद्ध आत्मा का आश्रय लेकर सुख प्रगट करना चाहिये।

प्र० २७०-जीव के असंख्यात प्रदेशो मे क्या-क्या भरा हुआ है ?

उ०-ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण भरे हैं।

प्र० २७१-आत्मा को 'शून्य' क्यों कहा जाता है ?

उ०—(१) रागादि विभाव परिणामो की अपेक्षा से आत्मा को शून्य कहा जाता है। (२) परन्तु बौद्धमत के समान अनन्त ज्ञानादि गुणो की अपेक्षा से शून्य नहीं है।

प्र० २७२-आत्मा को जड़ क्यों कहा जाता है ?

उत्तर—(१) बाह्य विषय वाले इन्द्रिय ज्ञान का अभाव होने की अपेक्षा से आत्मा को जड़ कहा जाता है। (२) परन्तु साख्यमत की मान्यता के अनुसार सर्वथा जड़ नहीं है।

प्र० २७३-इस दसवी गाथा मे 'अणु' मात्र शरीर कहा है-इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—(१) उत्सेध घनागुल के असख्यातवे भाग-प्रमाण लब्धि-

अपर्याप्तिक सूक्ष्म निगोद का शरीर समझना । (२) परन्तु पुद्गल परमाणु नहीं समझना ।

प्र० २७४—इस गाथा मे “गुरु” शब्द से क्या समझना चाहिये ?

उत्तर—(१) “गुरु शरीर” शब्द से एक हजार योजन प्रमाण महामत्स्य का शरीर समझना । (२) और मध्यम अवगाहन द्वारा मध्यम शरीर समझना ।

प्र० २७५—संकोच विस्तार को समझाइये ?

उत्तर—जैसे दूध मे डाला गया पद्मराग अपनी कान्ति से दूध को प्रकाशित करता है; वैसे ही ससारी जीव अपने शरीर प्रमाण ही रहता है । गरम करने से दूध मे उफान आता है तब दूध के साथ पद्मरागमणि की कान्ति भी बढ़ती जाती है । इसी प्रकार ज्यो-ज्यो शरीर पुष्ट होता है त्यो-त्यो उसके साथ ही साथ आत्मा के प्रदेश भी फैल जाते हैं और जब शरीर दुर्बल हो जाता है तब जीव के प्रदेश भी सकुचित हो जाते हैं । ऐसा स्वतन्त्रता रूप निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है । [पचास्तिकाय गाथा ३३]

ससारित्व अधिकार

पुढ विजलतेयवाड वणप्फदी विविह थावरे इंदी ।

विग तिग चदु पचक्खा तसजीवा होति सखादी ॥ ११ ॥

अर्थ —(पुढ विजन तेय वाड वणप्फदी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (विविह थावरे इंदी) अनेक प्रकार के स्थावर एकेन्द्रिय जीव और (सखादी) गख इत्यादि (विग तिग चदु पचक्खा) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय (तस जीवा) ये त्रस जीव हैं ।

प्र० २७६—वास्तव मे जीव कैसा है ?

उत्तर—अतीन्द्रिय अमूर्त निज परमात्म स्वभावी है ।

प्र० २७७—जीवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—सिद्ध और ससारी ।

प्र० २७८—सिद्ध जीव कैसे हैं ?

उत्तर—सिद्ध जीव परिपूर्ण सुखी हैं ।

प्र० २७९—ससारी के कितने भेद हैं ?

उत्तर—तीन भेद हैं—(१) बहिरात्मा (२) अन्तरात्मा (३) परमात्मा ।

प्र० २८०—क्या विश्व के बहिरात्मा सुखी नहीं है ?

उत्तर—मात्र मिथ्या मान्यताओं के कारण चारों गतियों के बहिरात्मा परिपूर्ण दुःखी ही हैं ।

प्र० २८१ - बहिरात्मा दुःखी क्यों है ?

उत्तर—विश्व के पदार्थ व्यवहारनय से मात्र ज्ञेय है परन्तु बहिरात्मा ऐसा न मानकर पर पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि होने के कारण ही दुःखी है ।

प्र० २८२—बहिरात्मा के दुःख को स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है सो स्वयं केवल देखने वाला-जानने वाला तो रहना नहीं है, जिन पदार्थों को देखता जानता है उनमें इष्ट-अनिष्टपणा मानता है । इसलिये रागी-द्वेषी होकर किसी का सद्भाव चाहता है, किसी का अभाव चाहता है । परन्तु उसका सद्भाव या अभाव इसका किया हुआ होता नहीं । क्योंकि कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं, सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभाव रूप परिणमित होते हैं । यह बहिरात्मा वृथा ही कषाय भाव से आकुलित होता है ।

प्र० २८३—अन्तरात्मा की क्या दशा है ?

उत्तर—अन्तरात्मा अपनी शुद्धतानुसार सुखी है ।

प्र० २८४—अरहन्त परमात्मा कैसे है ?

उत्तर—अरहन्त भगवान् परिपूर्ण सुखी है ।

प्र० २८५—संसारी जीवों के दूसरी तरह से कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—स्थायर और त्रस ।

प्र० २८६—स्थायर जीव को स्पष्ट समझाओ ?

उत्तर—सभी एकेन्द्रिय जीव स्थायर जीव हैं, वे पाँच प्रकार के हैं । पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

प्र० २८७—त्रस जीव कौन-कौन हैं ?

उत्तर—दो इन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं ।

प्र० २८८—शास्त्रों में स्थायर-त्रस ऐसे भेद क्यों किये हैं ?

उत्तर—जीव तो औदारिक आदि शरीर इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न है अपने ज्ञान-दर्शनादि स्वभाव से अभिन्न है । उसका ज्ञान कराने के लिये व्यवहारनय से त्रस-स्थायर ऐसे भेद किये हैं ।

प्र० २८९—पंचास्तिकाय गाथा १२१ में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—शास्त्र कथित यह काय, इन्द्रियाँ, मन-सब पुद्गल की पर्याये हैं, जीव नहीं है । किन्तु उनमें रहने वाला जो ज्ञान-दर्शन है वह जीव है ऐसा जानना चाहिये ।

प्र० २९०—जीव स्थायर किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव स्थायर कहा जाता है ।

प्र० २९१—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव स्थायर है इस वाक्य पर निश्चय व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १९८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो ।

प्र० २६२—जीव त्रस किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव त्रस कहा जाता है ।

प्र० २६३—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव त्रस है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तारों को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तार १६८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तार बनाकर उत्तर दो ।

प्र० २६४—जीवों के तीन प्रकार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) असिद्ध, (२) नो सिद्ध, (३) सिद्ध ।

प्र० २६५—असिद्ध में कौन-कौन जीव आते हैं ?

उत्तर—निगोद से लगाकर चारों गतियों के जीव जब तक निश्चय सम्यग्दर्शन ना हो तब तक वे सब असिद्ध ही हैं ।

प्र० २६६—नो सिद्ध जीव में कौन-कौन आते हैं ?

उत्तर—नो का अर्थ अल्प है । चौथे गुण स्थान से जीव को 'नो सिद्ध' कहा जाता है । इसलिये अन्तरात्मा ईपत् सिद्ध अर्थात् 'नो सिद्ध' कहा जाता है ।

प्र० २६७—सिद्ध कैसे हैं ?

उत्तर—रत्नत्रय प्राप्त सिद्ध हैं ।

प्र० २६८—शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध बुद्ध एक स्वभावी होने पर भी जीव स्थावर-त्रस क्यों होता है ?

उत्तर—अपने शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव को भूलकर इन्द्रियो सुखों में रुचि पूर्वक आसक्त होकर त्रस-स्थावर जीवों का घात करता है—इसलिये त्रस-स्थावर होता है ।

प्र० २६९—त्रस स्थावर ना बनना पड़े उसके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—अपने एक शुद्ध-बुद्ध स्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की

प्राप्ति करे तो त्रस-स्थावर ना होकर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो ।

प्र० ३००—मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी क्या यह जीव पृथ्वीकाय कहला सकता है और यह पृथ्वीकाय मे क्यो जाता है ?

उत्तर—(१) जैसे हम पृथ्वीकाय पर चलते है । दबने से जो दु ख का वह अनुभव करता है, लेकिन वह कुछ कह नहीं सकता है, उसी प्रकार मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी मै सब को दबाऊ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण ना कर सके । ऐसा भाव करता है उस समय वह पृथ्वीकाय ही है क्योंकि “जैसी मति वैसी गति” होती है । (२) ऐसे भाव के समय यदि आयु बन्ध हो गया तो “पृथ्वीकाय” की योनि मे जाना पडेगा । जहाँ निरन्तर तुझे सब दबायेगे और तू एक शब्द भी उच्चारण न कर सकेगा ।

प्र० ३०१—कोई कहे हमें पृथ्वीकाय न बनना पडे उसका क्या उपाय है ?

उत्तर—मै सब को दबाऊ और मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण ना कर सके, ऐसे भाव रहित अस्पर्श शुद्ध-बुद्ध स्वभावी निज भगवान है । उसका आश्रय ले तो भगवान पना पर्याय मे प्रगट हो जावेगा ।

प्र० ३०२—मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी क्या यह जीव जलकाय कहला सकता है और यह जलकाय में क्यो जाता है ?

उत्तर—(१) जैसे तालाब का पानी ऊपर से देखने पर एक जैसा लगता है । लेकिन कही दो गज का खड्डा है, कही तीन गज का खड्डा है, कही ऊचा है, कही नीचा है, उसी प्रकार मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी ऊपर से चिकनी-चुपडी वाते करता है, अन्दर कपट रखता है । वह जीव उस समय ‘जलकाय’ ही है, क्योंकि “जैसी मति वैसी गति” होती है । (२) ऐसे भाव के समय यदि आयु का बन्ध हो गया तो ‘जलकाय’ की योनि मे जाना पडेगा ।

प्र० ३०३- कोई कहे हमे 'जलकाय' की 'योनि' में ना जाना पड़े उसका कोई उपाय है ?

उत्तर—छल कपट रहित तेरी आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो जलकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि मुक्तिरूपी सुन्दरी का नाथ बन जावेगा।

प्र० ३०४-मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी क्या यह जीव अग्निकाय कहला सकता है और यह अग्निकाय में क्यों जाता है ?

उत्तर—जैसे-रोटी बनाने के बाद तवे को उतारते हैं तो तवे में टिम-टिम की चिंगारियाँ दिखती हैं। तो लोग कहते हैं कि तवा हँसता है, परन्तु वह वास्तव में अग्निकाय के जीव है, उसी प्रकार मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी दूसरे को बढता हुआ देखकर ईर्ष्या करता है उस समय वह जीव 'अग्निकाय' ही है, क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। (२) यदि उस समय आयु का बन्ध हो गया तो 'अग्निकाय' की योनि में जाना पड़ेगा जहाँ निरन्तर जलने में ही जीवन बीतेगा।

प्र० ३०५-कोई कहे अरे भाई हमे 'अग्निकाय' की योनि में ना जाना पड़े-ऐसा कोई उपाय है ?

उत्तर—ईर्ष्या रहित तेरा त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो अग्निकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि पर्याय में तीन लोक का नाथ बन जावेगा।

प्र० ३०६—दिगम्बर धर्म व मनुष्य भव होने पर भी क्या यह जीव 'वायुकाय' कहला सकता है और यह वायुकाय में क्यों जाता है ?

उत्तर—जैसे हवा के झोके कभी तेज, कभी मन्द चलते रहते हैं, स्थिर नहीं रहते हैं, उसी प्रकार जो मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म

होने पर भी जहाँ पर जन्म-मरण के अभाव की बात चलती है, उसके बदले अन्य बात का विचार करता है, ऊघता है या अन्य अस्थिरता करता है। वह जीव उस समय वायुकाय ही है, क्योंकि “जैसी मति-वैसी गति” होती है। (२) यदि अस्थिरता के भावों के समय आयु का बन्ध हो गया तो “वायुकाय” की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर अस्थिरता ही बनी रहेगी।

प्र० ३०७—कोई कहे हमें वायुकाय नहीं बनना है तो हम क्या करें ?

उत्तर—अस्थिरता के भावों से रहित परमपारिणामिक है भाव। उसकी ओर दृष्टि करे तो वायुकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि क्रम से पूर्णक्षायिकपना प्रगट करके पूर्ण सुखी हो जावेगा।

प्र० ३०८—दिगम्बर धर्म व मनुष्यभव होने पर भी क्या यह जीव ‘वनस्पतिकाय’ कहला सकता है, और यह वनस्पतिकाय में क्यों जाता है ?

उत्तर—जैसे बाज़ार से सब्जी लाते हैं, आप उसे चाकू से काटते हैं, वह आपसे कुछ नहीं कहती है, उसी प्रकार मनुष्यभव पाने पर भी ‘मैं दूसरों को ऐसा मारूँ’, वह एक पग भी न चल सके—ऐसा भाव करता है वह उस समय वनस्पतिकाय ही है, क्योंकि ‘जैसी मति वैसी गति’ होती है। (२) यदि ऐसे भावों के समय आयु का बन्ध हो गया तो वनस्पतिकाय की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर दुःख उठाना पड़ेगा।

प्र० ३०९—कोई कहे हमें ‘वनस्पतिकाय’ में न जाना पड़े, इसका कोई उपाय है ?

उत्तर—मैं सबको मारूँ और वह एक पग भी आगे न बढ़ सके—ऐसे-ऐसे भावों से रहित तेरी आत्मा का अस्पर्श स्वभाव है उसका आश्रय ले तो वनस्पतिकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा—बल्कि गुण स्थानमार्गणा से रहित परमपद को प्राप्त करेगा।

प्र० ३१०-ज्ञानी-त्रस स्थावर मे क्यों उत्पन्न नहीं होते है ?

उत्तर—अपने एक शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव का आश्रय होने से तथा विषयो मे सुख अभिलाषा की बुद्धि ना होने के कारण ज्ञानी जीव त्रस-स्थावर मे उत्पन्न नहीं होते है ।

प्र० ३११-भूल का कारण थोडे मे क्या है ?

उत्तर—एक मात्र एक शुद्ध-बुद्ध निज आत्मा की दृष्टि ना करना ही भूल का कारण है—कर्म या पर वस्तु या ईश्वर भूल का कारण नहीं है ।

प्र० ३१२-यदि जीव की सिद्ध दशा न मानी जावे तो क्या क्या दोष उत्पन्न होगा ?

उत्तर—(१) यदि सिद्ध जीव न हो तो जीवो की ससारी अवस्था भी साबित नहीं होगी, क्योंकि ससारी दशा का प्रतिपक्ष भाव सिद्ध दशा है । (२) यदि जीव के ससार दशा ही नहीं होगी तो फिर धर्म करने और अधर्म को दूर करने का पुरुषार्थ ही नहीं रहेगा ।

चौदह जीव समास

समणा अमणा णेया पचेन्द्रिय णिम्मणा परे सव्वे ।

बाहर सुहुमेहदी सव्वे पज्जत इदरा य ॥ १२ ॥

अर्थ —(पचेन्द्रिय) पचेन्द्रिय जीव (समणा) मन सहित और (अमणा) मन सहित (णेया) जानना चाहिये । और (परे सव्वे) शेष सब (णिम्मणा) मन रहित जानना चाहिये । उनमे (एकेन्द्रिया) एकेन्द्रिय जीव (वादर सुहुमे) वादर और सूक्ष्म यो दो प्रकार के है । (सव्वे) और वे सब (पज्जत) पर्याप्त (प) और (इदरा) अपर्याप्त होते है ।

प्र० ३१३-जीव समास किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके द्वारा अनेक प्रकार के जीव के भेद जाने जा सके—उसे जीव समास कहते है ।

प्र० ३१४—पचेन्द्रिय जीवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—सजी और असजी ।

प्र० ३१५—एकेन्द्रिय जीवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—बादर और सूक्ष्म ।

प्र० ३१६—बादर एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो दूसरों को बाधा देते हैं और स्वयं बाधा को प्राप्त होते हैं और जो किसी पदार्थ के आधार से रहते हैं उन्हें बादर एकेन्द्रिय जीव कहते हैं ।

प्र० ३१७—सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो समस्त लोकाकाश में फैले हुए हैं, जो किसी को बाधा नहीं पहुँचाते और स्वयं किसी से बाधा को प्राप्त नहीं होते हैं—उन्हे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कहते हैं ।

प्र० ३१८—एकेन्द्रिय जीव के बादर, सूक्ष्म, दो इन्द्रिय जीव, तीन इन्द्रिय जीव, चार इन्द्रिय जीव, पाँच इन्द्रिय असैनी जीव और पाँच इन्द्रिय सैनी जीव—क्या इन सात प्रकार के जीवों के भी कुछ भेद हैं ?

उत्तर—हाँ, है । ये सातों पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से १४ भेद हैं ।

प्र० ३१९—पर्याप्त और अपर्याप्त से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—जैसे—मकान, घड़ा, वस्त्रादि वस्तुये पूर्ण और अपूर्ण होती हैं, उसी प्रकार ये सात प्रकार के जीव भी पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं ।

प्र० ३२०—इन पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार १४ प्रकार को क्या कहते हैं ?

उत्तर—इन्हे १४ जीव समास के नाम से जिनवाणी में कहा जाता है ।

प्र० ३२१—पर्याप्ति कितनी होती है ?

उत्तर—छह होती है—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा, और मन ।

प्र ३२२—एकेन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्ति होती है ?

उत्तर—चार होती है — आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वास ।

प्र० ३२३—दो इन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पचेन्द्रिय जीवों तक के कितनी-कितनी पर्याप्ति होती है ?

उत्तर—प्रत्येक को पाच-पाच पर्याप्ति होती है । आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास और भाषा ।

प्र० ३२४—संज्ञी पचेन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्ति होती हैं ?

उत्तर—छह ही होती है—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा और मन ।

प्र० ३२५—यह पर्याप्तियाँ कब पूर्ण होती हैं ?

उत्तर—एक अन्तर्मूर्हर्त में पूर्ण हो जाती है ।

प्र० ३२६—अपर्याप्तिक जीव की क्या दशा है ?

उत्तर—अपर्याप्तिक जीव एक श्वास में १८ बार जन्म-मरण करता है ।

प्र० ३२७—श्वास किसे कहते हैं ?

उत्तर निरोग पुरुष की एक बार नाडी चलने में जितना समय लगता है उसे श्वास कहते हैं ।

प्र० ३२८—श्वास की संख्या का माप क्या है ?

उत्तर—४८ मिनट में तीन हजार सात सौ तिहत्तर श्वास होते हैं ।

प्र० ३२९—पर्याप्तियों से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर—जैसे संज्ञी पचेन्द्रिय जीव जब-जब जहाँ पर उत्पन्न होता

है वहा पर इन सब पर्याप्तियों की शुरुआत एक साथ होती है, लेकिन पूर्णता क्रम से होती है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर सर्व गुणो मे अग्र रूप से शुद्धता एक साथ प्रगट हो जाती है, परन्तु पूर्णता क्रम से होती है। (१) सम्यग्दर्शन चौथे गुण स्थान मे पूर्ण हो जाता है। (२) चरित्र बारहवे गुणस्थान मे पूर्ण हो जाता है। (३) ज्ञान-दर्शन-वीर्य की पूर्णता तेरहवे गुणस्थान के शुरुआत मे हो जाती है। (४) योग की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान मे होती है।

३३०—जीव पर्याप्त और अपर्याप्त होते है—यह किस अपेक्षा से कहा जा सकता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जा सकता है, परन्तु ऐसा है नहीं।

प्र० ३३१—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

प्र० ३३२—जीव संज्ञी व असंज्ञी किस अपेक्षा कहा जा सकता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जा सकता है, परन्तु है नहीं—ऐसा जानना।

प्र० ३३३—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव संज्ञी-असंज्ञी है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

प्र० ३३४-पर्याप्ति और अपर्याप्ति मे हेय-ज्ञेय-उपादेयपना किस-किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) पर्याप्ति और अपर्याप्ति से सर्वथा भिन्न निज शुद्धात्म तत्त्व ही आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) निज शुद्धात्म तत्त्व के आश्रय से जो शुद्धि प्रगटी वह प्रगट करने योग्य उपादेय है। (३) साधक जीव के भूमिकानुसार जो राग है वह हेय है। (४) पर्याप्ति और अपर्याप्ति—ये सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है।

प्र० ३३५-पर्याप्तियों का कर्त्ता कौन है और कौन नहीं है ?

उत्तर—पर्याप्तियों का कर्त्ता पुद्गल है और पर्याप्ति उसका कर्म है। जीव से इनका सर्वथा कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है।

प्र० ३३६-जीव समास की वारहवीं गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—पर्याप्तियों और प्राणों से सर्वथा भिन्न निज शुद्धात्म तत्त्व ही आश्रय करने योग्य परम उपादेय है।

जीव के दूसरे भेद

मगगण गुण ठाणेहि य चउदसहि हवति तह असुद्धणया ।

विण्णेया ससारी सव्वे हु सुद्धणया ॥ १३ ॥

अर्थ —(तह) तथा (ससारी) ससारी जीव (असुद्धणया) असुद्धनय से (मगगण गुण ठाणेहि) मार्गणा स्थान और गुण स्थान की अपेक्षा से (चउदसहि) चौदह चौदह प्रकार के (हवति) होते हैं (सुद्धणया) शुद्ध निश्चयनय से (सव्वे) सभी ससारी जीव (हु) वास्तव में (सुद्धा) शुद्ध (विण्णेया) जानना चाहिये।

प्र० ३३७—बृहद द्रव्य संग्रह की इस गाथा के हैडिंग में क्या कहा है ?

उत्तर—“अब शुद्ध-पारिणामिक-परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्याधिक

नय से जीव ऋद्ध-वृद्ध-एक-स्वभाव वाले हैं। तो भी पश्चात् अशुद्धनय से चौदह मार्गणा स्थान और चौदह गुणस्थान सहित होते हैं—इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं”।

प्र० ३३८—शुद्ध द्रव्यार्थिक और अशुद्धनयो का विषय एक ही साथ होने पर भी (प्रथम) शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और ‘पश्चात् अशुद्ध-नय-ऐसा क्यो कहा है ?

उत्तर—(१) शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय एक ही आश्रय करने योग्य है, क्योंकि उसके आश्रय से ही जीव के धर्मरूप शुद्ध पर्याय प्रगट होती है और उसी के आश्रय से ही वृद्धि करके पूर्णता की प्राप्ति होती है। (२) अशुद्धनय के विषय के आश्रय से जीव के अशुद्ध पर्याय प्रगट होती है, इसलिये उसका आश्रय छोड़ने योग्य है। (३) ऐसा बताने के लिये शास्त्रो मे शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को प्रथम और अशुद्धनय व्यवहारनय को पश्चात् कहा गया है।

प्र० ३३९—शुद्ध पारिणामिक भाव का क्या अर्थ है ?

उत्तर—पारिणामिक का अर्थ सहज स्वभाव है। उत्पाद-व्यय रहित ध्रुव एक रूप स्थिर रहने वाला पारिणामिक भाव है।

प्र० ३४०—पारिणामिक भाव किस जीव को होता है ?

उत्तर—निगोद से लगाकर सिद्ध दशा तक सभी जीवो मे ‘त्रिकाल (अनादि अनन्त) ध्रुवरूप से शक्तिरूप से शुद्ध है’—यह होता है। कहा गया है कि “पारिणामिक भाव के बिना कोई जीव नहीं है”।

प्र० ३४१—क्या पारिणामिक भाव मे बाकी चार भाव नहीं है ?

उत्तर—नहीं है, क्योंकि औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक और क्षायिक-इन चार भावो से जो रहित जो भाव है—सो पारिणामिक भाव है।

प्र० ३४२—पारिणामिक भाव मे औपशमिक आदि चार भाव क्यो नहीं आते हैं ?

उत्तर—(१) औपशमिकादि चार भावो मे उदय-उपशम-

क्षयोपशम-क्षय जिसका निमित्तकारण है-ऐसे चार भाव हैं, और जिसमे कर्मोपाधिरूप निमित्त किंचित मात्र नहीं है, मात्र द्रव्य स्वभाव ही जिसका कारण है-ऐसा एक पारिमाणिक भाव है (२) औपशमिकादि चार भाव पर्यायरूप है और पारिणामिक भाव पर्याय रहित है। (३) इसलिये चार भावों में पारिणामिक भाव नहीं आता है।

प्र० ३४३—पारिणामिकादि पांच भावों का स्पष्ट वर्णन कहाँ देखें ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेग रत्नमाला भाग चार में देखियेगा।

प्र० ३४४—इन पांच भावों को 'परम' और 'अपरम' क्यों कहा जाता है ?

उत्तर—(१) पारिणामिकभाव त्रिकाल शुद्ध और परम है, इसलिये शुद्ध पारिणामिक भाव को 'परम भाव' कहते हैं, क्योंकि इसके आश्रय से ही शुद्ध पर्याय प्रगट-वृद्धि और पूर्णता होती है। (२) दूसरे औपशमिकादि चार भावों को 'अपरम' भाव कहते हैं क्योंकि इनके आश्रय से जीव में अशुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

प्र० ३४५—समस्त कर्मरूपी विष वृक्ष को उखाड़ फेंकने में कौन-सा भाव समर्थ है ?

उ०—परमभाव पारिणामिक त्रिकाल शुद्ध है। यह परमभाव ही समस्त कर्मरूपी विष वृक्ष को उखाड़ फेंकने में समर्थ है।

प्र० ३४६—इस गाथा में 'सर्वे शुद्धाः शुद्धयन्ते' से क्या तात्पर्य है ?

उ०—शुद्धनय से सभी जीव वास्तव में शुद्ध हैं। यहाँ शुद्धनय का अर्थ द्रव्याधिकनय है—इस दृष्टि से देखने पर सभी जीव शुद्ध जायक भाव के धारक हैं।

प्र० ३४७—इस गाथा में अशुद्धनय का वर्णन क्या बतलाने के लिये किया गया है ?

उत्तर—उन पर्यायो को जीव स्वयं स्वतः पर से निरपेक्षतया करता है। कर्म का निमित्त होने पर भी कर्म उन्हें कराता नहीं है—यह बतलाने के लिये अशुद्धनय का वर्णन इस गाथा में किया है।

प्र० ३४८—मार्गणास्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन-जिन धर्म विशेषों से जीवों का अन्वेषण (खोज) किया जाता है—उन-उन धर्म को मार्गणा स्थान कहते हैं।

प्र० ३४९—मार्गणा स्थान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चौदह भेद हैं (१) गति, (२) इन्द्रिय, (३) काय, (४) योग, (५) वेद, (६) कषाय, (७) ज्ञान, (८) समय, (९) दर्शन, (१०) लेश्या, (११) भव्यत्व, (१२) सम्यक्त्व, (१३) सञ्चित्व, (१४) आहारत्व।

प्र० ३५०—चौदह मार्गणा किस नय से कही जाती है और किस नय से नहीं है ?

उत्तर—ये सब निज त्रिकाल शुद्ध आत्मा में शुद्ध निश्चयनय के बल से नहीं हैं, अपितु अशुद्धनय से कही जाती है।

प्र० ३५१—१४ मार्गणाओं में “गति मार्गणा” बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) नरक, तिर्यच, मनुष्य, देव नाम की चार गतियाँ हैं। (२) चारों गतियों सम्बन्धी शरीर भी है। (३) चारों गतियों सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय निमित्त भी है। (४) चारों गतियों सम्बन्धी भाव भी है। (५) परन्तु निज भगवान का गति रहित अगति स्वभाव है। (६) उसका आश्रय लेकर अन्तरात्मा बनकर क्रम से परमात्मा बने यह मर्म है।

प्र० ३५२—(१) आत्मा चार गतियों के शरीर वाला है—(२) आत्मा को चार गति सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय होता है—यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है,

परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अगति स्वभाव वाला है ।

प्र० ३५३—आत्मा के चार गति सम्बन्धी भाव होते हैं—यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है ।

प्र० ३५४—१४ मार्गणाओ से "इन्द्रिय मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रूप पाँच जड इन्द्रिया है (२) पाँच इन्द्रियो सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय भी है । (३) इन्द्रियो सम्बन्धी ज्ञान का उघाड भी है । (४) परन्तु निज भगवान आत्मा इन्द्रियो मे रहित अतीन्द्रिय स्वभाव वाला है । (५) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होवे । यह मर्म है ।

प्र० ३५५—आत्मा जड पाँच इन्द्रियो वाला है । आत्मा को जड इन्द्रियो सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है । यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—अनुचरित अगद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अतीन्द्रिय स्वभाव वाला है ।

प्र० ३५६—आत्मा को इन्द्रियो सम्बन्धी ज्ञान का उघाड है—यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है ।

प्र० ३५७—१४ मार्गणाओ से "काय मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पति-काय और त्रसकाय के भेद से छह प्रकार की है । (२) आत्मा के काय सम्बन्धी गरीर है । (३) आत्मा के काय सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय भी है । (४) आत्मा के काय सम्बन्धी ज्ञान का उघाड भी

है। (५) परन्तु काय से रहित अकाय स्वभाव वाला आत्मा है। (६) उसका आश्रय लेकर पर्याय में अकायपना प्रगट होवे। यह मर्म है।

प्र० ३५८—(१) आत्मा पृथ्वी आदि काय वाला है। (२) आत्मा को काम सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय है। यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अकाय स्वभाव है।

प्र० ३५९—आत्मा को काय सम्बन्धी ज्ञान का उघाड है—यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३६०—१४ मार्गणाओ में “योग मार्गणा” बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) मन, वचन और काय योग के भेद से योग मार्गणा के तीन प्रकार हैं। (२) विस्तार से (अ) सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप से मनोयोग चार प्रकार का है। (आ) सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप से वचन योग चार प्रकार का है। (इ) औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण—ये काययोग के सात प्रकार हैं। इस प्रकार सब मिलकर पन्द्रह प्रकार की योग मार्गणा है। (३) आत्मा के मन वचन काय सम्बन्धी जड़ योग का सम्बन्ध है। (४) आत्मा के जड़ योग सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय भी है। (५) आत्मा के मन-वचन-सम्बन्धी प्रदेशों में कम्पन भी है। (६) परन्तु भगवान् आत्मा का अयोग स्वभाव त्रिकाल पडा है। (७) उसका आश्रय लेकर पर्याय में अयोगीपना प्रगट होवे। यह मर्म है।

प्र० ३६१—(१) आत्मा जड़ मन-वचन-काय सम्बन्धी योग

वाला है। (२) आत्मा को जड मन-वचन-काय सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है—यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अयोगी स्वभाव वाला है।

प्र० ३६२—आत्मा को मन-वचन-काय सम्बन्धी योग का कम्पन है—यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३६३—१४ मार्गणाओ मे “वेद मार्गणा” बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) स्त्री वेद, पुंन्य वेद और नपुंसक वेद के भेद से वेद मार्गणा के तीन प्रकार हैं। (२) आत्मा के सयोगरूप तीन वेद सम्बन्धी पुद्गल का सम्बन्ध है। (३) आत्मा के तीन वेद सम्बन्धी द्रव्य क्रम का उदय भी है। (४) आत्मा मे तीन प्रकार वेद सम्बन्धी राग भी है। (५) परन्तु आत्मा का अवेद स्वभाव त्रिकाल पडा है। (६) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे अवेदपना प्रगट होवे—यह मर्म है।

प्र० ३६४—(१) आत्मा तीन वेद सम्बन्धी पुद्गल वाला है। (२) आत्मा के तीन वेद सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय है। यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अवेद त्रिकाल स्वभावी है।

प्र० ३६५—आत्मा के वेद सम्बन्धी राग है—यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३६६—१४ मार्गणाओ मे “कषाय मार्गणा” बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) क्रोध-मान-माया-लोभ के भेद से चार प्रकार की

कषाय मार्गणा है। विस्तार से (२) अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चार, अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, संज्वलन क्रोधादि चार, हास्य-अरति-रति आदि भेद से नौ कषाय-इस प्रकार पच्चीस प्रकार की कषाय मार्गणा है। (३) २५ कषाय सम्बन्धी शरीर की अवस्थाये है। (४) २५ कषाय सम्बन्धी चारित्र मोहनीय द्रव्य कर्म का उदय भी है। (५) २५ कषाय सम्बन्धी राग भी है। (६) परन्तु अकषाय त्रिकाली स्वभाव वाला आत्मा त्रिकाल पडा है। (७) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे स्वरूपाचरण-देश चारित्र सकल चारित्र-यथाख्यात चारित्र प्रगट करके परम यथाख्यात चारित्रप्रगट होवे-यह मर्म है।

प्र० ३६७-(१) आत्मा की २५ कषाय सम्बन्धी शरीर की अवस्था है। आत्मा के कषाय सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय है-यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर-अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अकषाय स्वभाव वाला है।

प्र० ३६८-आत्मा मे २५ कषाय सम्बन्धी राग है-यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर-उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३६९-१४ मार्गणाओ मे "ज्ञान मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर-(१) मति, श्रुत, अवधि मन पर्याय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि-इस प्रकार आठ प्रकार की ज्ञान मार्गणा है। (२) इन भेदो से रहित त्रिकाल ज्ञान स्वरूप भगवान आत्मा है। (३) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे कुमति-कुश्रुत और कुअवधि का अभाव करके मति-श्रुतादि प्रगट कर क्रम से केवलज्ञान की प्राप्ति होवे-यह ज्ञान मार्गणा का मर्म है।

प्र० ३७०-१४ मार्गणाओ मे “सयम मार्गणा” बतलाने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर-(१) सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहार विगुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात रूप से पाच प्रकार का चारित्र तथा सयमा-सयम और असयम ये दो प्रतिपक्ष रूप भेद मिलाकर सात प्रकार की सयम मार्गणा है। (२) चारित्र गुणादि रूप त्रिकाल भगवान एक रूप पडा है। (३) उसका आश्रय लेकर प्रथम स्वरूपाचरण की प्राप्ति करके क्रम से सामायिक आदि की वृद्धि करके यथाख्यात की प्राप्ति होवे-यह सयम मार्गणा का मर्म है।

प्र० ३७१-१४ मार्गणाओ मे “दर्शन मार्गणा” के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर-(१) चक्षु-अचक्षु-अवधि और केवल दर्शन के भेद से चार प्रकार की दर्शन मार्गणा है। (२) दर्शन गुणादि रूप त्रिकाली भगवान आत्मा पडा है। (३) उसका आश्रय लेकर केवल दर्शन की प्राप्ति होवे-यह दर्शन मार्गणा को जानने का मर्म है।

प्र० ३७२-१४ मार्गणाओ मे “लेश्या मार्गणा” बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर-(१) परमात्म द्रव्य का विरोध करने वाली कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल के भेद से लेश्या छह प्रकार की है। (२) परन्तु अलेश्या त्रिकाली स्वभाव एक रूप पडा है। (३) उसका आश्रय लेकर लेश्याओ का अभाव करके पूर्ण अलेश्यापना पर्याय मे प्रगट होवे-यह लेश्या मार्गणा को जानने का मर्म है।

प्र० ३७३-१४ मार्गणाओ मे “भव्य मार्गणा” के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर-(१) भव्य और अभव्य के भेद से दो प्रकार की भव्य मार्गणा है। (२) भव्य-अभव्य से रहित त्रिकाल परमात्म द्रव्य एक

रूप पडा है । (३) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे सिद्ध दशा की प्राप्ति होवे-यह भव्य अभव्य मार्गणा को जानने का मर्म है ।

प्र० ३७४—१४ मार्गणाओ मे “सम्यक्त्व मार्गणा” बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व के भेद से सम्यक्त्व मार्गणा—मिथ्या दर्शन, सासादन और मिश्र इन तीन विपरीत भेदो सहित छह प्रकार की सम्यक्त्व मार्गणा है । (२) श्रद्धा गुण सहित अभेद आत्मा त्रिकाल पडा है । (३) उसका आश्रय लेकर मिथ्यादर्शनादि अभाव करके प्रथम औपशमिक की प्राप्ति कर, क्षायोपशमिक की प्राप्ति कर, क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होवे-यह सम्यक्त्व मार्गणा को जानने का मर्म है ।

प्र० ३७५—१४ मार्गणाओ मे “संज्ञित्व मार्गणा” बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) सजी और असजी के भेद से संज्ञित्व मार्गणा दो प्रकार की है । (२) सजी और असजी से रहित निज परमात्मा स्वरूप एक रूप पडा है । (३) उसका आश्रय लेकर पूर्ण धर्म की प्राप्ति होवे-यह संज्ञित्व मार्गणा को जानने का मर्म है ।

प्र० ३७६—१४ मार्गणाओ में “आहार मार्गणा” बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) आहारक और अनाहारक जीवो के भेद से आहार मार्गणा भी दो प्रकार की है । (२) त्रिकाल अनाहारकपना त्रिकाल पडा है । (३) उसका आश्रय लेकर मोक्ष की प्राप्ति होवे-यह आहार मार्गणा को जानने का मर्म है ।

प्र० ३७७—गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर—मोह और योग के सद्भाव या अभाव से जीव के श्रद्धा-चारित्र-योग आदि गुणो की तारतम्यतारूप अवस्था विशेष को गुण-स्थान कहते है ।

प्र० ३७८-गुणस्थान कितने है ?

उत्तर-१४ भेद है-मिथात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यक्त्व, देश विरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्प्रदाय उपशान्त मोह, क्षीण मोह, सयोगी केवली और अयागी केवली ।

प्र० ३७९-(१) मिथ्यात्व गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-(१) सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का विपरीत श्रद्धान, (२) जीवादि तत्त्वों में विपरीत मान्यता, (३) स्व-पर की एकत्व श्रद्धा, (४) अतत्त्व श्रद्धा ।

प्र० ३८०-(२) सासादन गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्व की ओर जाना ।

प्र० ३८१-(३) मिश्र गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के परिणामों का एक ही साथ होना ।

प्र० ३८२-(४) अविरत गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-सम्यक्त्व तो है ही और साथ में स्वरूपाचरण चारित्र भी है । किन्तु अशक्तिवश किसी प्रकार के निश्चयव्रत और चारित्र को धारण न कर सके ।

प्र० ३८३-(५) देश संयत गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-सम्यक्त्व सहित एकदेश निश्चय चारित्र का पालन करना ।

प्र० ३८४-(६) प्रमत्त संयत गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-सम्यक् चारित्र की भूमिका में अहिंसादि शुभोपयोग रूप महाव्रतों का पालन करता है, यह प्रमाद है । (याद रहे सर्वथा नग्न दिगम्बर दशा पूर्वक ही मुनिपद होता है)

प्र० ३८५-(७) अप्रमत्त सयत्त गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-प्रमाद रहित होकर आत्म स्वरूप में सावधान रहना ।

प्र० ३८६-(८) अपूर्व करण गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-सातवे गुणस्थान से ऊपर विशुद्धता में अपूर्व रूप से उन्नति करना ।

प्र० ३८७-(९) अनिवृत्ति करण गुण स्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-आठवे गुणस्थान से अधिक उन्नति करना ।

प्र० ३८८-(१०) सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-समस्त कपायो का उपशम अथवा क्षय होना और मात्र सज्जलन लोभ कषाय का सूक्ष्मरूप से रहना ।

प्र० ३८९-(११) उपशान्त गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-कपायो का सर्वथा उपशम हो जाना ।

प्र० ३९०-(१२) क्षीण कषाय गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-कपायो का सर्वथा क्षय हो जाना ।

प्र० ३९१-(१३) सयोग केवली गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-केवलज्ञान प्राप्त होने पर भी योग की प्रवृत्ति होना ।
(वे सब १८ दोष रहित होते हैं)

प्र० ३९२-(१४) अयोग केवली गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर-केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद योग की प्रवृत्ति भी बन्द हो जाना ।

प्र० ३९३-ये चौदह गुणस्थान किस नय से हैं और किस नय से नहीं हैं ?

उत्तर-ये चौदह गुणस्थान अशुद्धनय से हैं । शुद्ध निश्चयनय के केवल से नहीं हैं ।

प्र० ३९४-इस गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—(१) जीव तो परमार्थ से चैतन्य शक्ति मात्र है। (२) वह अविनाशी होने से शुद्ध पारिणामिक भाव कहलाता है। वह भाव ही ध्येय (ध्यान करने योग्य) है। (३) किन्तु वह ध्यानरूप नहीं है, क्योंकि ध्यान पर्याय विनश्वर है, और शुद्ध पारिणामिक भाव द्रव्यरूप है। अविनाशी है। इसलिये वही आश्रय करने योग्य है—यह गाथा का तात्पर्य है।

प्र० ३६५—जीव गुणस्थान-मार्गणा स्वरूप हैं—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उ०—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

— ० —

सिद्धत्व—विस्त्रसा उर्ध्व गमनत्व अधिकार

णिककम्मा अट्ठ गुणा किचूणा चरम देह दो सिद्धा ।

लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पा दवयेहि सजुत्ता ॥ १४ ॥

अर्थ —(णिककम्मा) ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित (अट्ठगुणा) सम्यक्त्वादि अष्ट गुण सहित (चरम देहदो) अन्तिम शरीर से (किचूणा) कुछ न्यून (लोयग्गठिदा) लोक के अग्रभाग में स्थित (णिच्चा) ध्रुव-अविनाशी (उप्पादवयेहि) उत्पाद और व्यय से (सजुत्ता) सहित जीव (सिद्धा) सिद्ध हैं।

प्र० ३६६—१४वीं गाथा में क्या बताया है ?

उत्तर—दो अधिकारों का वर्णन किया है। (१) सिद्धत्व, (२) उर्ध्वगमन।

प्र० ३६७—सिद्ध अधिकार में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) ज्ञानावरणादि आठ कर्म रहित। (२) सम्यक्त्वादि आठ गुणों सहित। (३) अन्तिम शरीर से कुछ न्यून—सिद्ध भगवान हैं।

प्र० ३६८—उर्ध्वगमन अधिकार में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) लोक के अग्रभाग में स्थित है। (२) नित्य है।
(३) उत्पाद-व्यय से संयुक्त है—यह उर्ध्वगमन अधिकार में बताया है।

प्र० ३६९—सिद्धों के आठ गुण कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—(१) सम्यक्त्व, (२) ज्ञान, (३) दर्शन, (४) वीर्य,
(५) सूक्ष्मत्व, (६) अवगाहन, (७) अगुरुलघु, (८) अव्याबाध—इन
सर्व गुणों की परिपूर्ण ऋद्ध पर्याये सिद्ध होती है।

प्र० ४००—क्या सिद्धों में आठ ही गुण होते हैं ?

उत्तर—व्यवहार से अष्ट गुण और निश्चय से अनन्त गुण सिद्ध
भगवन्तों के होते हैं।

प्र० ४०१—जब सिद्धों में अनन्त गुण प्रगट हो गये हैं, तो
आठ गुणों का ही वर्णन क्यों किया है ?

उत्तर—मध्यम रुचि वाले शिष्यों की अपेक्षा से व्यवहारनय से
आठ गुणों का ही वर्णन किया है।

प्र० ४०२—क्या शिष्य कई रुचि वाले होते हैं ?

उत्तर—(१) संक्षेप रुचि वाले शिष्य। (२) विस्तार रुचि वाले
शिष्य। (३) मध्यम रुचि वाले शिष्य—इस प्रकार तीन रुचि वाले
शिष्य होते हैं।

प्र० ४०३—संक्षेप रुचि वाले शिष्यों के प्रति सिद्धों के लिये
संक्षेप में क्या बताया जाता है ?

उ०—(१) अभेदनय से सिद्ध भगवान् अनन्त ज्ञानादि चार सहित।
(२) अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख त्रय सहित। (३) केवलज्ञान-दर्शन दो
सहित। (४) साक्षात् अभेदनय से शुद्ध चैतन्य ही एक गुण है—इस
प्रकार संक्षेप रुचि वाले शिष्यों के अपेक्षा से संक्षेप में कहा जाता है।

प्र० ४०४—विस्तार रुचि वाले शिष्यों को क्या बताया
जाता है ?

उत्तर—विशेष अभेदनय की अपेक्षा से सिद्ध भगवान् में (१)

निर्गतित्व, (२) निरिन्द्रियत्व, (३) निष्कायत्व, (४) निर्योगत्व, (५) निर्वेदत्व, (६) निष्कपायत्व, (७) निर्नामत्व, (८) निर्गोत्रत्व, (९) निरायुत्व इत्यादि अनन्त विशेष गुण तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्वादि अनन्त सामान्य गुण—इस प्रकार आगम से अविरोध से जानना चाहिये।

प्र० ४०५—सिद्धो के आठ गुणों में से केवलज्ञान और केवलदर्शन का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(१) केवलज्ञान=त्रिकाल-तीन लोकवर्ती समस्त वस्तुगत अनन्त धर्मों को युगपत् विशेष रूप से प्रकाशित करे। (२) केवलदर्शन=उन सबको युगपत् सामान्य रूप से प्रकाशित करे।

प्र० ४०६—सिद्धो के आठ गुणों में से अनन्तवीर्य और क्षायिक सम्यक्त्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(३) अनन्त वीर्य—अनन्त पदार्थों को जानने में खेद के अभाव रूप दशा (४) क्षायिक सम्यक्त्व—समस्त जीवादि तत्वों के विषय में विपरीत अभिनिवेश रहित परिणति का होना।

प्र० ४०७ सिद्धो के आठ-आठ गुणों में से सूक्ष्मत्व और अवगाहनत्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(५) सूक्ष्मत्व—सूक्ष्म अतीन्द्रिय केवलज्ञान का विषय होने से सिद्धो के स्वरूप को सूक्ष्म बताता है। (६) अवगाहनत्व—जहाँ एक सिद्ध हो वहाँ अनन्त समाविष्ट होते हैं।

प्र० ४०८—सिद्धो के आठ गुणों में से अगुरुलघुत्व और अव्यावाधत्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(७) अगुरुलघुत्व=जीवों में छोटे बड़े पने का अभाव। (८) अव्यावाधत्व=किसी से बाधा को प्राप्त ना होना।

प्र० ४०९—और सिद्ध कैसे हैं ?

उत्तर—तेरहवें गुणस्थान के अन्त भाग में नासिकादि छिद्र पुरे

हो जाते हैं और एक चैतन्यधन विम्ब हो जाता है, इसलिये सिद्धो का आकार चरम देह से कुछ न्यून होता है। (२) लोकाग्र में स्थित है। (३) उत्पाद-व्यय सहित है।

प्र० ४१०-१४वीं गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—(१) केवली सिद्ध भगवान रागादिरूप परिणामित नहीं होते हैं और वे ससार अवस्था को नहीं चाहते—यह श्रद्धान का बल जानना चाहिये। (२) जैसा सात तत्वों का श्रद्धान छदमस्थ को होता है वैसा ही केवली-सिद्ध भगवान के भी होता है। (३) इसीलिये जानादिक की हीनता-अधिकता होने पर भी तिर्यचादिक और केवली-सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व गुण समान ही जानना। (४) इसलिये सभी जीवों को वैसा श्रद्धान प्रगट करना चाहिये और आगे बढ़ने का प्रयास चालू रखना चाहिये।

प्र० ४११-सिद्धों के उत्पाद-व्यय को समझाइये ?

उत्तर—(१) सिद्धत्व हो गया वह बदलकर ससारीपना नहीं हो सकता है। (२) यदि प्रति समय उत्पाद-व्यय ना हो तो द्रव्य के सत्पने का नाश हो जावे, क्योंकि “उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत्” ऐसा आगम का वचन है।

सातवाँ अधिकार

वीतराग-विज्ञान प्रश्नोत्तरी

प्र० १—शुद्ध श्रावक धर्म प्रकाश में पृष्ठ ३५८ में क्या बताया है ?

उत्तर—भरये पंचम काले, जिन मुद्राधार ग्रन्थ सेव्वस्से,
साडे सात करोड जाइये, निगोय मज्जिभि ॥
[१०८ विवेक सागर महाराज कृत शुद्ध श्रावक धर्म प्रकाश श्री
दिगम्बर जैन समाज मारोठ (राजस्थान) से प्रकाशित]

प्र० २—क्या तीर्थंकरों के आठ वर्ष की अवस्था में पंचम गुण-स्थान आ जाता है ? यह कहाँ लिखा है ?

उत्तर—(१) पार्श्वनाथ भगवान की पूजा में आया है । (२) उत्तर पुराण आचार्य गुणभद्र कृत प्रकाशक भारतीय ज्ञान पीठ बनारस में—
स्वापुराधष्ठ वर्णेभ्यः, सर्वेषां परतो भवेत् ।

उदिताष्ट कपायाणां तीर्थेणो देश सयम ॥ ३५ ॥

अर्थ —“जिनके प्रत्याख्यान और मज्जलन सम्बन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ इन आठ कषायों का ही केवल उदय रह जाता है, ऐसे सभी तीर्थंकरों के अपनी आयु के प्रारम्भिक आठ वर्ष के बाद देश सयम हो जाता है । (अपनी आयु के आठ वर्ष हो जाने के बाद जिनको अनन्तानुबन्धी चार और अप्रत्याख्यानावरण चार के शमित हो जाने के कारण सभी तीर्थंकरों को देश सयम की प्राप्ति हो जाती है) तथा ३६ वे श्लोक में बताया है कि “यद्यपि उनके भोगोपभोग की प्रचुरता थी तो भी वे अपनी आत्मा को अपने वस में रखते थे । छनकी वृत्ति नियमित थी तथा असंख्यात गुणी निर्जरा का कारण थी ।

प्र० ३—जैसे समयसार में गाथा ४६ है; उसी प्रकार यह गाथा

अन्य किस किस शास्त्र मे है ?

उत्तर—(१) प्रवचनसार मे १७२वी गाथा है। (२) नियमसार मे ४६वी गाथा है। (३) पचास्तिकाय मे १२७वी गाथा है। (४) अष्टपाहुड (भाव पाहुड) मे ६४वी गाथा है। (५) धवला ग्रन्थ तीसरे भाग मे यह गाथा है। (६) पद्मनन्दी पंच विशति मे भी यह गाथा है। (७) लघु द्रव्य सग्रह मे भी यह गाथा है।

प्र० ४—केवली क्या जानते है ?

उत्तर—अनन्त ज्ञान द्वारा तो अनन्त गुण-पर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यो को युगपत् विशेषपने से प्रत्यक्ष जानते है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २]

प्र० ५—सिद्ध भगवान के दर्शन से क्या लाभ होता है ?

उत्तर—जिनके ध्यान द्वारा भव्य जीवो को स्वद्रव्य (निज जीवतत्त्व का) परद्रव्य का (अजीवतत्त्व का) और औपाधिक भाव (आस्रवबन्ध, पुण्य-पाप) स्वभाव भावो का (सवर-निर्जरा और मोक्ष का) विज्ञान होता है। जिसके द्वारा उन सिद्धो के समान स्वयं होने का साधन होना है। इसलिये साधने योग्य जो अपना शुद्ध स्वरूप उसे दर्शाने को प्रतिबिम्ब समान है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३]

प्र० ६—प्रयोजन किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके द्वारा सुख उत्पन्न हो तथा दुःख का विनाश हो—उस कार्य का नाम प्रयोजन है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ ६]

प्र० ७—सासारिक प्रयोजन के लिये भक्ति करने से क्या होता है ?

उत्तर—इस प्रयोजन के (सासारिक कार्यों के) हेतु अरहतादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कपाय होने के कारण पाप बन्ध ही होता है। इसलिए अपने को (मोक्षार्थी को) इस प्रयोजन का अर्थ होना योग्य नहीं है। अरहतादि की भक्ति करने से ऐसे प्रयोजन तो स्वयमेव ही सिद्ध होते है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक]

प्र० ८—श्रद्धानी जैनी अन्यथा क्या नहीं जानते हैं ?

उत्तर—जिनको अन्यथा जानने से जीव का बुरा हो ऐसे देव-गुरु-धर्मादिक तथा जीव-अजीवादिक तत्वों को तो श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानते ही नहीं। क्योंकि इनका तो जैन शास्त्रों में प्रसिद्ध कथन है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १४]

प्र० ९—कैसे शास्त्रों का वाचना-सुनना ही उचित है ?

उत्तर—जो शास्त्र मोक्षमार्ग का प्रकाश करे, वही शास्त्र वाचने-सुनने योग्य है। सो मोक्ष मार्ग एक वीतराग भाव है। इसलिये जिन शास्त्रों में किसी प्रकार राग-द्वेष-मोह भावों का निषेध करके वीतराग भाव का प्रयोजन प्रगट किया हो उन्हीं शास्त्रों का वाचना-सुनना उचित है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १४]

प्र० १०—वक्ता कैसा होना चाहिये ?

उत्तर—(१) जैन श्रद्धान में द्रढ हो। (२) जिसे विद्याभ्यास करने से शास्त्र वाचने योग्य बुद्धि प्रगट हुई हो। (३) सम्यग्ज्ञान द्वारा सर्व प्रकार के व्यवहार-निश्चयादिरूप व्याख्यान का अभिप्राय पहिचानता हो। (४) जिसे आज्ञा भग करने का भय बहुत हो। (५) जिसको शास्त्र वाचकर आजीविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा न हो। (६) जिसके तीव्र क्रोध-मान नही हो। (७) स्वयं नाना प्रश्न उठाकर स्वयं ही उत्तर दे। यदि स्वयं में उत्तर देने की सामर्थ्य न हो तो ऐसा कहे कि इसका मुझे ज्ञान नहीं है। (८) जिसके अनीतिरूप लोक निन्द्य कार्यों की प्रवृत्ति न हो। (९) जिसका कुल हीन न हो, अगहीन न हो, स्वर भग न हो, मिष्ट वचन हो तथा प्रभुत्व हो। ऐसा वक्ता होना चाहिये। (१०) सुगुरु ही के उपदेश को कहने वाला उचित श्रद्धानी श्रावक उससे धर्म सुनना योग्य है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १५ से १७ तक में से]

प्र० ११—जैन शास्त्रों का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर—जैन शास्त्रों के पदों में तो कषाय मिटाने का तथा

लौकिक कार्य घटाने का प्रयोजन है । [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १३]

प्र० १२—जिन धर्म क्या है ?

उत्तर—सर्व कषायो का जिस-तिस प्रकार से नाश करने वाला है वह जिन धर्म है । [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १२]

प्र० १३—नवीन श्रोता कैसा होता है ?

उ०—(१) मैं कौन हूँ ? मैं कैलाश चन्द्र नाम धारी शरीर नहीं हूँ । मैं तो ज्ञान-दर्शन का धारी ज्ञायक आत्मा हूँ । (२) मेरा स्वरूप क्या है ? ज्ञाप्ति क्रिया मेरा कार्य है । (३) यह चरित्र कैसे बन रहा है ? सुबह उठना, खाना-पीना, व्यापार करना आदि कार्य सर्वथा पुद्गल के ही है । इनसे मेरा किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है । (४) ये मेरे भाव होते हैं, उनका क्या फल लगेगा ? ये शुभाशुभविकांगी भाव एक मात्र चारों गतियों के परिभ्रमण का ही कारण है । (५) जीव दुःखी हो रहा है, सो दुःख दूर करने का क्या उपाय है ? जैसा पदार्थों का स्वरूप है वैसा श्रद्धान हो जावे तो सर्व दुःख मिट जावे । मुझको इतनी बातों का निर्णय करके कुछ मेरा हित हो सो करना—ऐसे विचार से जो उद्यमवन्त हुआ है—यह नवीन श्रोता का स्वरूप है । [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १७]

प्र० १४—सच्चा श्रोता कैसा होता है ?

उत्तर—जो आत्म ज्ञान द्वारा स्वरूप का आस्वादी हुआ है वह जिन धर्म के रहस्य का श्रोता है । क्योंकि आत्म ज्ञान हुये बिना जिन धर्म का रहस्य किसी को समझ में नहीं आ सकता है । [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १८]

प्र० १५—जिनवाणी का क्या आदेश है ?

उत्तर—उचित शास्त्र को उचित वक्ता होकर वाचना, उचित श्रोता होकर सुनना योग्य है । [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १८]

प्र० १६—मोक्षमार्ग प्रकाशक क्या प्रकाशित करता है ?

उत्तर—जिस प्रकार सूर्य तथा सर्व दीपक है, वे मार्ग को एकरूप ही प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार दिव्यध्वनि तथा सर्व ग्रन्थ है, वे मोक्षमार्ग को एकरूप प्रकाशित करते हैं। सो यह मोक्षमार्ग प्रकाशक भी मोक्षमार्ग को प्रकाशित करता है [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १६]

प्र० १७—इस जीव का मुख्य कर्तव्य क्या है ?

उत्तर—(१) इस जीव का तो मुख्य कर्तव्य आगम ज्ञान है। (२) उसके होने से तत्त्वों का श्रद्धान होता है। (३) तत्त्वों का श्रद्धान होने से सयम भाव होता है। (४) और उस आगम ज्ञान से आत्म ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। (५) तब सहज ही मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २०]

प्र० १८—निमित्त-नैमित्तिक क्या बताता है ?

उत्तर—तथा इस बन्धान में कोई किसी को करता तो है नहीं। जब तक बन्धान रहे—विच्छेद नहीं और कारण-कार्यपना उनके बना रहे। इतना ही यहाँ बन्धान जानना। सो मूर्तिक-अमूर्तिक के इस प्रकार बन्धान होने में कुछ विरोध है नहीं। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४]

प्र० १९—घात का क्या अर्थ है ?

उत्तर—शक्ति की व्यक्तता नहीं हुई, अतः शक्ति अपेक्षा स्वभाव है। उसका व्यक्त न होने देने की अपेक्षा घात किया कहते हैं। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २५]

प्र० २०—जीव के जीवत्वपने का निश्चय किस से होता है ?

उत्तर—उन कर्मों का क्षयोपशम से जितने ज्ञान-दर्शन-वीर्य प्रगट है। वह उस जीव के स्वभाव का अंश ही है। कर्म जनित औपाधिक भाव नहीं है। सो ऐसे स्वभाव के अंश का अनादि से लेकर कभी अभाव नहीं होता है। इस ही के द्वारा जीव के जीवत्व का निश्चय जाता है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६]

प्र० २१—बन्ध का कारण कौन है ?

उत्तर—पर द्रव्य बन्ध का कारण नहीं होता । उनमें आत्मा को ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादि भाव होते हैं वही बन्ध का कारण जानना ।
[मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २७]

प्र० २२—कर्म और जीव के विषय में क्या जानना चाहिये ?

उत्तर—जीव का कोई प्रदेश कर्मरूप नहीं होता और कर्म का कोई परमाणु जीवरूप नहीं होता । अपने-अपने लक्षण को धारण किये भिन्न-भिन्न ही रहते हैं । [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४]

प्र० २३—घातिया कर्मों का बन्ध कब तक होता ही रहता है ?

उत्तर—शुभयोग हो अशुभयोग हो, सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना घातिया कर्मों की तो सर्व प्रकृतियों का निरन्तर बन्ध होता ही रहता है किसी समय किसी भी प्रकृति का बन्ध हुये बिना नहीं रहता है ।
[मोक्ष मार्ग प्रकाशक]

प्र० २४—मनुष्य जीवन का अर्थ क्या है ?

उत्तर—हेय-उपादेय-ज्ञेय का सच्चा ज्ञान—यह मनुष्य जीवन है ।

प्र० २५—हेय-ज्ञेय-उपादेय से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—मुझ आत्मा ज्ञायक और विश्व व्यवहार से ज्ञेय । (२) मैं ज्ञायक और ज्ञानपर्याय ज्ञेय । (३) ऐसा भेद भी नहीं है । वस ज्ञायक-ज्ञायक ।

प्र० २६—आत्मा का पता कैसे चले ?

उत्तर—द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से अपने को भिन्न जाने तो आत्मा का पता चले ।

प्र० २७—केवलज्ञान कैसे प्रगट होता है ?

उत्तर—आत्मा में केवलज्ञान शक्तिरूप से है । उस शक्तिवान द्रव्य का पूर्ण आश्रय लेने से पर्याय में केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थान में प्रगट होता है ।

प्र० २८—केवलज्ञान के विषय मे तीन छोटी मान्यतायें क्या-क्या है ?

उत्तर—(१) जैसे लैंडीपीपर मे चौसठपुटी चरपराहट शक्तिरूप से है किन्तु प्रगट रूप से नहीं है। उसे वर्तमान मे प्रगट रूप से माने तो वह मूर्ख ही है; उसी प्रकार आत्मा मे केवलज्ञान शक्तिरूप से है, उसे कोई व्यक्त पर्याय मे है—ऐसा माने वह निश्चयाभासी मिथ्या-द्रष्टि है। (२) जैसे कोई लैंडी पीपर चौसठ पुटी चरपराहट प्रगट माने तथा ऊपर डिब्बी का या किसी अन्य वस्तु का आवरण है—ऐसा माने तो वह भी मूर्ख है, उसी प्रकार आत्मा मे केवलज्ञान पर्याय मे प्रगट है किन्तु कर्म के आवरण के कारण रुका हुआ है—ऐसा जो मानता है वह व्यवहाराभाषी मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि जड कर्म के कारण पर्याय रुकी है यह मान्यता मिथ्यात्व है। (३) जैसे लैंडी पीपर मे चौसठ पुटी चरपराहट शक्तिरूप से है वह पत्थर से या अन्य किसी निमित्त के कारण प्रगट होती है, तो वह भी मूर्ख है, उसी प्रकार आत्मा मे केवलज्ञान शक्तिरूप से है, परन्तु निमित्त हो या शुभभाव होवे तो प्रगटे, तो वह भी व्यवहाराभाषी मिथ्यादृष्टि है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १६४ का मर्म]

प्र० २९—अरहन्त भगवान की दिव्यध्वनि मे क्या आता है ?

उत्तर—आत्मा स्वयं ही अपना प्रभु है। मैं अपना प्रभु और तू अपना प्रभु है। मेरी प्रभुता मेरे मे और तेरी प्रभुता तेरे मे। इसलिये अपनी आत्मा को पहचान कर उसके सन्मुख हो, इसी मे तेरा कल्याण है इस प्रकार सर्वज्ञदेव अरहन्त परमात्मा की दिव्यध्वनि मे आता है।

प्र० ३०—जिनवचन क्या है ?

उत्तर—वचनामृत वीतराग के, परम शान्त रस मूल।

औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल ॥

भावार्थ—(१) जिनवचन तो स्व-पर का भेदविज्ञान कराके परम

शान्ति देने वाली औषधि है। मिथ्यावासनाओं से उत्पन्न ससार रूपी रोग को मिटाने वाली है। (२) परन्तु विषयवासनाओं के कल्पित सुखों में लगे हुये नपुंसकों को जिनवचन अच्छा नहीं लगता है।

प्र० ३१—आत्मा कैसा है ?

उत्तर—शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम।

दूसरा कहिये कितना, कर विचार तो पाम ॥

भावार्थ—आत्मा शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुख का खजाना है। परम चैतन्य ज्योति स्वरूप है। यदि विचार करे तो उसकी प्राप्ति होवे। (१) शुद्ध अर्थात् पवित्र है। (२) बुद्ध अर्थात् ज्ञान-स्वरूप है। (३) चैतन्यघन अर्थात् असंख्यात प्रदेशी है। (४) स्वयं ज्योति अर्थात् सिद्ध वस्तु है। किसी से उत्पन्न और नाश नहीं हो सकती है। (५) सुखधाम अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना है। अपनी ज्ञान की पर्याय में ऐसे ज्ञायक भगवान को दृष्टि में ले तो कल्याण होवे—किसी दूसरे या विकांगी भावों से कुछ नहीं मिलेगा बल्कि दूसरे से सम्बन्ध मानेगा तो दुःख पायेगा।

प्र० ३२—मुक्ति के लिये क्या करना ?

उत्तर—एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर

समल विमल न विचारिये, येहे सिद्धि नहीं और ॥

अर्थ—[एक देखिये जानिये] अर्थात् एक वस्तु त्रिकाल भगवान पूर्णानन्द को अवलोको-यह एक को जानना है। [रमि रहिये इक ठौर] और उस एक स्थान में रमणता करना। [समल-विमल न विचारिये] निश्चय से अभेद और व्यवहार से भेद ऐसा विकल्प भी नहीं करना। [येहे सिद्धि नहीं और] यही एक मुक्ति का उपाय है दूसरा और कोई भी उपाय नहीं है।

प्र० ३३—ससार क्या है ?

उत्तर—“ससरणम् इति ससार” अपने आप का पता ना होना अर्थात् मोह, राग, द्वेष भाव ही ससार है, पर वस्तु ससार नहीं है।

उसका स्वाद आवे तब उसकी सेवा की ऐमा कहा जावेगा । भगवान् आत्मा चैतन्य स्वभाव से भरा हुआ है जिमने अन्नमुख होकर पर्याय मे जाना उसने आत्मा की सेवा करी तभी जन कहला सकता है । यही बात समयसार गाथा ६ मे कही हे-पर द्रव्य और पर भावो का लक्ष्य छोडकर आत्मा के ज्ञायक भाव की दृष्टि करे तो शुद्ध कहलाता है । कर्त्तृ-कर्म अधिकार की ६६-७० की टीका मे भी कहा है कि जो आत्मा और ज्ञान मे पृथक्पना नही देखता उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य की प्राप्ति हो जाती है । (२) केवलज्ञान का निर्णय स्वभाव सन्मुख हुये बिना नही हो सकता । जिमसे केवलज्ञान का निर्णय क्रिया वही सम्यग्दृष्टि है ।

प्र० ४४-क्या द्रव्यकर्म-नोकर्म दुःखदायी या सुखदायी है ?

उत्तर-सर्वथा नही है । मात्र जो परवस्तु मे अपना भाव जाता है चाहे वह शुभ भाव हो या अशुभ भाव हो वह ही ससार है ।

प्र० ४५-क्या करें तो दुःख मिटे ?

उत्तर-मात्र विकारी भाव दुःखरूप है पर वस्तु दुःख रूप नही है-इतना जानते-मानते ही अनादि की दुःख रूप दृष्टि का अभाव हो जाता है ।

प्र० ४६-परवस्तु दुःख सुखरूप नहीं हैं मात्र विकारी भाव दुःख रूप हैं-ऐसा जानते-मानते ही दुःख का अभाव कैसे हो जाता है-स्पष्ट समझाइये ।

उत्तर-अरे भाई-जब परवस्तु सुखदायी-दुःखदायी नही है ऐसा मानेगा तभी दृष्टि अपने विकारी स्वभाव पर चली जावेगी और विकारी भाव उत्पन्न नही होगा और बुद्ध दशा प्रगट हो जावेगी । वास्तव मे विकारी भाव छोडना नही पडता है परन्तु जब स्वभाव पर दृष्टि आई तो विकारी भाव उत्पन्न ही नही हुआ तो बोनने मे आता है कि विकारी भाव छोडे ।

प्र० ४७—क्या करें तो परिभ्रमण का अभाव हो ?

उत्तर—तू भगवान है। तेरे भगवान से किसी का भी सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। इतना जानते-मानते ही ससार का अभाव, मोक्षमार्ग की प्राप्ति और क्रम से निर्वाण की ओर गमन-वस।

प्र० ४८—क्या विश्व के द्रव्यों की पर्याय व्यवस्थित ही है ?

उत्तर—हाँ। विश्व के प्रत्येक द्रव्य और गुण की पर्याय व्यवस्थित ही है। जिस प्रकार मोती की माला में जो मोती जहाँ पर व्यवस्थित है उसी प्रकार जिस पर्याय का जो जन्मक्षण है चाहे वह पर्याय विकारी हो या अविकारी हो वह व्यवस्थित और क्रमवद्ध ही है।

प्र० ४९—विश्व के द्रव्य-गुणों की विकारी अविकारी पर्याय व्यवस्थित और क्रमवद्ध ही है—इसको जानने-मानने से क्या लाभ होना चाहिये ?

उत्तर—दृष्टि स्वभाव पर होना, चारों गतियों का अभाव होना ही इसको जानने-मानने का लाभ है। जब विश्व की पर्याय क्रमवद्ध और व्यवस्थित ही है ऐसा जानने-मानने वाला केवली के समान ज्ञाता-दृष्टा बन गया। पंच परमेष्ठियों की श्रेणी में आ गया।

प्र० ५०—ज्ञान पर्याय ग्राहक और ग्राह्य क्या है ?

उत्तर—अरे भाई अनादिकाल से अज्ञानी जीव की ज्ञान पर्याय जो ग्राहक है वह रूपी पदार्थों को ग्राह्य बनाती है जब ऐसा माना कि रूपी पदार्थों से शरीर से जरा भी सम्बन्ध नहीं है तब ज्ञान की पर्याय स्वयमेव ज्ञायक की तरफ चली जाती है। अरे भाई यह कार्य आसान है, सहजरूप है।

प्र० ५१—सात तत्वों में क्या बताना है ?

उत्तर—(१) जीव तत्व में क्या बताना है ? तू ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणों का पुंज भगवान आत्मा है। (२) अजीव तत्व में क्या बताना है ? विश्व में अजीव तत्व है परन्तु तेरा अजीव तत्व से

सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। (३) आस्रव-बंध तत्व में क्या बताना है ? तू अजीव तत्व में अपनापना मानता है तो आस्रव-बंध की उत्पत्ति होकर दुःखी होता है। (४) सवर-निर्जरा और मोक्ष में क्या बताना है ? यदि तू अजीव तत्व से अपना सम्बन्ध ना माने तो तुरन्त अपने जीव तत्व पर दृष्टि आ जावे तभी सवर-निर्जरा की शुरुआत होकर नियम से मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्र० ५२—अपने आत्मा की महिमा कैसे आवे ?

उत्तर—अरे भाई तू व्यर्थ में पर पदार्थ की महिमा में कितना पागल हो रहा है। तू अभी शरीर को छोड़कर चला जायेगा तो तेरा क्या सम्बन्ध रहेगा। ऐसा विचार करके जब पर से तेरा सम्बन्ध नहीं है ऐसा निर्णय हो जायेगा तभी अपनी आत्मा की महिमा आ जावेगी—दूसरा उपाय नहीं है।

प्र० ५३—आज देश में और प्रत्येक फिरके में क्या देखने में आ रहा है ?

उत्तर—यह मेरा—मैं इसका, इसके विरुद्ध हो उसका नाश हो—ऐसी प्रवृत्ति देखने में आ रही है। दिन प्रतिदिन ऐसी प्रवृत्ति बढ़ेगी क्योंकि पंचमकाल में दिनोदिन बुरे दिन आने हैं।

प्र० ५४—तो हमें क्या करना चाहिये ?

उत्तर—किसी के झगड़े में मत पड़ो। एक मात्र अपने अनन्त गुणों के अभेद पिण्ड में लीन होकर मुक्तिधाम के मालिक बनो।

प्र० ५५—अपने में लीनता नहीं होती तो इधर-उधर का ध्यान आ जाता है तो क्या करना ?

उत्तर—इधर-उधर ध्यान जाना मूर्खता है। भगवान् तीर्यकर दिन रात बता रहे हैं। यदि दूसरों के झगड़े में पड़ेगा तो तू निगोद में जा पड़ेगा और अपने झगड़े में पड़ेगा तो तू मोक्ष में जायेगा। अतः निर्णय कर पर के चक्कर में मत पड़।

प्र० ५६-अध्यवसाय क्या है ?

उत्तर—सुबह से शाम तक जितना कार्य दिखता है वह सब आहारवर्गणा का ही है। किसी आत्मा का या किसी दूसरी वर्गणा का नहीं है। लेकिन इन सब कार्यों को मैं करता हूँ यह मिथ्या अध्यवसाय है।

प्र० ५७-मिथ्या अध्यवसाय को खोलकर समझाइये ?

उत्तर—उठना-बैठना, खाना-पीना, भोगादि की क्रिया, दुकान खोलना-बन्द करना, दूध-पानी पीने की क्रिया आदि सब आहार-वर्गणा का कार्य है—इन सब कार्यों को मैं करता हूँ मैं भोगता हूँ आदि एकत्व बुद्धि मिथ्या अध्यवसाय है। यह अध्यवसाय अनन्त ससार का कारण है।

प्र० ५८-क्या देखने में आता है ?

उत्तर—सम्यग्रदृष्टि को छोड़कर सारा विश्व दुःखी ही देखने में आता है। विश्व के समस्त मिथ्यादृष्टि कोई किसी चक्कर में, कोई किसी चक्कर में है जरा भी चैन नहीं है।

प्र० ५९ दुःखी क्यों है ?

उत्तर—जिनसे अपना किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है उन्हें अपनी बनाना चाहता है वे अपने किसी भी प्रकार नहीं बन सकते हैं। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अनादिनिधन अपनी-अपनी मर्यादा लिये परिणमे है। कोई किसी के आधीन नहीं है। कोई किसी के परिणमाया परिणमता नहीं है। ऐसा जन्म-माने तो सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो जावे।

प्र० ६०—थोड़े में जैन-दर्शन का सार क्या है ?

उत्तर—(१) दुःभाग्य भाव ससार है। (२) शुद्ध भाव मोक्ष और मोक्षमार्ग है, (३) शरीरादि नोक्कर्म व द्रव्यकर्म से तो सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

जीव-अजीव का अन्यथापना पर १२ प्रश्नोत्तर

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २२५]

प्र० १—जो जीव दिगम्बरधर्मी है, जिनाज्ञा को मानता है, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करता है, सच्चे देव-गुरु-धर्म को ही मानता है, कुगुरु-कुदेव-कुधर्म को नहीं मानता है, वह जीव तत्व का जानना किसे मानता है ?

उत्तर—जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर—यह जीव को जानना मानता है ।

प्र० २—जो जीव दिगम्बर धर्मी है, जिनाज्ञा को मानता है, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करता है, सच्चे देवादि को मानता है उसका जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर—यह जीव का जानना झूठा क्यों है ?

उत्तर—उसने सिद्ध भगवान को जीव नहीं माना , इसलिये जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर—ऐसी मान्यता वाले को जीव-अजीव का ज्ञान नहीं है ।

प्र० ३—जो जीव दिगम्बर धर्मी है, जिनाज्ञा को मानता है, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करता है, सच्चे देवादि को ही मानता है उसका जीव को जानना कि जीव के दो भेद हैं—संसारी और मुक्त । संसारी के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर । स्थावर के पाँच भेद हैं और त्रस के दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के जीव हैं—क्या उसका जीव का जानना ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल ठीक नहीं है क्योंकि अध्यात्म शास्त्रो में भेद-विज्ञान का कारणभूत जैसा जीव का निरूपण किया है वैसा न मानने के कारण उसका जीव-अजीव का जानना भी झूठा ही है ।

प्र० ४—किसी को प्रसंगानुसार अध्यात्म के अनुसार कहना आ जाये कि जीव तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप ही है । पर्याय की अपेक्षा से

त्रस-स्थावर भेद है। क्या अध्यात्म के अनुसार कहने वाला भी जीव के ज्ञान से शून्य है ?

उत्तर—अध्यात्म के अनुसार कहने वाला भी जीव के ज्ञान से शून्य है क्योंकि उसने किसी प्रसंगानुसार अध्यात्म के अनुसार कहा तो है—परन्तु अपने को (त्रिकाली निज भगवान को) आपरूप (ज्ञान-दर्शनादि गुण रूप) जानकर (धर्म की प्राप्ति कर) पर का अश भी अपने में न मिलाना और अपना अश भी पर में न मिलाना—ऐसा श्रद्धान न होने के कारण अध्यात्म के अनुसार जानकर कहने वाला भी जीव ज्ञान से शून्य ही है।

प्र० ५—जो जीव दिगम्बर जैन है, जिनाज्ञा को मानता है, निरन्तर शास्त्र का अभ्यास करता है और सच्चे देवादि को ही मानता है ऐसे मिथ्यादृष्टि जैन को समझाते हुये पं० जी ने क्या कहा है ?

उत्तर—जैसे अन्य मतावलम्बी निर्णय किये बिना मैं ज्ञानवाला हूँ, मैं काला हूँ, मैं माला जपता हूँ, मैं उपवास करता हूँ—ऐसा मानता है, उसी प्रकार दिगम्बर धर्मी होने पर, जिनाज्ञा मानने पर, निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करने पर, सच्चे देवादि को मानने पर भी आत्मा अनन्तगुणमयी है, मैं प्रवचनकार हूँ, मैं एकासन करता हूँ, मैं उपवास करता हूँ, सिद्ध चक्र का पाठ करता हूँ, मैं भगवान के दर्शन किये बिना भोजन नहीं करता हूँ। मैं रोजाना तीन बार णमोकारमंत्र की जाप जपता हूँ आदि शरीर की क्रियाओं में अपना-पना मानता है वह तो अन्यमतावलम्बी से भी बुरा है।

प्र० ६—दिगम्बर धर्मी होने पर, जिनाज्ञा मानने पर, निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करने पर और सच्चे देवादि को मानने पर भी शरीर की क्रियाओं को अपना मानने वाला अन्यमतावलम्बी से भी बुरा क्यों है ?

उत्तर—दिगम्बर शास्त्रों में निश्चय-व्यवहार अपेक्षा कथन किया

है। यहाँ व्यवहार अपेक्षा कथन किया है—ऐसा न जानने के कारण दिगम्बर धर्मी अन्यमतावलम्बी से भी बुरा ही है।

प्र० ७—दिगम्बर धर्मी होने पर अध्यात्म के अनुसार जीव-अजीव का कथन करे तो क्या उसका जीव-अजीव का श्रद्धान ठीक नहीं है ?

उत्तर—अध्यात्म अनुसार जीव-अजीव की बात करने वाला भी झूठा ही है। क्योंकि अन्तरंग श्रद्धान नहीं है। (आत्म सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है) जिस प्रकार शराबी-गराब के नशे में माँ को माँ कहे, स्त्री को स्त्री कहे वह भी सयाना नहीं है, उसी प्रकार अध्यात्म के अनुसार जीव-अजीव की बात करने वाला भी सम्यक्त्वी नहीं है।

प्र० ८—मुझ आत्मा सिद्ध समान शुद्ध है, केवलज्ञानादि सहित है, सिद्ध समान सदा पद मेरो—ऐसा निश्चयाभासी के समान अध्यात्म की बात करने वाला दिगम्बर धर्मी झूठा क्यों है ?

उत्तर—जैसे किसी और की ही बातें कर रहा हो इस प्रकार से आत्मा का कथन करता है परन्तु यह आत्मा मैं हूँ—ऐसा वर्तमान में अनुभव न होने से अध्यात्म की तरह जीव की बात करने वाला दिगम्बर धर्मी भी झूठा ही है।

प्र० ९—आत्मा ज्ञान-दर्शन का धारी है शरीर जड़ है। आत्मा से शरीर का सम्बन्ध नहीं है ऐसा व्यवहाराभासी की तरह दिगम्बर धर्मी जीव-अजीव का कथन करने वाला झूठा क्यों है ?

उत्तर—जैसे किसी और को और से भिन्न बतलाता हो; उसी प्रकार जीव-अजीव की भिन्नता का वर्णन करने वाला व्यवहाराभासी की तरह दिगम्बर धर्मी भी झूठा ही है। क्योंकि मुझ आत्मा इस शरीरादि से सर्वथा भिन्न है ऐसा आत्म स्वभाव सन्मुख निर्णय ना होने से स्व-पर की बात करने वाला दिगम्बर धर्मी भी झूठा ही है।

प्र० १०—पर्याय मे जीव-पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियायें होती है उन्हे जीव-अजीव के मिलाप से मानने वाला उभयाभासी की मान्यता की तरह दिगम्बर धर्मी का जीव-अजीव का ज्ञान झूठा क्यों है ?

उत्तर—यह जीव के भाव है उसका पुद्गल निमित्त है। यह पुद्गल की क्रिया है उसका जीव निमित्त है। ऐसा भिन्न-भिन्न स्वतंत्र निमित्त-नैमित्तिक का ज्ञान न होने से दिगम्बर धर्मी झूठा ही है।

प्र० ११—इत्यादि भाव भासित हुये बिना दिगम्बर धर्मी को जीव-अजीव का सच्चा श्रद्धानी नहीं कहते—यह कहने का क्या भाव है ?

उत्तर—मुझ आत्मा ज्ञान-दर्शन का धारी जीव तत्व है। शरीरादि सर्वथा अजीव तत्व है। इसके साथ मेरा किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार से कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नहीं है—ऐसा जानकर आस्रव-वध का अभाव करके सवर-निर्जरा न प्रगट करे तो उसे जीव-अजीव का श्रद्धानी नहीं कहते है।

प्र० १२—जीव-अजीव के जानने का प्रयोजन क्या था ?

उत्तर—अपने को आपरूप जानकर पर का अंश भी अपने मे न मिलाना और अपना अंश भी पर मे न मिलाना—यह जीव अजीव को जानने का प्रयोजन था। वह हुआ नहीं। अतः दिगम्बर धर्मी होने पर, जिनाज्ञा मानने पर, निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करने पर और सच्चे देवादि को मानने पर भी जीव-अजीव का अन्यथापना रह जाता है।

श्री समयसार गाथा ६२—६३ का मर्म

प्र० १३—यह मेरा सोने का हार है—इस वाक्य मे कैसा जाने-माने तो मिथ्यात्वादि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति हो ?

उत्तर—(१) जैसे-सोने का हार पुद्गल से एकमेक है, आत्मा से

सर्वथा भिन्न है और सोने के हार सम्बन्धी ज्ञान आत्मा से एकमेक है और सोने के हार से सर्वथा भिन्न है । (२) उसी प्रकार यह मेरा सोने का हार है इसमें सोने के हार सम्बन्धी राग पुद्गल से (सोने के हार से) एकमेक है, आत्मा में सर्वथा भिन्न है और सोने के हार सम्बन्धी राग का ज्ञान आत्मा से एकमेक है और राग से सर्वथा भिन्न है । ऐसा वस्तुस्वरूप है । (३) अज्ञानी जीव सोने के हार को अपना मानता है उसी प्रकार विश्व के भिन्न पदार्थों को अपना मानता है और सोने के हार सम्बन्धी राग को अपना मानता है , उसी प्रकार समस्त प्रकार के राग को अपना मानता है—इस कारण चारों गतियों में घूमकर निगोद में चला जाता है । (४) ज्ञानी जीव अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों को भिन्न जानता है उसी प्रकार अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों सम्बन्धी राग को भिन्न जानता है । ज्ञानी जीव विश्व के पदार्थों को व्यवहार से ज्ञेय तथा अस्थिरता सम्बन्धी राग को हेय व ज्ञेय जानता है । वैसे तो ज्ञान पर्याय ज्ञेय और मुझ आत्मा ज्ञायक है । परमार्थ से मैं आत्मा ज्ञायक और ज्ञान पर्याय ज्ञेय, ऐसे भेद से भी कार्य सिद्धि नहीं होती है । मुझ आत्मा ज्ञायक-ज्ञायक ऐसा अनुभव करता है । और क्रम से श्रेणी माडकर मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है ।

प्र० १४—जैन दिगम्बर दीक्षा लेकर आत्मकार्य करूंगा । इस वाक्य में दिगम्बर दीक्षा क्या है ?

उत्तर—तीन चौकड़ी कपाय के अभावरूप सकलचारित्र्यदशा ही दिगम्बर दीक्षा है ।

प्र० १५—श्रावकपना क्या है ?

उत्तर—दो चौकड़ी कपाय के अभावरूप देशचारित्र्यदशा ही श्रावकपना है ।

प्र० १६—सम्यग्दृष्टिपना क्या है ?

उत्तर—श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय निश्चय सम्यग्दर्शन । साथ में

स्वरूपाचरणचारित्र तथा और सर्व गुणो मे शुद्धि प्रगट होना सम्यग्दृष्टिपना है ।

प्र० १७— ज्ञेय मिश्रित ज्ञान का अनुभव है उससे विषयो की प्रधानता भासित होती है । इस प्रकार इस जीव को मोह के निमित्त से विषयो की इच्छा पाई जाती है । इस वाक्य का मर्म स्पष्ट करिये ?

उत्तर— गजब हो गया—विषयो की ही प्रधानता भासित होती है । निज भगवान् आत्मा की प्रधानता भासित नहीं होती—इसलिये सम्यग्दर्शन नहीं होता है । (१) मैं कैलाशचन्द्र (२) मैं उठा (३) मैं खड़ा (४) मैं चला (५) मैं बोला (६) मैं गिर गया (७) मैं हल्का (८) मैं भारी (९) मैं रुखा (१०) मैं चिकना (११) मैं कड़ा (१२) मैं नरम (१३) मैंने आम खाया (१४) मैंने रोटी खाई (१५) मैंने हलवा खाया (१६) मैंने आईसक्रीम खाई (१७) मैंने आँवले चखे (१८) मैंने रसगुल्ले खाये (१९) मुझे बदबू आई (२०) मुझे खुशबू आई (२१) मैं काला (२२) मैं गोरा (२३) मैं पीला पड़ गया (२४) मैंने झाड़ू दी (२५) मैंने विस्तरा बिछाया (२६) मैंने दुकान खोली (२७) मैंने दुकान बन्द की (२८) मेरा मकान (२९) मेरी स्त्री (३०) मेरा लडका (३१) मैं लडकी (३२) मैं बहू (३३) मैं बुढ़िया (३४) मैं राष्ट्रपति (३५) मैं प्रधानमंत्री (३६) मैं राजा (३७) मैं मंत्री (३८) मैं अमेरिका का हूँ (३९) मैं रूस का हूँ (४०) मैं जर्मन का हूँ (४१) मैं हिन्दुस्तान का हूँ (४२) मेरा विस्तर-बन्द है (४३) मुझे प्यास लगी है (४४) मैं भूखा (४५) मेरी कपड़े की दुकान है (४६) मेरी बिसातखाने की दुकान है (४७) मेरे हाथ (४८) मेरी नाक (४९) मेरी उंगलियाँ (५०) मेरे दाँत (५१) मैंने स्त्री को छुआ (५२) मैंने सिनेमा देखा (५३) मैंने फिल्मी गायन सुना (५४) मुझे बुखार हो गया (५५) मुझे खासी हो गयी (५६) मुझे ब्लडप्रेसर हो गया (५७) मुझे हार्ट अटैक हो गया (५८) मुझे कैंसर हो गया (५९) मैं ५२ वर्ष का हूँ (६०) मैं ६० वर्ष का हूँ । गजब हो गया ।

प्र० १८—जैन धर्म क्या है ?

उत्तर—निजात्मा का अनुभव ज्ञान आचरण ही जैन धर्म है ।
(१) जैन होते ही सारे विश्व का यथार्थ ज्ञान हो जाता है । (२) सिद्ध-
अरहन्त-श्रेणी-मुनिपना-श्रावकपना क्या है ?—हथेली पर रखे आँवले
के समान यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरण हो जाता है । जैसा वस्तु
स्वरूप है वैसा श्रद्धान-ज्ञान हो जावे तो सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो
जावे ।

प्र० १९—विश्व में सुखी कौन है ?

उत्तर—ज्ञानी ही सुखी है ।

प्र० २०—ज्ञाता-दृष्टा कब कहा जावेगा ?

उत्तर—जैसा केवली के ज्ञान में आया है वैसा ही हो चुका है,
हो रहा है और होता रहेगा—ऐसा जाने माने तभी मेरा कार्य ज्ञाता-
दृष्टा है और मैं ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व हूँ ।

प्र० २१—जो विश्व में दिखता है पुद्गल स्कन्धो की पर्याय है
फिर जीव इनमें पागल क्यों हो रहा है ?

उत्तर—पागल है इसलिये पागल हो रहा है । दिगम्बर धर्म होने
पर भी इनमें लगे, अपनापना माने—जीवन को विकार है ।

प्र० २२—वस्तु स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—अनादिनिधन वस्तुये भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा
लिये परिणमे है । कोई किसी का परिणमाया परिणमता नहीं है ।
यह सब शास्त्रो का सार है । इसको ध्यान में लेते ही ससार का
अभाव होकर मोक्ष का पथिक बने ।

प्र० २३—सुनने पर भी धर्म की प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर—ज्यो रमता मन विषयो में, त्यो जो आतमलीन ।

मिले शीघ्र निर्वाण पद, धरे न देह नवीन ॥

व्यवहारिक धन्वे फसा, करे न आतमज्ञान ।

इस कारण जग जीव ये, पात नहीं निर्वाण ॥

ससार मे ज्ञेय की महिमा प्रतिभासित होने से अपनी महिमा नहीं आती है। यदि अपनी महिमा आवे तो तत्काल धर्म की प्राप्ति होवे।

प्र० २४—पात्र मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व अवस्था में कैसा भाव आता है ?

- उ०—(१) मैं कौन हूँ ? मैं ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हूँ।
 (२) मेरे मे क्या है ? ज्ञान दर्शनादि अनन्त गुण है।
 (३) मेरा स्वरूप क्या है ? एक मात्र जानना देखना ही है।
 (४) यह चरित्र क्या बन रहा है ? उठना, बैठना, खाना-पीना, व्यापारादि, विवाहादि यह सब पुद्गल के खेल है। उनमे मेरा स्वप्नपना भी नहीं है।
 (५) जो शुभागुप्त विकारी भाव हो रहे है इनका फल क्या होगा ? मात्र चारो गतियो का परिभ्रमण ही है।
 (६) मैं दुःखी हो रहा हूँ ? दुःख दूर करने का उपाय क्या है ? स्व-पर भेद विज्ञान।

प्र० २५—चर्चा करनी या नहीं ?

उत्तर—(१) पच परमेष्ठी की ही चर्चा करनी (२) अपनी चर्चा अपने पास ही करनी (३) किसी की चर्चा का विचार भी नहीं लाना। इस विषय मे किसी से पूछना भी नहीं। (४) दुनिया मे देखो सैकड़ो आये और चले गये। चक्रवर्ती मानुषोत्तर पर्वत पर अपना नाम लिखने जाता है लेकिन देखता है कि जगह ही नहीं। (५) अरे भाई—अपनी चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी की ही चर्चा करनी स्वयं मे स्वयं से करनी है। प्रवचन मे किसी के नाम की चर्चा नहीं आनी चाहिये।

प्र० २६—आत्मा के खजाने का पता कैसे लगे ?

उत्तर—जब शरीर को अलग जानेगा उसी समय अतीन्द्रिय आनन्द आवेगा। अनन्त काल का भव भ्रमण टल जायेगा।

प्र० २७—जिनवाणी का उपदेश क्या है ?

उत्तर—हे विश्व के सजी पचेन्द्रिय जीवो ! तुम्हे इतना ज्ञान

का उघाड़ है जो अपना कल्याण कर सकते हो। शरीर से सर्वथा भिन्न अपने को जानो-मानो आचरण करो तो वेड़ा पार हो जायेगा। अरे भाई यह कार्य आसान है।

प्र० २८—कल्याण कब तक नहीं होगा ?

उत्तर—जब तक शरीर, शरीर की क्रिया और राग अपना भासित होगा तब तक धर्म की गंध भी नहीं आ सकती है। जैसे हिजडो के कभी भी पुत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं उसी प्रकार जिसे शरीर में व राग में अपनापना भासेगा उसे धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

प्र० २९—आत्मा कैसा है ?

उत्तर—ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य आदि अनन्त गुणों का धाम है। इसमें इतना माल भरा है कि अरबों ३३ सागर तक निकाला जावे तो भी खजाना समाप्त न होगा।

प्र० ३०—स्व-पर क्या है ?

उत्तर—स्व (१) अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज-मुञ्ज आत्मा का क्षेत्र है। (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी-मुञ्ज आत्मा का भाव है। (३) अनादिनिधन-मुञ्ज आत्मा का काल है। (४) वस्तु आप है मुञ्ज आत्मा द्रव्य है।

पर—(१) मूर्तिक पुद्गल द्रव्यों का पिण्ड—कैलाशचन्द्रका क्षेत्र है। (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों से रहित-स्पर्श-रस-गंध वर्णादि सहित कैलाशचन्द्र का भाव है। (३) नवीन जिसका संयोग हुआ है—यह कैलाशचन्द्र का काल है। ऐसे शरीरादि कैलाशचन्द्र पुद्गल पर है।

प्र० ३१—शरीरादि के विषय में क्या विचार करना ?

उत्तर—जैसे कम्बल, रसगुल्ला, कमीजादि हैं उसी प्रकार यह शरीर है। हे भव्य आत्माओं ! तुम्हारा दूसरी आत्मा से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। तब फिर अचेतन जड़ रूपी शरीर से तुम्हारा सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? सावधान-सावधान ! एकबार शरीर से भिन्न अपने को मान किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

श्री क्षु धर्मदास विरचित स्व जीवन वृत्तान्त

('स्वात्मानुभव मनन' की 'प्रस्तावना')

'मैंका सरीरक क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास कहनेवाला कहता है सो ही मैं मेरी स्वात्मानुभव की प्राप्ति की प्राप्ती भई सो प्रगट कर्ता हूँ मैं के द्वारा मेरा सरीर का जनम तो सवाई जयपूरका राजमै जीला सवाई माधोपूर तालुका बोलीगाव वपूई का है खडेरवाल श्रावण गोत्र गिरधरवाल चुडीवाला तथा गधिया का कूल मैं मेरी सरीर उपज्यो है मेरा सरीर का पिता का नाम श्रीलालजी थो अर मेरी माना का नाम ज्वागावाई थो अर मेरा सरीर को नाम धनालाल थो अब मेरा सरीरको नाम क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है अनुक्रमसे मेरे सरीर के वय २० वर्ष की हुई तब कारण पायकगिके मैं झलरा पाटण आयो तहाँ जैनका मुनी नगन श्री सिद्धश्रेणिजी ताको मैं गिण्य हुवो स्वामी मैक लौकीक वर्त नेम दीया सो ही मैं सवत् १६२२ औगणीसे वाईसका सवत्सै १६३५ का साल पर्यंत कायक्लेस तप किया ।

भावार्थ १३ (तेरा) वर्ष के भीतर मैं २००० दोहे सहस्र तो निर्जल उपवास किया, दो च्यार जैन मंदिर वणाया, प्रतिष्ठा कराई बहुरि समेदगिखर गिरनार आदि जैनका तीर्थ कीया, और बी भूसयन पटन पाठ मन्त्रादिक बहुत कीया, ताकरि कै मेरा अन करण मैं अभिमान अहंकाररूपी सर्प का जहर व्याप्त हो गया था तिस कारणतैं मैं मेरे कू भला मानतो थो अन्यक झठा, षोटा (खोटा), बुरा मानतो थो उसी बहिरात्मादिसा मैं मैक तेरापथी श्रावण दिल्ली अलीगढ कोयल आदि बडे सहरो मे मेरा पाव मैं प्रणम्य नमस्कार पूजा करते थे इस कारणसै बी मेरा अतःकरणमैं अभिमान अज्ञान ऐसा था के मैं भला हूँ श्रेष्ठ हूँ अर्थात् उस समय येह मोक निश्चय नही थी के निंदा स्तुति पूजा देहकी अर नामकी है बहुरि मैं भ्रमण करतो बराड देसेमे

अमरावती सहर है वहा गया थो तहा चातुर्मास मे रह्यो थो तहां
 श्रावगमडलीक़ उपदेस राग द्वेय का देतो थो अमुका भला है अमुका
 पोटा (खोटा) है इत्यादिक उपदेस समयक़ जलालसगी मैक़ कही के
 आप किसक़ भला बुरा कहते हो जाणते हो मानते हो सर्व वक्त आपणा
 अपणा स्वभावक़ लीया हुवा स्वभावमें जैसी है तैसी ही है प्रथम
 आप अपेणक़ समजो इस प्रमाण क़ जलालसगी मैक़ कही तो बी
 मेरी मेरे भीतर स्वानुभव अतरात्मद्रष्टी न भई, कारण पायकरि कै
 सहर करजाके पाटधीश श्रीमत् देवेद्रकीर्तिजी भट्टारकमहाराज से मै
 मिल्यो, महाराजका सरीरकी वयवद्धि ६५ पञ्चाणव वर्षकी स्वामी
 मंसै कही तुमक़ सिद्ध पूजापाठ आता है के नही आता है तब मै कही
 मैक़ आता है तब स्वामी बोले के जयमाला को अनको श्लोक पढो
 तब मै अत्तको श्लोक—

विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विसोक ।

अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥

तब श्रीगुरु मैक़ कही के स्वयसिद्ध परमात्मातो कालो पीलो लाल
 हया सुपेदादिक वर्ण रहित है सुगंध दुर्गंध रहित है क्रोध मान माया
 लोभ रहित है पच प्रकार सरीर रहित है तथा छाया रहित है
 शब्द द्वारा भाष होता है सर्व आक़लता रहित है सर्व ठिकाणै विशुद्ध
 प्रसिद्ध प्रगट हे देखो देखो तुमक़ वो परमात्मा दीखता है के नही
 दीखता है तब मै स्वामीका श्रीमुखसै श्रवण करके चकितचि हो गयो
 स्वामी तो मैके नगीचसै उठकरि भीतर जैन मंदिर मै चले गये अर
 मै मेरा मन मे बहुत विचार कीया वो प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा मैक़
 कोई ठिकाणे कोई द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव मै दीखया नही मै विचार
 कीया के का नो पीलो लाल हरयो धोलो काया माया छायासे अलग
 है तो बी प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है अर मै तो जिधर देखता हू उधर वर्ण
 रंग कायादिक ही दीखता है वो प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है तो मै क़ क्य
 नही दीखता-इत्यादि विचार बहुत कीया बाद पश्चात् स्वामीसै मैक़
 ही हे कृपानाथ वो प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है सो तो मै क़ दीखता है नही

तब स्वामी बोले ज्यो अधा होता है उसकू नही दीखता है मैं फेर स्वामीसे प्रश्न नहो कियो चुपचाप रह्यो परन्तु जैसे स्वान के मस्तगमें कीट पड जावै तैसे मैं का मस्तगमें भ्राति सी पड गई उस भ्राति चुकत मैं ज्येष्ठ महीनोमे समेद सिखर गयो तहा बी पहाड के उपर नीचै बनमें उस प्रसिद्ध सिद्ध परमात्माकू देखणे लग्यो तीन दिवस पर्यंत देख्यो परन्तु वहाँ बी वो प्रसिद्ध सिद्ध दीख्यो नही बहुरि पीछो पलट करिकं १० (दस) महीना पश्चात् देवेद्रकीर्ति स्वामी के समीप आयो, स्वामी से विनीती करी हे प्रभु वो प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा प्रगट है तो मैं कू दीखतो नही आप कृपा करिकै दीखावो तब स्वामी बोले सर्वकू देखता है ताकू देख तू ही है ऐसे स्वामी मैका कर्ण मे कही तत् समय मेरी मेरे भीतर अनरात्म अतरदृष्टी हो गई सो ही मैं इस ग्रंथ मे प्रगटपणे कही है जैसे जैसे पीवै पाणी तैसे तैसे बोले वाणी इसी दृष्टान्त द्वारा निश्चय समजणा, मेरा अत करणमें साक्षात् परमात्मा जागती ज्योति अचल तिष्ठ गई उसी प्रमाणकी मैं वाणी इस पुस्तकमें लिखी है अब कोई मुमुक्षकू जन्म मरण के द्रुपसै छूटणे की इच्छा होय तथा जागती ज्योति परब्रह्म परमात्माको साक्षात् स्वानुभव लेना होय सो मुमुक्ष विषय मोटा पाप अपराध सप्त विषयन छोडकरिकै इस पुस्तकके येकात मैं बैठकरिकै मनको मनमें मनन करो वाचो पढो “परमात्मा प्रकासादिक” ग्रन्थसेभी इसमें स्वानुभव होनेकी सुगमता है खोटी करणी खोटा कर्म तो छोडणाजोग ही है परन्तु इस ग्रन्थकू पढणे-वाला मुमुक्षकू कहता हू के जैसे तुम खोट करणी खोटा कर्म छोट दिया तैसे सुभ भला कर्म भली करणी भी छोडकरिकै इस पुस्तककू वाचणा येकातमें येह पुस्तक अपणो आपही के सबोधनै को हूँ परकू सबोधनको मुख्य नही कदाचित् कोई प्रकार है समज लेणा समजाणा बिना समजसै नही बोलणा, नही कहणा, जरूर इस ग्रन्थके पढणेसै मनन करेणसै मुमुक्षुकू स्वानुभव अतरदृष्टी होवैगी ससार जगतमें जिसकू स्वात्मानुभव आत्मज्ञान नही वा ब्रह्मज्ञान नही उसका व्रत

जप तप नेम तीर्थयात्रा दान पूजादिक है सो ब्रह्मज्ञानाग्नीवीविना सर्व कच्चा है जैसे रसोईमें आटा दाल चनादिक चावल बीजनादिक है परन्तु अग्नीविना सर्व कच्चा है तैसे हो आत्मज्ञानविना मुनीपण क्षुल्लकपण आदि सर्व कच्चा है वास्तै हे म्रमुद्भुजान वो स्वात्मानु-भवकी प्राप्त को प्राप्ती के अर्थ इन ग्रन्थकृ एकानमें अपने मनको मनमें मनन करणा-पढ़णा वाचना ।”

— ० —

प्र०—पंचम काल में जन्मे हुये जीव को क्षायिक सम्यक्त्व तो होता ही नहीं है, किन्तु प्रथम और औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त का अभाव करके क्षयोपशमिक सम्यक्त्व होने के विषय में आचार्यों ने क्या कहा है ?

उत्तर—(१) समयसार कलश चार में आया है कि “वान्त मोह” अर्थात् मिथ्यात्व का वमन हो जाता है, वह अब पुन नहीं आयेगा ।

(२) समयसार गाथा ३८ की टीका के अन्त में आता है कि “निज रस से ही मोह को उखाड़कर फिर अकुर न उपजे ऐसा नाश करके महान ज्ञान प्रकाश मुझे प्रगट हुआ है ।

(३) प्रवचन सार गाथा ६२ की टीका में भी कहा है वह वहि-मोहद्रष्टि तो आगम कौशल्य तथा आत्मज्ञान से नष्ट हो जाने से अब मुझे पुन उत्पन्न नहीं होगी ।

(४) समयसार कलश ५५ में भी आया है कि “मैं पर को करता हूँ—ऐसा पर द्रव्य के कर्तृत्व का महा अहंकार रूप अज्ञान अधकार जो अत्यन्त दुर्निवार है वह अनादि ससार से चला आ रहा है—आचार्य कहते हैं अहो ! परमार्थनय का ग्रहण से यदि एक बार भी नाश को प्राप्त हो तो ज्ञानघन आत्मा को पुन बन्धन कैसे हो सकता है ?

(५) प्रवचनसार गाथा ८० के प्रवचन में पूज्य श्री कानजी स्वामी कहते हैं कि—‘वर्तमान में इस क्षेत्र में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं है तथापि ‘मोह क्षय को प्राप्त होता है’ यह कहने में अन्तरंग का इतना बल है कि जिसने इस बात का निर्णय किया उसे वर्तमान में भले ही क्षायिक सम्यक्त्व न हो तथापि उसका सम्यक्त्व इतना प्रबल और अप्रतिहत है कि उसमें क्षायिक दशा प्राप्त होने तक बीच में कोई भग नहीं पड़ सकता ।

[सम्यग्दर्शन प्रथम भाग पृष्ठ ५५]

— ० —

५४ ध्रुव का ध्यान

करलो आत्म ज्ञान परमात्म बन जइयो ।
 करलो भेद विज्ञान ज्ञानी बन जइयो ॥ टेक ॥
 जग झूठा और रिस्ते झूठे रिस्ते झूठे नाते झूठे ॥
 साचो है आत्मराम परमात्म बन जइयो ॥ १ ॥
 कुन्दकुन्द आचार्य देव ने आत्म तत्व बताया है ॥
 शुद्धात्म को जान परमात्म बन जइयो ॥ २ ॥
 चेह भिन्न है आत्म भिन्न है ज्ञान भिन्न है राग भिन्न है ॥
 ज्ञायक को पहचान परमात्म बन जइयो ॥ ३ ॥
 कुन्दकुन्द के प्रताप से ध्रुव की घूम मची हेरे ।
 घरलो ध्रुव का ध्यान परमात्म बन जइयो ॥ ४ ॥

५५ वस्तु स्वरूप

धन्य धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग में कहानी ॥
 चिदानन्द की राजधानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥ टेक ॥
 उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप ॥
 स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥ १ ॥
 नित्य-अनित्य अरु एक-अनेक, वस्तु कथंचित भेद-अभेद ॥
 अनेकान्त रूपा बखानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥ २ ॥

भाव शुभाशुभ बन्ध स्वरूप, शुद्ध चिदानन्दमय मुक्तिरूप ॥
मारग दिखाती हे वाणी, अमर तेरी जग मे कहानी ॥ ३ ॥
चिदानन्द चैतन्य आनन्द धाम, ज्ञान स्वभावी निजातम राम ॥
स्वाश्रय से मुक्ति वखानी, अमर तेरी जग मे कहानी ॥ ४ ॥

१६. ध्रुव-ध्रुव

ये शाश्वत सुख का प्याला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ टेक ॥
मैं अखण्ड चित् पिण्ड शुद्ध हूँ, गुण अनन्त वन पिण्ड बुद्ध हूँ ॥
ध्रुव की फेरो माला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ १ ॥
मगलमय हे मगलकारी, सत् चित् आनन्द का धारी ॥
ध्रुव का ही उजियारा, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ २ ॥
ध्रुव का रस तो ज्ञानी पीवे, जन्म-मरण के दुख मिटावे ॥
ध्रुव का धाम निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ ३ ॥
ध्रुव की धूनि मुनि रमावे, ध्रुव के आनन्द में रम जावे ॥
ध्रुव का स्वाद निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ ४ ॥
ध्रुव का शरणा जो कोई आवे, मोह गन्धु को मार भगावे ॥
ध्रुव का पन्थ निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ ५ ॥
ध्रुव के रस में हम रम जावें, अपूर्व अवसर कब यह पावे ॥
ध्रुव का जो मतवाला, वो पियेगा अनुभव वाला ॥ ६ ॥

१७. चेत रे चेतन

ओ प्यारे परदेशी पन्थी जिस दिन तू उड़ जायेगा :
तेरा प्यारा पिजरा पीछे यहाँ जलाया जायेगा ॥ टेक ॥
जिस पिजरे को सदा सभी ने पाला-पोसा प्यार से ।
खूब खिलाया खूब पिलाया, हरदम रखा सभार के ॥
तेरे होते—होते नीचे इसे सुलाया जायेगा ।
ओ प्यारे परदेशी पन्थी, जिस दिन तू उड़ जायेगा ॥ १ ॥

देखे बिना तरसती आँखे, रहना चाहती साथ मे ।
 तेरे बिना न खाती खाना, तू ही था हर बात मे ॥
 तुझको पूछे बिना ही सारा काम चलाया जायेगा ।
 ओ प्यारे परदेशी पन्ध्री, जिस दिन तू उड जायेगा ॥ २ ॥

रोयेगे थोडे दिन तक, ये भूलेगे फिर बाद मे ।
 ज्यादा से ज्यादा इतना कुछ करवा देगे याद मे ॥
 हलवा पुडी खाकर तेरा श्राद्ध मनाया जायेगा ।
 ओ प्यारे परदेशी पन्ध्री जिस दिन तू उड जायेगा ॥ ३ ॥

तुझे पता है क्या कुछ होता फिर क्यों नहीं सोचता ।
 मूरख वह दिन भी आवेगा, पडा रहेगा सोचता ॥
 जन्म अमोलक खोकर हीरा पीछे तू पछतायेगा ।
 ओ प्यारे परदेशी पन्ध्री, जिस दिन तू उड जायेगा ॥ ४ ॥

अलिंगन ग्रहण के बीस बोल

(प्रवचन सार गाथा १७२)

दोहा

बदन श्री महावीर को, साधा आत्म स्वरूप ।
 इन्द्रियातीत अखण्ड अरु, अद्भूत आनन्दरूप ॥
 नमस्कार जिन वचन को, दर्शाया आत्म स्वरूप ।
 शुद्धोपयोग प्रकाश से, जाना अन्तर रूप ॥
 परमरूप निज आत्म का, देहादिक से पार ।
 चेतन चित्त ग्राह्य जो, पर लिंगो से पार ॥

हरिगीत

अद्भूत आत्म स्वरूप को, प्रभु कुन्दकुन्द प्रकाशता ।
 अमृत स्वामी हृदय खोलकर, परमामृत बरसावता ॥

स्वानुभूति मे आता रे वह, आतम आनन्द मय अहो ।
 मतिजन सुनकर सार उसका, शुद्ध समकित कोलहो ॥
 है चेतना गुण, रुप गंध, रस, शब्द व्यक्ति न जीव को ।
 अरु लिंग ग्रहण नहीं तथा, सस्थान भी उसको है नही ॥
 नही रुप कोई जीव मे, इससे न दिखता नेत्र से ।
 रस भी नही है जीव को, अतः न दीखे जीभ से ॥
 जीव शब्दवत नही अरे, इससे न दीखे कान से ।
 नही स्पर्श जीव मे कोई इससे, नहि ग्रहण है हस्त से ॥
 रे गंध जीव मे है नही, इससे न आवे नाक मे ।
 है इन्द्रियो से पार वह, आवे न इन्द्रिय ज्ञान मे ॥
 असख्य प्रदेशी आत्म है, सस्थान को निश्चित नही ।
 निज चेतना से शोभता बस, ये ही लक्षण है सही ॥
 निज चेतना का अन्य किसी के साथ सम्बन्ध है नही ।
 बस द्रव्य-गुण पर्यय स्वरुपे, सोभता निज मे रही ॥
 अब बीस बोलो को सुनो, अलिंग ग्रहण आतमा ।
 इन जानने का फल ये होगा, स्वानुभूति निजात्म मे ॥
 ज्ञायक आतमराम है वह, नही जानता इन्द्रियो से ॥
 वह तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, कैसे जाने इन्द्रियो से ॥ १ ॥
 इन्द्रिय वश जो ज्ञान है, वह आत्म को नही कभी ग्रहे ॥
 है इन्द्रियो से पार जीव, वह अक्ष प्रतक्ष कैसे बने ॥ २ ॥
 इन्द्रियों के चिह्न से, अनुमान हो नही आत्म का ॥
 अनुमान इन्द्रिय द्वार से तो, मात्र रुपी पदार्थ का ॥ ३ ॥
 सवेद्यरुप निजातमा, अनुमान से भी पार है ॥
 अनुमान मात्र से नही कोई, जान सकता जीव को ॥ ४ ॥
 प्रत्यक्ष ग्राही आतमा, पर को भले वह जानता ॥
 पर मात्र अनुमान से नही, प्रत्यक्ष पूर्वक जानता ॥ ५ ॥

प्रत्यक्ष ज्ञाता जीव है, वहा लिग का क्या काम है ॥
 नही लिग द्वारा जानता, प्रत्यक्ष ज्ञायक जीव है ॥ ६ ॥
 उपयोग स्वाधीन आत्म का स्वयमेव जाने ज्ञेय को ॥
 आलम्बन नही अन्य का, इससे ग्रहण नही लिग का ॥ ७ ॥
 उपयोग ही निज लिग है, स्वय ही लिग स्वरूप है ॥
 लाता नही वह बाह्य से, अत न लिग ग्रहण है ॥ ८ ॥
 उपयोग लक्षण आत्म का, नही कोई उसको हर सके ॥
 अहार्य ज्ञानी आत्मा, बस ये ही सत्य स्वरूप है ॥ ९ ॥
 ज्यो सूर्य को न ग्रहण, त्यो न ग्रहण जानो जीव को ॥
 उपयोग मे न मलिनता, शुद्धोपयोगी जीव है ॥ १० ॥
 जो लिगरूप उपयोग है, वह कर्म को ग्रहता नही ॥
 इस रीत कर्म अबद्ध जीव को, जानना इस सूत्र से ॥ ११ ॥
 रे इन्द्रियो से विषय भोग भी, जीव को होते नही ॥
 इससे न भोक्ता भोग का, यह जानना निश्चय सही ॥ १२ ॥
 मन इन्द्रिय रूप को लिग से, नही जीवन है इस जीव का ॥
 इससे न गुकार्तव ग्रहे, ऐसा अग्राही जीव है ॥ १३ ॥
 किसी शरीर के लिग को रे, आत्म कभी ग्रहता नही ॥
 लौकिक साधन रूप नहीं, ऐसा अग्राही जीव है ॥ १४ ॥
 लिग रूप किनी साधनो से, न लोक व्यापी जीव है ॥
 नही सर्वव्यापी जीव है, यह सत्य सावित होत है ॥ १५ ॥
 नही ग्रहण कोई वेद का, स्त्री पुरुषादि भाव का ॥
 इससे न कोई लिग, जिसको, अलिग ग्राही जीव है ॥ १६ ॥
 लिग कहते धर्म चिह्नो, बाह्य जो साधुपना ॥
 नही ग्रहण उनका जीव मे, वे चेतना से बाह्य है ॥ १७ ॥
 'ये गुण' ऐसे बोध से नही, ग्रहण होता जीव का ॥
 गुण भेद से लक्षित नही, बस शुद्ध द्रव्य ही जीव है ॥ १८ ॥

पर्याय के भी बोध से नहीं, ग्रहण होता जीव का ॥
 पर्याय भेद से लक्षित नहीं, वस शुद्धद्रव्य ही जीव है ॥ १६ ॥
 'यह द्रव्य' ऐसे लक्षण से नहीं ग्रहण सच्चे जीव का ॥
 'पर्याय शुद्ध है जीव स्वयं, भेद हीन यह जानना ॥ २० ॥
 है चेतना अदभूत अहो ! निज स्वरूप में व्याप रही ।
 इन्द्रियो से पार हो निज स्वरूप को देख रही ॥
 प्रभु कुन्दकुन्द अमृत स्वामी के, चरणों में नमन कर रही ।
 आनन्द करती मस्त हो, वह मोक्ष को साध रही ॥

[आत्म धर्म गुजराती अंक ३८२]

— ० —

मृत्यु-महोत्सव

वीतराग तुम दो मुझे, मृत्यु मार्ग में शुद्ध—
 औपधि बोधि समाधि को, वनू न जब तक मुक्त ॥१॥
 मल कृमि-कृन्त से पूर्णक्षत, अस्थि पित्रर देह ।
 तू सुज्ञान ! मूर्छित वृथा, नाश-समय तज स्नेह ॥२॥
 मृत्यु उछाह प्रसंग पर चतुर डरे किस हेत ।
 है स्वरूप स्थिर जा रहा तन पलटन के हेत ॥३॥
 पूज्य परम गुरु कह गए, मृत्यु समय भय त्याग ।
 मिले सहज इसके सुखद, सुकृत कर्म फल चाख ॥४॥
 सहे ताप दुख गर्भ में, हो तन पित्रर बन्द ।
 लख महत्व हितु मृत्यु का, हरे कर्म के फन्द ॥५॥
 करे दूर आत्मज्ञ ही, सर्व देह कृत दुख ।
 मृत्यु सुमित्र प्रसाद से, पावे सम्पत्ति सुख ॥६॥
 मृत्यु महौषधि प्राप्त कर, निज हित दे जो टाल ।
 रचे रहे भव कीच में, नहि कर सके सभाल ॥७॥

सर्व जीर्णना मिट, मिले, तन नूतन बन शुद्ध ।

साता कारण मृत्यु है, हर्ष समय क्यो क्रुद्ध ? ॥८॥
सुख-दुख जाने जिय स्वय, सदा देह गत आप ।

जाय स्वय परलोक मे, किसे मृत्यु भय ताप ॥९॥

जिसका चित ससार मे, उसे मृत्यु भय जान ।

ज्ञान-विराग जहा बसे, मरण हर्ष का स्थान ॥१०॥

निज सुकृत फल भोगने, तन पति पर गति जाय ।

भौतिक तन किम रोकने, का प्रपंच कर पाय ॥११॥

मृत्युकाल मे व्याधि वश, हो दुख उदयाधीन ।

देह मोह यदि नष्ट हो, दे शिव सुख स्वाधीन ॥१२॥

मृत्यु ताप भव-तप्त को, दीखे अमृत-पान ।

पका कुंभ जल भर हरे, तृपा, दाह दे प्राण ॥१३॥

व्रत-पालन के कष्ट बहु, सहकर हो फल प्राप्त ।

वह फल सब सुख साध्य यदि, मृत्यु समय समाधि ॥१४॥

हो नारक तिर्यच यदि, आर्त्त, मरण विन शात ।

धर्म ध्यान अनशन सहित, दे सुरलोक नितात ॥१५॥

व्रत-पालन तप आचरण, शास्त्र पठन नित होय ।

सफल ज्ञान यदि मृत्यु भी सावधान रह होय ॥१६॥

हो सेवन परिचय बहुत, अरति अनादर पाय ।

क्यो डर ! जर्जर घट विघट, झट नूतन बनजाय ॥१७॥

रह सचेत यदि मरण, फल, निरत स्वर्ग के भोग ।

फिर विराग बन वह स्वय, तन तज ले शिव लोक ॥१८॥

हो स्थिर विमल समाधि मे, मथो इष्ट उपदेश ।

मृत्यु महोत्सव तब बने यही वोर सदेश ॥

भूले-शोधन शिव-पथ पाने हेतु, हुआ है यह अनुवाद ।

शब्द भाव के भान बिना, बस पूज्यपाद के पकडे पाद ॥

मित्थात्व को अभाव करने का अमूल्य उपाय

उठना-बैठने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं
 खाना-पीने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,
 नहाने-धोने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,
 मज्जन-कुल्ले का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,
 धोलने-चुप रहने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं
 कर्म उदय-क्षय का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं

क्षयोपशम-उपशम का— " " " " " "

कार्य करने-कराने का— " " " " " "

मन-वचन-वाणी का— " " " " " "

हल्का-भारी आदि का— " " " " " "

खट्टे-मीठे आदि का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं

सुगन्ध-दुर्गन्ध का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

काला-पीला आदि का— " " " " " "

चान्दी-सोने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

हीरे-जवाहरात का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

मकान-दुकान का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं

देव-गुरु का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

पुत्र-पुत्रियो का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं

माँ-बाप का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

पति-पत्नी का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

मोह-रागद्वेष का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं

द्रव्य-नोकर्म का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं

भाव कर्मों का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

हार्ट अटैक का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

ब्लैड कैंसर का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व से सर्वथा सम्बन्ध नहीं,

रुपया होने न होने का— " " " " " "

आठवां अधिकार — बच्चो के लिए
(बाल पोथी के माध्यम से)

प्र० १-मैं कौन हूँ ?

उत्तर-मैं जीव हूँ ।

प्र० २-मुझमें क्या है ?

उत्तर-मुझमें ज्ञान है ।

प्र० ३-हम किसकी सन्तान हैं ?

उत्तर-हम वीर प्रभु की सन्तान हैं ।

प्र० ४-तुम्हें क्या पढ़ना अच्छा लगता है ?

उत्तर-हमें जिन सिद्धांत पढ़ना अच्छा लगता है ।

प्र० ५-तुम बड़े होकर क्या करोगे ?

उत्तर-हम बड़े होकर वीर विद्वान बनेंगे ।

प्र० ६-तुम जीव हो या शरीर ?

उत्तर-मैं जीव हूँ

प्र० ७-ज्ञान जीव में होता है या शरीर में ?

उत्तर-ज्ञान जीव में होता है ।

प्र० ८-जीव और शरीर में क्या अन्तर है ?

उत्तर-(१) जीव, जीव है, शरीर अजीव है ।

(२) जीव में ज्ञान है, शरीर में ज्ञान नहीं है ।

(३) जीव अपने ज्ञान से सबको जानता है, शरीर किसी को नहीं जानता है ।

प्र० ९-जीव और शरीर एक हैं या भिन्न ?

उत्तर-जीव और शरीर भिन्न हैं ।

प्र० १०-तुम किससे जानते हो ?

उत्तर-मैं ज्ञान से जानता हूँ ।

प्र० ११-इस आँख के बिना देखा जा सकता है ?

उत्तर-हाँ, इस आँख के बिना देखा जा सकता है ।

प्र० १२-शरीर किसकी जानता है ?

उत्तर-शरीर किसी को नहीं जानता है ।

प्र० १३-तुम कौनसा द्रव्य हो जीव या अजीव ?

उत्तर-मैं जीव द्रव्य हूँ ।

प्र० १४-तुमसे कौन सा गुण है ?

उत्तर-तुमसे ज्ञान गुण है ।

प्र० १५-जानना किसकी पर्याय (कार्य) है ?

उत्तर-जानना मेरी पर्याय (कार्य) है ।

प्र० १६-जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य में क्या अन्तर है ?

उत्तर-(१) जीव द्रव्य में ज्ञान गुण है अजीव द्रव्य में ज्ञान गुण नहीं है ।

(२) जीव द्रव्य जानता है अजीव द्रव्य जानता नहीं है ।

प्र० १७-शरीर कौन है ?

उत्तर-शरीर अजीव द्रव्य है ।

प्र० १८-तुम कौन हो ?

उत्तर-मैं जीव द्रव्य हूँ ।

प्र० १९-जीव शरीर के काम करता है ?

उत्तर-जीव शरीर के काम नहीं करता है ।

प्र० २०-जीव शरीर को जानता है ?

उत्तर-हाँ जीव शरीर को जानता है ।

प्र० २१-शरीर में ज्ञान होता है ?

उत्तर-नहीं, शरीर में ज्ञान नहीं होता है ।

प्र० २२-सुखी होने के लिए तुम क्या करोगे ?

उत्तर-सुखी होने के लिए हम अपने को पहिचानेंगे ।

प्र० २३—अपने को पहिचानने से क्या होगा ?

उत्तर—धर्म (सुख) होगा है ।

प्र० २४—आत्मा को पहिचाने बिना सुख होता है या नहीं ?

उत्तर—आत्मा को पहिचाने बिना सुख नहीं होता है ।

प्र० २५—पैसे से सुख मिलता है या नहीं ?

उत्तर—पैसे से सुख नहीं मिलता है ।

प्र० २६—अपने को न पहिचाने तो जीव को क्या हो ?

उत्तर—जीव को दुःख हो ।

प्र० २७—धर्म (सुख) जीव में होता है या शरीर में ?

उत्तर—धर्म जीव में होता है ।

प्र० २८—धर्म द्रव्य है या पर्याय ?

उत्तर—धर्म पर्याय (कार्य) है ।

प्र० २९—धर्म किसकी पर्याय है ?

उत्तर—धर्म जीव द्रव्य की पर्याय है ।

प्र० ३०—तुम किस प्रकार धर्म करोगे ?

उत्तर—ज्ञान से धर्म होता है अतः मैं ज्ञान से धर्म करूँगा ।

प्र० ३१—धर्म किसमें होता है ?

उत्तर—जीव में धर्म होता है ।

प्र० ३२—धर्म किससे होता है ?

उत्तर—धर्म ज्ञान से होता है ।

प्र० ३३—धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा की समझ को धर्म कहते हैं ।

प्र० ३४—भगवान् होना हो तो क्या करना ?

उत्तर—भगवान् होना हो तो आत्मा (अपने) को समझना ।

प्र० ३५—भगवान को क्या होता है और क्या नहीं होता ?

उत्तर—भगवान को पूरा ज्ञान होता है और थोड़ा भी राग नहीं होता ।

प्र० ३६—भगवान कुछ खाते हैं ?

उत्तर—भगवान कुछ नहीं खाते ।

प्र० ३७—अरिहंत और सिद्ध में क्या अन्तर है ?

उत्तर—अरिहंत के शरीर होता है सिद्ध के शरीर नहीं होता ।

प्र० ३८—भगवान महावीर इस समय सिद्ध है या अरहंत ?

उत्तर—भगवान महावीर इस समय सिद्ध हैं ।

प्र० ३९—इस समय अरहंत हो ऐसे भगवान का क्या नाम है ?

उत्तर—सीमन्धर भगवान इस समय अरहंत है ।

प्र० ४०—नमस्कार मंत्र शुद्ध तथा सुन्दर अक्षरो से लिखो ?

उत्तर—णमो अरिहताण,

णमो सिद्धाण, णमो आइरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं,

णमो लोए सब्ब साहूण ॥

प्र० ४१—जगल मे कौन ध्यान मे बैठे थे ?

उत्तर—जगल मे एक मुनि ध्यान मे बैठे थे ।

प्र० ४२—अपने गुरु कौन हैं ?

उत्तर—मुनि हमारे गुरु है ।

प्र० ४३ गुरु के पाठ मे एक आचार्य का नाम लिखा है वे कौन हैं ?

उत्तर—आचार्य कुन्दकुन्द जी

प्र० ४४—एक महान शास्त्र का नाम बताओ ?

उत्तर—समयसार एक महान शास्त्र है ।

प्र० ४५—शास्त्र हमें क्या समझाते हैं ?

उत्तर—शास्त्र आत्मा को समझाते हैं ।

प्र० ४६—ज्ञान शास्त्र मे होता है या जीव में ?

उत्तर—जीव मे ज्ञान होता है शास्त्र मे नहीं ।

प्र० ४७—तुमने कभी समयसार शास्त्र को हाथ मे लेकर देखा है ?

उत्तर—हाँ, देखा है ।

प्र० ४८—शास्त्र किसे कहने हैं ? और कुशास्त्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसकी रचना ज्ञानी करते हैं और जिससे आत्मा की पहिचान होती है उसे शास्त्र कहते हैं जिसे अज्ञानी बनाये वे कुशास्त्र है ।

प्र० ४९—समयसार की रचना किसने की ?

उत्तर—अचार्य कुन्द कुन्द जी ने ।

प्र० ५०—अपनी धार्मिक माता कौन है ?

उत्तर—अपनी धार्मिक माता जिनवाणी है ।

प्र० ५१—आत्मा की सच्ची श्रद्धा को क्या कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा की सच्ची श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

प्र० ५२—सम्यग्दर्शन हो तो उसे क्या मिलता है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन हो तो उसे अवश्य मोक्ष मिलता है ।

प्र० ५३—धर्म का मूल क्या है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है ।

प्र० ५४—जीव संसार मे क्यों भटक रहा है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन के बिना जीव संसार मे भटक रहा है ।

प्र० ५५—सबसे पहला धर्म कौनसा है ?

उत्तर—सच्चा ज्ञान ही सबसे पहला धर्म है ।

प्र० ५६—सबसे बड़ा पाप क्या है ?

उत्तर—अज्ञान ही सबसे बड़ा पाप है ।

प्र० ५७—सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—सच्ची समझ को सम्यग्ज्ञान कहते हैं ।

प्र० ५८—सम्यग्ज्ञान से अपना आत्मा कैसे समझ में आता है ?

उत्तर—आत्मा ज्ञान वाला है, आत्मा शरीर से अलग है, जीव को राग होता है वह उसका गुण नहीं है । सम्यग्ज्ञान से अपना आत्मा ही है ऐसा समझ में आता है ।

प्र० ५९—जिसे सच्चा चारित्र हो उसे क्या कहते हैं ?

उत्तर—जिसे सच्चा चारित्र हो उसे मुनि कहते हैं ।

प्र० ६०—कौन सी तीन वस्तुओं की एकता करने से मोक्षमार्ग होता है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्चारित्र की एकता करने से मोक्षमार्ग होता है ।

प्र० ६१—आत्मा को पहिचाने बिना चारित्र का पालन करे तो मोक्ष होता है कि नहीं ?

उत्तर—आत्मा को पहिचाने बिना चारित्र होता ही नहीं ।

प्र० ६२—सच्चा चारित्र और मुनि दशा किसे हो सकती है ?

उत्तर—जो आत्मा को पहिचाने उसके ही सच्चा चारित्र और मुनि दशा हो सकती है ।

प्र० ६३—जैन किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा को पहिचान कर जो अज्ञान को जीते उसे जैन कहते हैं या

आत्मा के वीतराग भाव से जो राग-द्वेष को जीते उसे जैन कहते हैं ।

प्र० ६४—जिसने राग-द्वेष को दूर कर दिया उसे क्या कहते हैं ?

उत्तर—जिसने राग द्वेष को दूर कर दिया उसे जिनदेव कहते हैं ।

प्र० ६५—जिनदेव कैसे हैं ?

उत्तर—जिनदेव ही सच्चे भगवान हैं ।

प्र० ६६—एक था राजा वह किसलिए रो पड़ा ?

उत्तर—मुनिराज ने कहा— 'हे राजन ! शिकार करने से पाप होता है, पाप से जीव नरक में जाता है वहाँ वह बहुत दुःखी होता है ।' यह सुन कर राजा रो पड़ा ।

प्र० ६७—सुखी होने के लिए मुनि ने राजा को क्या उपाय बतलाया ?

उत्तर—मुनिराज ने कहा— 'हे राजन सुख तेरे आत्मा में ही है । तू शिकार करना छोड़ दे और आत्मा की पहिचान कर, इससे तू सुखी होगा ।

प्र० ६८—जीव दो प्रकार के हैं—वे कौन-कौन से ?

उत्तर—जीव दो प्रकार के हैं एक मुक्त दूसरे ससारी ।

प्र० ६९—स्वर्ग के जीव ससारी हैं या मुक्त ?

उत्तर—स्वर्ग के जीव ससारी हैं ।

प्र० ७०—जीव कब तक संसार में भटकता है ?

उत्तर—आत्मा को न पहचाने तब तक जीव संसार में भटकता है ।

प्र० ७१—मुक्त होने के लिए जीव को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—मुक्त होने के लिए जीव को आत्मा की पहिचान करना चाहिए ।

प्र० ७२—कर्म जीव है या अजीव ?

उत्तर—कर्म अजीव है ।

प्र० ७३—जीव मे कर्म है ?

उत्तर—जीव मे कर्म नहीं है ।

प्र० ७४—जीव किससे दु खी होता है—अज्ञान से या कर्म से ?

उत्तर—जीव अज्ञान से दु खी होता है ।

प्र० ७५—महावीर ने क्या किया कि जिससे वे भगवान हुए ?

उत्तर—उन्होंने आत्मा की पहिचान की और राग-द्वेष को दूर किया । इसी से वे भगवान हुए ।

प्र० ७६—महावीर भगवान का जन्म दिन कौन सा है ? और उनकी माता जी का नाम क्या ?

उत्तर—महावीर भगवान का जन्म दिन वैत्र सुदी १३ (तेरस) है । उनकी माता जी का नाम त्रिशला देवी था ।

प्र० ७७—पूर्वभव का ज्ञान होने पर भगवान महावीर ने क्या किया ?

उत्तर—पूर्व भव का ज्ञान होते ही उनको बहुत वैराग्य जागृत हुआ, जिससे वे दीक्षा लेकर मुनि हो गये ।

प्र० ७८—मुनि होने के बाद महावीर क्या करते थे ?

उत्तर—मुनि होने के बाद महावीर आत्मा का ध्यान करते थे ।

प्र० ७९—भगवान महावीर का उपदेश सुनने के लिए कौन-कौन आया ?

उत्तर—भगवान का उपदेश सुनने के लिए जीवों के झुण्ड के झुण्ड आये । स्वर्ग के देव आये और बड़े-बड़े राजा आये । आठ वर्ष के बालक भी आये । जगल के सिंह आये, वीते आये, हाथी आये, बदर आये, बड़े-बड़े सर्प आये, और छोटे-छोटे मेढक भी आये और उन्होंने आत्मा को समझा ।

प्र० ८०—महावीर भगवान कहाँ से मोक्ष गये ?

उत्तर—महावीर भगवान पावापुरी से मोक्ष गये ।

प्र० ८१—इस समय महावीर भगवान अरहंत है या सिद्ध ?

उत्तर—इस समय महावीर भगवान सिद्ध है ।

प्र० ८२—महावीर भगवान इस समय कहाँ रहते होंगे ?

उत्तर—इस समय महावीर भगवान मोक्ष में रहते हैं ।

प्र० ८३—सवेरे जल्दी उठकर तुम क्या करोगे ?

उत्तर—सवेरे जल्दी उठकर हम आत्मा का विचार करेंगे ।

प्र० ८४—अपने को प्रतिदिन क्या-क्या करना चाहिए ?

उत्तर—आत्मा का विचार करना, प्रभु का स्मरण करना और नमस्कार मंत्र बोलना, फिर स्वच्छ वस्त्र पहिन कर जिन मंदिर में जाना । जिन मंदिर जाकर भगवान के दर्शन करना । इसके बाद शास्त्र जी को वदन करना और उनका पठन करना, फिर गुरु जी के दर्शन करना उनका उपदेश सुनना और सुनकर विचार करना । इतना प्रतिदिन अपने को करना चाहिए ।

प्र० ८५—एक माता अपने बालक को अच्छी शिक्षायें देती है, उसमें सबसे पहिले क्या कहती है ?

उत्तर—आत्मदेव को कभी न भूलना ।

प्र० ८६—क्या अपने को रात्रि भोजन करना चाहिए ?

उत्तर—अपने को रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए ।

प्र० ८७—तुम प्रतिदिन क्या करोगे ?

उत्तर—आत्मा का विचार, प्रभु का स्मरण, नमोकार मंत्र का बोलना, स्वच्छ वस्त्र पहिन कर जिन मंदिर जाना, जिन मंदिर जाकर भगवान के दर्शन करना, शास्त्र जी को वदन करना, उनका पठन करना, गुरु के दर्शन करना, उनका उपदेश सुनना, सुनकर विचार करना और शांत व सतोषी रहना, इतना कार्य हम प्रतिदिन करेंगे ।

प्र० ८८—तुम कभी क्या नहीं करोगे ?

उत्तर—(१) हम आत्मदेव, सिद्ध प्रभु और गुरु की स्तुति करना कभी नहीं भूलेगे ।

(२) शास्त्र जहाँ तहाँ कभी नहीं रखेंगे ।

(३) हिंसा, झूठ, चोरी और रात्रि भोजन कभी नहीं करेंगे ।

(४) कभी धर्म और दया नहीं छोड़ेंगे ।

(५) कभी क्रोध, कपट, हट, लालच, भय, प्रमाद और निंदा नहीं करेंगे ।

(६) कभी जुआ नहीं खेलेंगे ।

(७) कभी दोष नहीं छिपावेंगे ।

प्र० ८९—आत्म भावना भाने से क्या मिलता है ?

उत्तर—आत्म भावना के भाने से आत्म स्वरूप की प्राप्ति होती है ।

प्र० ९०—‘सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी अविनाशी’ कौन है ?

उत्तर—सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी अविनाशी मैं हूँ ।

प्र० ९१—हमारे देव कौन है ?

उत्तर—हमारे देव श्री अरहत भगवान है ।

प्र० ९२—देह और जीव में अमर कौन है ?

उत्तर—जीव अमर है ।

प्र० ९३—“वन्दन हमारा” में तुम किस-किस को वन्दन करते हो ?

उत्तर—“वन्दन हमारा” में प्रभु जी व गुरु जी अर्थात् अरहत, सिद्ध और सब मुनिराजों को तथा धर्म शास्त्र, सब ज्ञानी, चैतन्य देव को तथा आत्म स्वभाव को वन्दन करते हैं ।

प्र० ९४—एक बालक क्या देखना चाहता है ?

उत्तर—आत्म देव कैसा है, और क्या करता है, एक बालक यह देखना चाहता है ।

प्र० ६५—आत्मा आख से दिखाई देता है या नहीं ?

उत्तर—आत्मा आँख से नहीं दिखाई देता है ।

प्र० ६६—आत्मा किससे दिखाई देता है ?

उत्तर—आत्मा ज्ञान से दिखाई देता है ।

प्र० ६७—तुम्हे किसका दर्शन करना है ?

उत्तर—मुझे प्रभु का दर्शन करना है ।

मुझे आत्मा का दर्शन करना है ॥

प्र० ६८—तुम्हे किसकी सेवा करनी है ?

उत्तर—मुझे ज्ञानी की सेवा करनी है ।

प्र० ६९—तुम्हे क्या करना अच्छा लगता है ?

उत्तर—मुझे सच्ची समझ करना, शास्त्र का पठन करना, सच्चा वैराग्य करना, मुनि का सग करना और मोक्ष में जाना अच्छा लगता है ।

प्र० १००—तुम्हे किससे छूटना है ?

उत्तर—मुझे मोह से छूटना है ।

प्र० १०१—तुम्हे झट-पट कहाँ जाना है ?

उत्तर—मुझे झट-पट मोक्ष में जाना है ।

प्र० १०२—पाठ १६ में जैन झण्डे में चार वाक्य लिखे हैं वे कौन से हैं ?

उत्तर—(१) वत्थु सहावो धम्मो ।

(२) दसण मूलो धम्मो ।

(३) अहिंसा परमो धर्म ।

(४) जैन जयतु शासनम् ।

प्र० १०३—‘वीर प्रभू की हम सतान’ यह गीत सुनाओ ?

उत्तर—वीर प्रभु की हम सन्तान ।
 धागे जिन सिद्धात महान ।
 समझे पढने मे कल्याण ।
 गावे गुरुवर का गुणगान ॥ वीर० ॥
 पढकर बने वीर विद्वान ।
 पावे निश्चय आत्म ज्ञान ।
 गुरु उपकार हृदय मे आन ।
 उनको नमे सहित सम्मान ॥ वीर० ॥

प्र० १०४—तुम्हारे देव कौन हैं ?

उत्तर—अरहत मेरा देव है ।

प्र० १०५—अरिहंत देव कैसे है ?

उत्तर—अरहत देव सच्चे वीतरागी है ।

प्र० १०६—वे हमको क्या दिखाते हैं ?

उत्तर—वे हमको मुक्ति मार्ग दिखाते है ।

प्र० १०७—मुक्ति मार्ग कैसा है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और वीतराग चारित्र्यरूप मुक्ति मार्ग है ।

प्र० १०८—तुम किसके समान हो ?

उत्तर—मैं अरहत के समान शुद्धात्मा हूँ ।

प्र० १०९—अरहंत बनने के लिए किसको जानना चाहिए ?

उत्तर—अरहत बनने के लिए अरहत जैसा अपना आत्मा जानना चाहिए ।

प्र० ११०—पंच परमेष्ठी के वंदन की कविता बोलो ?

उत्तर—
 करू नमन मैं अरहत देव को,
 करू नमन मैं सिद्ध भगवत को,
 करू नमन मैं (आचार्य) देव को,
 करू नमन मैं उपाध्याय देव को,

करू नमन मैं सर्व साधु को,
पच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो ।

प्र० १११—पच परमेष्ठी कौन है ?

उत्तर—अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पच परमेष्ठी हैं ।

प्र० ११२—तुम्हें क्या होना अच्छा लगता है ?

उत्तर—हमें अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु होना अच्छा लगता है ।

प्र० ११३—राजा होना अच्छा लगता है कि भगवान होना अच्छा लगता है ?

उत्तर—हमें भगवान होना अच्छा लगता है ।

प्र० ११४—पंच परमेष्ठी किससे होते हैं ?

उत्तर—वीतराग विज्ञान के द्वारा पच परमेष्ठी होते हैं ।

प्र० ११५—पच परमेष्ठी किसका उपदेश देते हैं ?

उत्तर—पच परमेष्ठी वीतराग विज्ञान का उपदेश देते हैं ।

प्र० ११६—अपने को सबसे प्रिय कौन है ?

उत्तर—पच परमेष्ठी अपने को सबसे प्रिय हैं ।

प्र० ११७—तुम सुबह और शाम को कौन सी स्तुति करते हो ?

उत्तर—करू नमन मैं अरहत देव को,

पच परमेष्ठी प्रभु तुम मेरे इष्ट हो ।

करू नमन मैं सिद्ध भगवत को,

पच परमेष्ठी प्रभु तुम मेरे इष्ट हो ।

करू नमन मैं आचार्य देव को,

पच परमेष्ठी प्रभु तुम मेरे इष्ट हो ।

करू नमन मैं उपाध्याय देव को,

पच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो ।

करू नमन मैं सर्व साधु को,

पच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो ।

प्र० ११८—एक माता के तीन पुत्र थे उनके नाम क्या हैं ?

उत्तर—एक माता के तीन पुत्र थे उनके नाम थे—मंगल कुमार, उत्तम कुमार, शरण कुमार ।

प्र० ११९—चार मंगल हैं वे कौन हैं ?

उत्तर—अग्निह भगवान, मित्र भगवान, मातृ व स्नान्य धर्म ये चार मंगल हैं ।

प्र० १२०—लोक में उत्तम चार वस्तु कौन सी हैं ?

उत्तर—अग्निह भगवान, मित्र भगवान, मातृ व स्नान्य धर्म ये चार उत्तम हैं ।

प्र० १२१—जीव को शरण रख कौन है ?

उत्तर—जीव को शरण रख चार वस्तु हैं—

(१) अग्निह भगवान (२) मित्र भगवान

(३) मातृ (४) स्नान्य धर्म ।

प्र० १२२—जीव क्या करे तो मंगल होना है ?

उत्तर—जीव आदम ज्ञान और तीन रागता प्रगट करे तो मंगल होना है ।

प्र० १२३—चत्वारि मंगल का पाठ दोनो ?

उत्तर—चत्वारि मंगल, अग्निह भगवान, मित्र भगवान, मातृ मंगल, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलम् ।

चत्वारि लोगुत्तमा, अग्निह लोगुत्तमा मित्रा लोगुत्तमा

मातृ लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्वारि सरण पव्वज्जामि, अरहत्ते सरण पव्वज्जामि,

मित्रे सरण पव्वज्जामि, मातृ सरण पव्वज्जामि,

केवलि पण्णत्ता धम्म सरण पव्वज्जामि ।

प्र० १२४—तीर्थंकर किसको कहते हैं ?

उत्तर—तीन राग सर्वज होकर जो धर्म तीर्थ का उपदेश देते हैं, समवशरण आदि विभूति से रहित होते हैं और जिनको तीर्थंकर

नामकर्म नाम का महा पुण्य का उदय होता है उन्हे तीर्थकर कहते हैं ।

प्र० १२५--भरत चक्रवर्ती किसके पुत्र थे ?

उत्तर—भरत चक्रवर्ती राजा ऋषभ देव के पुत्र थे ।

प्र० १२६—ऋषभ देव तीर्थकर कहाँ जन्मे ?

उत्तर—ऋषभदेव तीर्थकर अयोध्या नगरी मे जन्मे थे ?

प्र० १२७—अयोध्या अपना तीर्थ है वह किसलिए ?

उत्तर—तीर्थकर होने वाले बालक ऋषभ का जन्म अयोध्या मे हुआ था इसलिए अयोध्या हमारा महान तीर्थ है ?

प्र० १२८—राजगृही में विपुलाचल पर धर्म का उपदेश किसने दिया ?

उत्तर—राजगृही मे विपुलाचल पर धर्म का उपदेश भगवान महावीर ने दिया था ।

प्र० १२९—तीर्थकर भगवान ने कौनसा मार्ग दिखाया ?

उत्तर—तीर्थकर भगवान ने मोक्ष का मार्ग दिखाया है ।

प्र० १३०—मोक्ष का मार्ग क्या है ?

उत्तर—अपने आत्मा को पहिचान कर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को प्रकट करना ही मोक्ष का मार्ग है ।

प्र० १३१—जैन धर्म क्या है ?

उत्तर—अपने आत्मा को पहिचान कर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को प्रकट करना ही मोक्ष का मार्ग है उसी को जैन धर्म कहते है ।

प्र० १३२—राग को जैन धर्म कहते है या वीतराग भाव को ?

उत्तर—वीत राग भाव को जैन धर्म कहते है ।

प्र० १३३—चौबीस तीर्थकरो के नाम बोलो ?

उत्तर—	१- ऋषभ देव	३- सभवा नाथ
	२- अजीत नाथ	४- अभिनन्दन

५- सुमति नाथ	१५- धर्म नाथ
६- पद्म प्रभ	१६- गान्ति नाथ
७- सुपार्श्व नाथ	१७- कुन्थु नाथ
८- चन्द्र प्रभ	१८- अरह नाथ
९- पुष्प दन्त	१९- मल्लि नाथ
१०- गीतल नाथ	२०- मुनि सुव्रत
११- श्रेयास नाथ	२१- नमि नाथ
१२- वासु पूज्य	२२- नमि नाथ
१३- विमलनाथ	२३- पार्श्व नाथ
१४- अनन्त नाथ	२४- महावीर

प्र० १३४-चौबीस भगवान की मूर्ति कहाँ हैं ?

उत्तर—भारत में दम्बई, जयपुर चन्देरी सम्मेदशिखर, श्रवण बेलगोल, मूडवद्रि आदि अनेक स्थानों पर हमारे इन चौबीसो तीर्थकरो की मूर्तिया विराजमान हैं ।

प्र० १३५-चौबीस तीर्थकरो के चिह्न बताओ ?

उत्तर—	१- बैल	१३- शूकर
	२- हाथी	१४- सेही
	३- घोडा	१५- वज्र
	४- बदर	१६- हिरण
	५- चकवा	१७- बकरा
	६- पद्म	१८- मछली
	७- स्वतिक	१९- कु भ
	८- चन्द्र	२०- कछुआ
	९- मगर	२१- कमल
	१०- कल्पवृक्ष	२२- शख
	११- गेडा	२३- सर्प
	१२- भैंसा	२४- सिंह

प्र० १३६-चन्द्र, कल्पवृक्ष, गेंडा और सिंह के चिन्ह से कौन से तीर्थकर पहिचान में आते हैं ?

उत्तर-चन्द्र से आठवे चन्द्र प्रभ, कल्पवृक्ष से दशवे शीतल नाथ, गेंडा से ग्यारहवे त्रेयासनाथ, और सिंह से चौबीसवे महावीर पहिचान में आते हैं।

प्र० १३७-अपने तीर्थकरो का जीवन कैसा होता है ?

उत्तर-अपने सभी तीर्थकरो का जीवन वीतरागी होता है जो बहुत ऊँचा जीवन है।

प्र० १३८-ऊँचा जीवन कैसा होता है ?

उत्तर-ऊँचा जीवन वीतरागी होता है।

प्र० १३९-धर्म की भावना किससे जागृत होती है ?

उत्तर-धर्म की भावना तीर्थकरो के जीवन चरित्र पढ़ने से होती है।

प्र० १४०-आत्मा किस लक्षण से जाना जाता है ?

उत्तर-आत्मा चैतन्य लक्षण से जाना जाता है।

प्र० १४१-तीर्थकर भगवान के द्वारा बताया हुआ धर्म आज भी अपने को कौन समझाते हैं ?

उत्तर-तीर्थकर भगवान के द्वारा बताया हुआ धर्म आज भी अपने को ज्ञानी-धर्मात्मा समझाते हैं।

प्र० १४२-चौबीस तीर्थकर किस देश में जन्में ?

उत्तर-सभी तीर्थकर भगवन्तो का जन्म भारत देश में ही होता है।

प्र० १४३-ऋषभ देव के आत्मा ने सम्यक्त्व कब प्राप्त किया ?

उत्तर-ऋषभ देव का जीव जब आहार दान के फल से भोग भूमि में मनुष्य हुआ तब एक बार आकाशगामी प्रीतिकर नामक

मुनिराज ने वहाँ जाकर उादेश देकर आत्मस्वरूप समझाया । जिमे समझ कर भगवान के जीव ने उसी समय सम्यग्दर्शन प्रगट किया ।

प्र० १४४—ऋषभ देव के जीव ने पिछले ढवें भव में मुनि को आहार दान दिया था उसे देखकर चार तिर्यच खुशी हुये वे कौन थे ?

उत्तर—वे चार तिर्यच नेवला, सिंह, मूअर और बदर थे ।

प्र० १४५—ऋषभ देव को वैराग्य कब हुआ ?

उत्तर—एक बार चैत्र वदी नवमी के दिन जन्मोत्सव में नीला नाम की देवी की नृत्य करते-करते मृत्यु हो गयी । देह की ऐसी छण भगुरता देखकर उन्हे मगार से वैराग्य हो गया ।

प्र० १४६—उन्हे केवल ज्ञान कहाँ हुआ ?

उत्तर—उन्हे केवलज्ञान प्रयाग क्षेत्र में हुआ ।

प्र० १४७—वर्षी तप किसे कहते हैं ? वह किसने किया ?

उत्तर—मुनि होकर ऋषभदेव ने बहुत आत्म ध्यान किया, छह माह तक तो वे आत्म ध्यान में ही स्थिर गडे रहे ।

उसके बाद भी सात मास तक ऋषभ मुनिराज ने उपवास ही किए, क्योंकि मुनि को किम विधि से आहार दिया जाता है यह किसी को मालूम न था । इस प्रकार एक वर्ष में ज्यादा काल भोजन के बिना बीत चुका परन्तु ऋषभ मुनि को कोई कष्ट न था वे तो आत्म-ध्यान करते थे और आनंद के अनुभव में मग्न रहते थे । इसी को वर्षी तप कहते हैं ।

प्र० १४८—वर्षी तप का पारना किसने कराया ?

उत्तर—वर्षी तप का पारना राजकुमार श्रेयास ने कराया ।

प्र० १४९—भरत क्षेत्र में मोक्ष का दरवाजा किसने खोला ?

उत्तर—भरत क्षेत्र में मोक्ष का दरवाजा भगवान ऋषभ देव ने खोला ।

प्र० १५०—ऋषभ देव कहाँ से मोक्ष गये ?

उत्तर-भगवान ऋषभ देव कैनाज पर्वत से मोक्ष गये ।

प्र० १५१—भरत चक्रवर्ती के १०० राजकुमार गेंद खेलते-खेलते क्या विचार कर रहे थे ?

उत्तर—वे गेंद खेलते हुए ऐसा विचार कर रहे थे कि अरे, मोह रूपी लाठी की मार खा-खा कर गेंद की तरह यह जीव ससार की चारों गति में बहुत घूमा । अब तो आत्म साधना पूर्ण करके जल्दी इस ससार से छूटेंगे । हमारे ऋषभ दादा तो केवलज्ञानी तीर्थंकर हैं । पिताजी भी इस भव में मोक्ष पाने वाले हैं और हमें भी इसी भव में मुक्ति होकर भगवान बनना है ।

प्र० १५२—गेंद खेलने में जो मजा आता है वह सच्चा सुख है कि राग है ?

उत्तर—गेंद खेलने में जो मजा आता है वह राग है ।

प्र० १५३—जड़ में सुख होता है ?

उत्तर—जड़ में सुख नहीं होता है ।

प्र० १५४—सुख किसमें होता है ?

उत्तर—सुख जीव में होता है ।

प्र० १५५—जगत में दो प्रकार की वस्तु हैं वह कौन सी ?

उत्तर—एक ज्ञान सहित दूसरी ज्ञान रहित ।

प्र० १५६—जीव किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिस वस्तु में ज्ञान हो उसे जीव कहते हैं ।

प्र० १५७—अजीव किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिस वस्तु में ज्ञान न हो उसे अजीव कहते हैं ।

प्र० १५८—क्या अजीव वस्तु में भी गुण होते हैं ?

उत्तर—हाँ क्योंकि प्रत्येक वस्तु गुणों का समूह होता है ।

प्र० १५६—वस्तु किसको कहने है ?

उत्तर—गुणों के समूह को वस्तु कहते हैं।

प्र० १६०—सौ राजकुमारों को घुडसवारों ने क्या समाचार दिए ?

उत्तर—सौ राजकुमारों को घुडसवारों ने समाचार दिया कि हस्तिनापुर के राजा जयकुमार ने ऋषभदेव प्रभु के पास दीक्षा ले ली है। और वे भगवान के गणधर हुए हैं पहिले वे भरत चक्रवर्ती के सेनापति थे। वैराग्य होने पर अपने मात्र छह साल के कुवर को राजतिलक करके वे मुनि हो गये। चक्रवर्ती का प्रधान पद छोड़कर अब वे तीर्थकर भगवान के प्रधान बन गये।

प्र० १६१—ऋषभ देव का दूसरा नाम क्या था इनके अलावा और कौन-कौनसे तीर्थकरों के एक से अधिक नाम हैं ?

उत्तर—भगवान ऋषभ देव का दूसरा नाम आदिनाथ है इनके अलावा नवे पुष्प दन्त का मुविधि नाथ तथा चौबीसवे तीर्थकर के ५ नाम हैं-१ वीर २ अतिवीर ३ महावीर ४ सन्मति ५ वर्द्धमान।

प्र० १६२—जीव ससार में क्यों भटकता है ?

उत्तर—जीव-अजीव की पहिचान के बिना जीव संसार में भटकता है।

प्र० १६३—जीव-अजीव की पहिचान से क्या होता है ?

उत्तर—जीव-अजीव की पहिचान से ससार भ्रमण का दुख मिटता है और मोक्ष सुख मिलता है।

प्र० १६४—घुडसवार के पास से जयकुमार की दीक्षा के समाचार सुनकर राजकुमारों ने क्या किया ?

उत्तर—घुडसवार के मुँह से जयकुमार की दीक्षा के समाचार सुनते ही सब राजकुमारों को आश्चर्य हुआ और मन में भी ससार से वैराग्य हो गया। अहो ! उनका जीवन धन्य है ऐसा कहकर उनके

प्रति नमस्कार किया और वे सब अपने-अपने मन में दीक्षा लेने का विचार करने लगे। दीक्षा के लिए वे सब भगवान् ऋषभ देव के समवशरण में पहुँचे। भगवान् को नमस्कार किया। जयकुमार मुनिराज को भी नमस्कार किया और दीक्षा लेकर वे सब मुनि हो गये।

प्र० १६५—ऋषभ देव के दरबार में जाने समय राजकुमार क्या गाते थे ?

उत्तर—चलो प्रभु के दरबार, चलो दादा के दरबार।

प्रभु की वाणी सुनेगे, मुनि दशा हम धारेगे।

रत्नत्रय को पावेगे, केवलज्ञान प्रगटायेंगे।

ससार से हम छूटेंगे, सिद्ध स्वयं बन जायेंगे।

चलो दादा के दरबार, चलो प्रभु के दरबार।

प्र० १६६ जिनकुमार और राजकुमार की कथा से तुमको कौनसी शिक्षा मिली ?

उत्तर—जिनकुमार और राजकुमार की कथा से हमको यह शिक्षा मिलती है कि किसी भी परिस्थिति में भगवान् का दर्शन नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि हम जिनवर की सन्तान हैं। हमें प्रतिदिन देव दर्शन गुरु सेवा व शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिए।

प्र० १६७—चक्रवर्ती राजा से भी बड़े कौन हैं ?

उत्तर—चक्रवर्ती राजा से भी बड़े जिनेन्द्र देव हैं।

प्र० १६८—भगवान् की पूजा का पद बोलो ?

उत्तर— जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत,

पुष्प चरु दीपक धरूँ।

वर धूप निरमल फल विविध,

बहु जनम के पातक हरूँ ॥

इह भौति अर्ध चढाय नित,

भव करत शिव पक्ति मच्चू।

अरहत श्रुत सिद्धात गुरु,

निग्रथ नित पूजा रत्न ॥

वसु विधि अर्घ सजोय के, अति उत्साह मन लीन ।

जासो पूजो परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

प्र० १६६—भगवान की कोई स्तुति बोलो ?

उत्तर—तुभ्य नम त्रिभुवनार्ति हराय नाथ,

तुभ्य नम क्षितितलामल भूषणाय ।

तुभ्य नम त्रिजगत परमेश्वराय,

तुभ्य नम जिन ! भवो दधि गोपणाय ॥

प्र० १७०—अर्घ मे कौन सी आठ वस्तुयें होती हैं ?

उत्तर—अर्घ मे जल, चदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल ये आठ वस्तुये होती हैं ।

प्र० १७१—गंधोदक किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीर्थकर बालक के (जन्म कल्याणक के समय) अभिषेक का जल, यत्र अभिषेक का जल तथा जिन प्रनिमा के प्रक्षाल का जल गंधोदक कहलाता है ।

प्र० १७२—‘मोक्ष मार्गस्य नेतार’ यह स्तुति बोलो ?

उत्तर— मोक्ष मार्गस्य नेतार, भेत्तार कर्म भूभृताम् ।

ज्ञातर विश्व तत्वाना, वदे तद् गुण लब्धये ॥

प्र० १७३—यह स्तुति किसने बनायी ?

उत्तर—यह स्तुति समन्तभद्र स्वामी ने बनायी ।

प्र० १७४—मोक्ष मार्ग का नेता कौन है ?

उत्तर—मोक्ष मार्ग के नेता अरहत भगवान हैं ।

प्र० १७५—हम भगवान को वदन किस लिए करते हैं ?

उत्तर—भगवान जैसे गुणों की प्राप्ति के लिए हम भगवान को वदन करते हैं ।

प्र० १७६—राजा के पास जाने में राजकुमार को देरी क्यों हुई ?

उत्तर—राजकुमार अपने मित्र के साथ जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने गया था । इस कारण राजा के पास जाने में देर हुई ।

प्र० १७७ - क्या राजा ने उनको कुछ सजा दी ?

उत्तर—नहीं ।

प्र० १७८—राजा ने कुमारो को क्या इनाम दिया ?

उत्तर—राजा ने प्रसन्न होकर कुमारो को स्वर्ण हार दिये ।

प्र० १७९—कुमारो ने उस इनाम का क्या किया ?

उत्तर—कुमारो ने राजा से भावना व्यक्त की कि स्वर्ण हार हमको देने के बदले में इसका स्वर्ण कलश बनवाकर आप जिन मंदिर के ऊपर चढ़ावे ।

प्र० १८०—तुम्हारे गाँव में राजा और भगवान आये तो तुम पहिले किसके पास जाओगे ?

उत्तर—भगवान के पास ।

प्र०—साधर्मी के प्रति अपने को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—साधर्मी भाई बहिनो के प्रति अपने को बहुत वात्सल्य-प्रेम रखना चाहिए । उन्हें किसी प्रकार का दुःख हो तो वह दूर करके उनका धार्मिक उत्साह बढ़ाना चाहिए और उन्हें हर प्रकार की सुविधा देनी चाहिए ।

प्र० १८२—कैसे कार्य से दूर रहना चाहिए ?

उत्तर—हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, दुराचार और तीव्र ममता आदि पापों से दूर रहना चाहिए । अभक्ष्य और जुआ खेलना आदि व्यसन से भी दूर रहना चाहिए ।

प्र० १८३—अच्छा जीवन बनाने के लिए क्या याद रखना चाहिए ?

- उत्तर—(१) मैं जैन धर्म का बच्चा हूँ ।
 (२) मैं अहिंसक जीवन जीता हूँ ।
 (३) मैं दुःख न किसी को देता हूँ ।
 (४) मैं अभक्ष कभी नहीं खाता हूँ ।
 (५) मैं मन्दिर प्रतिदिन जाता हूँ ।
 (६) मैं प्रभु का दर्शन करता हूँ ।
 (७) मैं साधर्मि से प्रेम करूँ ।
 (८) मैं धर्म का अभ्यास करूँ ।
 (९) मैं आत्म साधक वीर बनूँ ।
 (१०) महावीर प्रभु सा सिद्ध बनूँ ।

प्र० १८४—चार गति कौन सी हैं ?

- उत्तर—(१) मनुष्य गति (२) नरक गति
 (३) देव गति (४) तिर्यच गति

प्र० १८५—चार गति के सिवाय पाँचवी गति कौन सी है ?

उत्तर—पंचम गति अर्थात् मोक्ष गति ।

प्र० १८६—कौनसी गति से मोक्ष पा सकते हैं ?

उत्तर—मनुष्य गति से मोक्ष पा सकते हैं ।

प्र० १८७—चार गति में मनुष्य गति उत्तम क्यों ?

उत्तर—चार गति में मनुष्य गति इसलिए उत्तम मानी गई है कि इससे जीव अपने सभी गुण प्रगट करके भगवान बन सकता है, और मोक्ष भी पा सकता है ।

प्र० १८८—मनुष्य होकर क्या करने से मोक्ष होता है ?

उत्तर—मनुष्य होकर आत्म ज्ञान करने से जरूर मोक्ष होता है ।

प्र० १८९—मोक्ष सुख पाने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर—मोक्ष सुख पाने के लिए आत्म ज्ञान करना चाहिए ।

प्र० १९०—अपने जैन धर्म में कौन से महापुरुष हुए ?

उत्तर—अपने जैन धर्म में ऋषभ देव से महावीर तक २४ तीर्थंकर, भरत, बाहुवली राम, कुन्द आदि अनेक महापुरुष हुए।

प्र० १६१—जैन धर्म क्या देता है ?

उत्तर—जैन धर्म आत्म ज्ञान रत्नत्रय और मोक्ष का सुख देता है।

प्र० १६२—धर्म का मूल क्या है ?

उत्तर—धर्म का मूल सम्यक्त्व है।

प्र० १६३—तुम्हारा प्यारा धर्म कौनसा है ?

उत्तर—हमारा प्यारा धर्म जैन धर्म है।

प्र० १६४—जैन धर्म का गीत सुनाओ ?

उत्तर— धर्म मेरा धर्म मेरा धर्म मेरा रे ।
 प्यारा प्यारा लागे जैन धर्म मेरा रे ॥
 ऋषभ हुए वीर हुए धर्म मेरा रे ।
 बलवान बाहुवली से वे धर्म मेरा रे ॥
 भरत हुए राम हुए धर्म मेरा रे ।
 कुन्द कुन्द जैसे सत धर्म मेरा रे ॥
 सती चदना अंजना हुई धर्म मेरा रे ।
 हुई ब्राह्मी राजुल माता धर्म मेरा रे ॥
 सिंह सेवे बाघ सेवे धर्म मेरा रे ।
 हाथी बानर सर्प सेवे धर्म मेरा रे ॥
 आत्मा का ज्ञान देता धर्म मेरा रे ।
 रत्नत्रय का दान देता धर्म मेरा रे ॥
 सम्यक्त्व जिसका मूल वह धर्म मेरा रे ।
 सुख देता मोक्ष देता धर्म मेरा रे ॥
 धर्म मेरा धर्म मेरा धर्म मेरा रे ।
 प्यारा प्यारा लागे जैन धर्म मेरा रे ॥

प्र० १६५—मुमुक्षु जीव को किसकी भावना हुई ?

उत्तर—मुमुक्षु जीव को दुःख मिटाकर आत्मा का हित व सुख प्राप्त करने की भावना हुई ।

प्र० १६६—मुमुक्षु ने वन में जाकर मोक्ष का मार्ग किससे पूछा ?

उत्तर—मुमुक्षु ने वन में जाकर मोक्ष का मार्ग मुनिराज से पूछा ।

प्र० १६७—मुनिराज ने मोक्ष का मार्ग क्या बताया ?

उत्तर—मुनिराज ने बताया कि—

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्याणि मोक्ष मार्ग ।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्य की एकता ही मोक्ष का मार्ग है ।

प्र० १६८—हम किसकी सतान हैं ?

उत्तर—हम वीर प्रभु की सतान हैं ।

प्र० १६९—वीर प्रभु की सतान कैसे-कैसे उत्तम कार्यों को करने के लिए तैयार है ?

उत्तर— वीर प्रभु की हम सतान, हे तैयार है तैयार ।

जिन शासन की सेवा करने, है तैयार है तैयार ।

सिद्ध पद का स्वराज लेने, है तैयार है तैयार ।

अरहत प्रभु की सेवा करने, है तैयार है तैयार ।

ज्ञानी गुरु की सेवा करने, है तैयार है तैयार ।

तीर्थ धाम की यात्रा करने, है तैयार है तैयार ।

जिन सिद्धान्त का पठन करने, है तैयार है तैयार ।

जिन शासन को जीवन देने, है तैयार है तैयार ।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने, है तैयार है तैयार ।

आत्म ज्ञान की ज्योति जगाने, है तैयार है तैयार ।

साधु दशा का सेवन करने, है तैयार है तैयार ।

मोह शत्रु को जीत लेने, है तैयार है तैयार ।

वीतरागी निर्मोही होने, है तैयार है तैयार ।
 आत्म ध्यान की धूम मचाने, है तैयार है तैयार ।
 ज्ञायक का पुरुषार्थ करने, है तैयार है तैयार ।
 वीर मार्ग में दौड़ लगाने, है तैयार है तैयार ।
 मोक्ष का दरवाजा खोलने, है तैयार है तैयार ।
 ससार सागर पार उतरने, है तैयार है तैयार ।
 सिद्ध प्रभु के साथ रहने, है तैयार है तैयार ।

प्र० २००--जैन धर्म की प्रभावना करने के लिए हम क्या करेंगे ?

उत्तर--जैन धर्म की प्रभावना करने के लिए हम देव व गुरु की तीर्थधाम की यात्रा, जिन सिद्धान्त का पठन, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्य की प्राप्ति व आत्मध्यान आदि कार्य करेंगे ।

शीघ्र मोक्षदायनी अपूर्व देशना

(नित्य मनन योग्य)

निर्मल ध्यानरूढ हो, कर्म कलंक नशाय ।
हुए सिद्ध परमात्मा वन्दत हूं जिनराय ॥१॥

इच्छुक जो निज मुक्ति का, भवभय से डरचित ।
उन्ही भव्य सम्बोध हित, रचा काव्य इकचित्त ॥३॥

परमात्मा को जानकर, त्याग करे परभाव ।
वह आत्मा पण्डित खरा, प्रगट लहे भवपार ॥८॥

गृह कार्य करते हुए, हेयाहेय का ज्ञान ।
ध्यावे सदा जिनेश पद, 'शीघ्र' लहे निर्वाण ॥१८॥

शुद्ध प्रदेश पूर्ण है, लोकाकाश प्रमाण ।
सो आतम जानो सदा, लहो 'शीघ्र' निर्वाण ॥२३॥

निश्चय लोक प्रमाण है, तनु प्रमाण व्यवहार ।
ऐसा आतम अनुभवो, शीघ्र लहो भवपार ॥२४॥

जो शुद्धात्तम अनुभवे, व्रत-सयम संयुक्त ।
जिनवर भाषे जीव वह, 'शीघ्र' होय शिवयुक्त ॥३०॥

शेष अचेतन सर्व है, जीव सचेतन सार ।
मुनिवर जिनको जानके, 'शीघ्र' हुये भवपार ॥३६॥

शुद्धात्तम यदि अनुभवो, तज कर सब व्यवहार ।
जिन परमात्मा यह कहे, 'शीघ्र' होय भवपार ॥३७॥

ज्यों रमता मन विषय मे, ज्यों जो आतम लीन ।
मिले 'शीघ्र' निर्वाण-पद, धरे न देह नवीन ॥५०॥

नर्कवास सम जर्जरित, जानो मलिन शरीर ।
करि शुद्धात्म भावना, 'शीघ्र' लहो भवतीर ॥५१॥

जीव-पुद्गल दोऊ भिन्न है, भिन्न सकल व्यवहार ।
तज पुद्गल, ग्रह जीव तो, 'शीघ्र' लहे भवपार ॥५५॥

देहादिक को पर गिने, ज्यो शून्य आकाश ॥
लहे 'शीघ्र' पर परब्रह्म को, केवल करे प्रकाश ॥५८॥

मुनिजन या कोई गृही, जो रहे आत्म लीन ।
'शीघ्र' सिद्धि सुख को लहे, कहते यह प्रभु जिन ॥६५॥

गृह-परिवार मम है नहीं, है सुख दुख की खान ।
यो ज्ञानी चिन्तन करि, 'शीघ्र' करे भव हान ॥६७॥

यदि जीव तू है ऐकला, तो तज सब परभाव ।
ध्यावो आत्म ज्ञानमय, 'शीघ्र' मोक्ष सुख पाव ॥७०॥

एकाकी इन्द्रिय रहित, करि योग त्रय शुद्ध ।
निज आत्म को जानकर, 'शीघ्र' लहो शिवसुख ॥८६॥

रमे जो आत्म स्वरूप मे, तज कर सब व्यवहार ।
सम्यक्दृष्टि जीव वह, 'शीघ्र' होय भवपार ॥८९॥

जो सम्यक्त्व प्रधान बुध, वही त्रिलोक प्रधान ।
पावे केवलज्ञान 'ज्ञात' शाश्वत सौख्य निधान ॥९०॥

शम सुख मे लवलीन जो, करते निज अम्यास ।
करके निश्चय कर्म क्षय; लहे 'शीघ्र' शिववास ॥९३॥

आत्मा ही अरहन्त है, निश्चय से सिद्ध जान ।
आचरज, उवज्ञाय अरु, निश्चय साधु समान ॥१०४॥

नियम सार स्तवन

नारक नहीं, तिर्यच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं ।
 कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमन्ता मैं नहीं ॥ ७७ ॥
 मैं मार्गणा के स्थान नहीं, गुणस्थान-जीवस्थान नहीं ।
 कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमन्ता भी नहीं ॥ ७८ ॥
 बालक नहीं मैं, वृद्ध नहीं, नहीं युवक तिन कारण नहीं ।
 कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमन्ता भी नहीं ॥ ७९ ॥
 मैं राग नहीं मैं द्वेष नहीं, नहीं मोह तिन कारण नहीं ।
 कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमन्ता मैं नहीं ॥ ८० ॥
 मैं क्रोध नहीं, मैं मान नहीं, माया नहीं मैं लोभ नहीं ।
 कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं ॥ ८१ ॥
 भावी शुभाशुभ छोड़कर तजकर वचन विस्तार रे ।
 जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे ॥ ८५ ॥
 कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो ।
 मैं हूँ वही, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को ॥ ८६ ॥
 निज भाव को छोड़े नहीं किंचित ग्रहे परभाव नहीं ।
 देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही ॥ ८७ ॥
 जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेग बन्धविन आत्मा ।
 मैं हूँ वही, भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ ॥ ८८ ॥
 मैं त्याग ममता निर्ममत्व स्वरूप में स्थिति कर रहा ।
 अवलम्ब मेरा आत्मा अवशेष वारण कर रहा ॥ ८९ ॥
 मम ज्ञान में है आत्मा दर्शन चरित में आत्मा ।
 है और प्रत्याख्यान सवर योग में भी आत्मा ॥ १०० ॥
 मरता अकेला जीव एव जन्म एकाकी करे ।
 पाता अकेला ही मरण अरु मुक्ति एकाकी करे ॥ १०१ ॥
 ह्यज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र-आत्मा मम अरे ।
 अरु शेष सब सयोग लक्षित भाव मुझ से है परे ॥ १०२ ॥

जो कोई भी दुष्चरित मेरा सर्व त्रय विधि से तजूँ ।
 अरु त्रिविध सामायिक चरित सब, निर्विकल्प आचरूँ ॥ १०३ ॥
 समता मुझे सब जीव प्रति वैर न किसी के प्रति रहा ।
 मैं छोड़ आशा सर्वत धारण समाधि कर रहा ॥ १०४ ॥
 जो गूर एव दान्त है, अकपाय उद्यमवान है ।
 भव भीरु है, होता उसे ही सुखद प्रत्याख्यान है ॥ १०५ ॥
 यो जीव कर्म विभेद अभ्यासी रहे जो नित्य ही ।
 है सयमी जन नियत प्रत्याख्यान-धारण क्षम वही ॥ १०६ ॥
 सावध-विरत त्रिगुप्तिमय अरु पिहित इद्रिन्य जो रहे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १०७ ॥
 स्थावर तथा त्रस सर्व जीव समूह प्रति समता लहे ।
 स्थायि सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १०८ ॥
 सयम नियत-तप मे अहो आत्मा समीप जिसे रहे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १०९ ॥
 नहि राग अथवा द्वेष से जो सयमी विकृति लहे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ ११० ॥
 रे आर्त्त-रौद्र दुध्यान का नित ही जिसे वर्जन रहे ।
 स्थायी सामायिक है उसे यो केवली शासन कहे ॥ १११ ॥
 जो पुण्य-पाप विभावभावो का सदा वर्जन करे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ ११२ ॥
 जो नित्य वर्जें हास्य अरु रति अरति शोक विरत रहे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ ११३ ॥
 जो नित्य वर्जें भय जुगुप्सा सर्व वेद समूह रे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ ११४ ॥
 जो नित्य उत्तम धर्म-शुक्ल सुध्यान मे ही रत रहे ।
 स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ ११५ ॥

समयसार स्तवन

ध्रुव अचल अरु अनुप्रमत्ति, पाये हुये सब सिद्ध को ।
 मैं बदन मुक्तकेवली कथित, कहूँ समय प्राभृत को कहो ॥ १ ॥
 नहिः प्रमत्त प्रमत्त नहिः, जो एक ज्ञायक भाव है ।
 इस सेति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वो हि है ॥ ६ ॥
 व्यवहसन्य अभूतार्थ दर्शित, शुद्धतय भूतार्थ है ।
 भूतार्थ आश्रित आत्मा, मुदण्टि निश्चय होय है ॥ ११ ॥
 भूतार्थ से जाने अजीव जीव, पुण्य पापरु निर्जरा ।
 आस्रव सवर बन्ध मुक्ति, येहि समकित जानना ॥ १३ ॥
 अनवद्वस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्म को ।
 अविशेष अनसयुक्त उसको शुद्धनय तू जानजो ॥ १४ ॥
 मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान दग हूँ यथार्थ से ।
 कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणु मात्र नही अरे ॥ ३८ ॥
 मैं एक शुद्ध ममत्व हीनरु, ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ ।
 इसमे रहूँ स्थित लीन इसमे, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ॥ ७३ ॥
 शुभ-अशुभ से जो रोककर, निज आत्म को आत्महि से ।
 दर्शन अवरु ज्ञानहि ठहर, पर द्रव्य डच्छा परिहरे ॥ १८७ ॥
 जो सर्व सगविमुक्त ध्याके, आत्म मे आत्महि को ।
 नहिः कर्म अरु नो कर्म, चेतक चेतता एकत्व को ॥ १८८ ॥
 वह आत्मध्याता, ज्ञानदर्शनमय आनन्दमयी हुआ ।
 बस अल्पकाल जु कर्म से परिमोक्ष पावे आत्म का ॥ १८९ ॥
 इसमे सदा रतिवत बन, इसमे सदा सतुष्ट रे ।
 इससे ही बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे ॥ २०६ ॥
 छेदन करो जिव बध का तुम नियत निज-निज चिह्न से ।
 प्रज्ञा-छैनी से छेदते दोनो पृथक हो जाय है ॥ २१४ ॥

॥ ट्ठीय श्रुति-दर्शन केन्द्र

